मूर्च्छा में सोती हुई माँ स्वप्न देखने लगी। उसने देखा कि काल मेरे विकास को खींच रहा है, बाढ़ मृत्यु बनकर उसे डसने आ रही है। उसने विकास को अपनी छाती से जकड़ कर छिपा लिया। स्वप्न ही में वह कह उठी— "तू काल है, काल! पर मैं तुझे अपना विकास नहीं दूँगी।"

प्रकृति का क्रूर काण्ड माँ को स्वप्न में और विकास को प्रत्यक्ष में डराने लगा। काँपती हुई बाढ़ ने शक्ति के आवेग में कहा— "जिसकी आँखों के सामने कंचन के महल धूलि बनकर मुझ में समा गये, जो स्वयम् भी भूख और भूकम्पों से पिस पिस कर ठठरी मात्र रह गई है, उस माँ की भुजाओं ने अपनी आशा का प्रकाश अभी तक नहीं छोड़ा! यह अपने बच्चे को आज भी बचाना चाहती है! माँ का सूखा मांस और हड्डियाँ चबा चबा कर विकास दो दिन तो ज़िन्दा रह लिया, लेकिन देखती हूँ यह कब तक मुझ से लड़ेगा! मनुष्य की सबसे बड़ी माँ धरा भी आज मेरी लहरों में धँस चुकी है।"

काल की अनर्गल आंधी और बाढ़ की अनन्त जलराशि ने धरा को ढक दिया। एकमात्र मातृत्व से चिपटे विकास के पैर लड़खड़ाने लगे। अट्टहास की बिजलियों ने कड़क कर कहा— "कहाँ है चुनौती? बस इतना ही घमण्ड था तुझमें! इसी पर हुंकार रहा था! इसी नींव पर नशा था! कहाँ हैं वे तेरे महल जो आकाश को उड़ाते थे? कहाँ हैं वे रंगीनियाँ जो मन और बुद्धि के बन्धन तोड़ती थीं? कहाँ है वह मस्ती जो हवा से होड़ लगाकर हँसती थी? कहाँ है वह हँसी जो अन्त का उपहास करती थी? देख, आज तुझ पर तिनके हँस रहे हैं! लहरों पर उठते हुए बुलबुले तुझे धिक्कार रहे हैं! बस इतनी ही स्थिरता थी तुझ में! इसी पर अपने को अमृतपुत्र कहता था! कहाँ है आज तेरा अभिमान?"

विकास पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा। निरीह बालक भौचक्का सा चीख़ पड़ा— "माँ!" उसकी ध्वनि आँधी से टकराकर लौट आई। उत्तर में अट्टहास करती हुई कालिमा ने कहा— "पागल कहीं का! इस धरा पर अब तेरी सुनने वाला कोई नहीं। तेरी माँ मेरी मुट्ठी में बन्द है। और तेरे पास! तेरे पास है उसका हृदय, केवल मातृत्व! मुझे देख, मैं भूखी हूँ, बहुत भूखी! यह जो कुछ दीख रहा है सब मेरा भोजन है! मेरा खाने का क्रम नहीं रुकता! मैं सबको खा गई! अब तुझे भी खाऊँगी! लेकिन फिर भी मेरी भूख नहीं मिटेगी! मैं मृत्यु हूँ, मृत्यु!"

बालक टकटकी लगाये सुनता रहा। उसकी समझ में नहीं आया कि यह सब विचित्रता क्या है, कौन क्या कह रहा है! वह बात ऐसे पकड़ने दौड़ा जैसे शिशु साँप को पकड़ने दौड़ता है। पर वह अदृश्य साँप था। विकास माँ से चिपट गया। उसने अपनी दोनों आँखें बन्द कर लीं। वह रोने लगा, ऐसे जैसे कोई स्वप्न में रोता है। फूट फूट कर रोने की आवाज़ शून्य में चारों ओर गूँज उठी। रोने में एक ही ध्वनि सुनाई देती थी— 'माँ! माँ! माँ!'

कालिमा मुँह फाड़ विकास को खाने के लिये लपकी, पर ममत्व की परछाई ने उसका पथ रोककर कहा— "बस, आगे पैर न बढ़ा!"

कालिमा— "कौन है तू?"

परछाई— "जिसे तेरी आँखें नहीं देखतीं!"

कालिमा— "अर्थात्?"

परछाई— "अर्थात् मैं मातृत्व हूँ। तूने शरीर की शक्ति को खाया है, माँ के दुलार को नहीं। दुलार में हृदय होता है, हृदय को पहिचान ले कठोर! तू शरीर का अन्त करती है, प्रेम का नहीं। प्रेम वह प्यास है जो बढ़ती ही जाती है। प्रेम की मृत्यु कभी नहीं होती।"

यह सुन कालिमा इस प्रकार अट्टहास करने लगी मानो बिजलियाँ टूटना चाहती हैं, फिर आँखें लाल कर गड़गड़ाहट करती हुई बोली— "मृत्युलोक में सब मेरी जाड़ में चिपके हुए हैं। मैं यमराज की शक्ति हूँ, शक्ति! मुझे भंगुर मनुष्य नहीं जीत सकता। और तू, आहा! हा! हा! मुझे रोकेगी! मुझे वे दिग्विजयी सम्राट् नहीं रोक सके जिन के इंगित पर संसार नाचता था, जिन की कारा में काल क़ैद था, जिन की पगधूलि आकाश को आच्छादित करती थी। तुझे क्या पता है, ईश्वर की माया मेरी सहचरी है। मेरा समय कोई नहीं टाल सकता। मैं होनी हूँ, होनी!"

परछाई— "सचमुच तू निर्मम है, बहुत निर्मम! तेरे पास हृदय नहीं, पत्थर है। तूने किसे नहीं खाया? तेरा काम है हँसी को रुदन बनाना, आशा को निराशा में बदलना। संकल्पों की हरी भरी फुलवारी में आग लगाना ही तो तुझे आता है। न जाने तूने कितनी माँओं की गोद सूनी की है! तू तड़प पर खिलखिलाई, पीड़ा पर नाची, नाश पर गाती रही। तोड़ना ही तो आता है तुझे! आँसुओं की झड़ी में झूला डाल तू ही तो झूलती है! तू ही है जो माँग का सिन्दूर पूँछ विधवा बनाती है। तू ही दुधमुँहे बच्चों को अनाथ देख कर हँसती है। तुझ में दया नहीं, विनाश है। तेरे पास वह हृदय नहीं जो स्नेह से प्रज्वलित दीपक में होता है। तेरी मुट्ठी में मरघट की आग रहती है। तेरी आँखों में दुर्भिक्ष है, दुर्भिक्ष! तू रोगों की पिटारियाँ लिये फिरती है। वियोग की विह्वलता में छटपटाते हुए प्राण तेरी ही निर्दयता की पैनी धार पर चलते हैं। तेरा उजाड़ा हुआ जीवन भर नहीं बसता। तू फूलों की चिता देख कर खिलखिलाती है। तुझमें स्त्री होते हुए भी करुणा नहीं। तू नारी है, पर तेरे पास माँ का हृदय नहीं। डायन की कहानियाँ सुनते हैं, कहीं तू ही तो वह नहीं! क्योंकि तू माँ के हृदय को नहीं देखती।"

कालिमा— "माँ का हृदय! हृदय को पाषाण बनना होगा। मौत किसी पर दया नहीं करती। दया करने के लिये निष्काम कर्म हैं; सेवाओं के क्षेत्र खुले पड़े हैं; त्याग, तपस्या, भक्ति और मुक्ति की मालायें जपने को हैं। शास्त्रों के पन्ने पल्टो! धर्मों के दर्वाज़े खटखटाओ! बड़ा अभिमान है इन सब पर मनुष्य को! पर कहाँ है आज बल और घमण्ड की तलवार? कहाँ है धर्म का नैतिक बल? मैंने चुन चुन कर सबको खा लिया। आकर्षण पुण्य में नहीं, पाप में है। शास्त्रों के शब्द मूक हो चुके हैं। पुण्य पुण्य की रट अब कोई नहीं सुनता। भौतिक सत्ता में आत्मा और परमात्मा कल्पना मात्र है। पाप के एक ही झोंके में सब स्वाह हो गया। काम की एक ही झनकार ने सबको बाँधकर खींच लिया। मोह की माया में मनुष्य आज असहाय होकर मुझसे भीख माँग रहा है। प्रेम की पिपासा में तड़पता हुआ प्राणी विरह की धार पर नाच खंड खंड हो गया। आज दीपक और शलभ दोनों का पता नहीं। तूफान की एक ही लहर ने स्मृति के चिह्न तक मिटा डाले। मनुष्य के अभिमान का मुकुट धूलि के चरणों में पिसा पड़ा है, उसकी शक्ति एक चुटकी भर राख भी नहीं रही।"

परछाई— "मनुष्य को धिक्कारने वाली कालिमा! तेरी जीत भी हार है। तू अपनी जीत पर नहीं, हार पर हँस रही है। जीत की प्रसन्नता में दिवाली और हार के शोक में अन्धकार होता है। तू दिवाली के दीपों के बीच नहीं, चिताओं की उड़ती हुई चिनगारियों में खड़ी है। विनाश में अन्धी होकर तू अपने भले बुरे को भी भूल चुकी है पगली! यदि तू विकास को भी खा गई तो फिर भविष्य में किसे खायेगी? फिर तू श्मशान में दुर्भिक्ष सी होगी।"

कालिमा— "आँखें मूँद कर मैं नहीं चलती, दुनिया चलती है। मनुष्य की आँखों पर माया का पर्दा पड़ा रहता है। वह उसे उठाना

नहीं चाहता। वह दुनिया से उठ जाता है पर मेरे राह के दीप से वह पथ नहीं देखता।"

परछाईं— "पर इस निर्दोष बालक के प्राण लेकर क्या करेगी? पुण्य और पाप से दूर इस निर्दोष पर दया कर! तू विकास को न खा! मनुष्य का केन्द्र-विन्दु नष्ट होने से सृष्टि का क्रम रुक जायेगा। विकास के छोटे छोटे पैरों को बढ़ने दे, और तब तक बढ़ने दे जब तक ये धरा को नाप न लें। इसे अभी नरक और स्वर्ग से यहीं खेलने दे, पतन और उत्थान से यहीं टकराने दे!

कालिमा— "आज तक मनुष्य आशा का आकाश देखता रहा है, आज उसे निराशा के आँसुओं में लीन होना पड़ेगा।"

परछाईं— "कितनी भयंकर है तेरी क्रिया! क्यों इन खिले हुए फूलों को तोड़ तोड़ कर बुझी चिता पर चिता जला रही है! तू श्मशान की कठोर शान्ति में आँसुओं और लपटों के बीच विरह के चीत्कार पर नाच गा कर दुःखों का उपहास क्यों करती है! सौन्दर्य और संकल्पों की राख उड़ा आँसुओं से खेलने में तुझे क्या मिल रहा है निर्मम!

"तेरे विलोड़न के विकराल ताण्डव में अद्भुत विडम्बना है। हँसी के रोदन में प्रकृति वातचक्र पर परिक्रमा करती हुई तूफान को पकड़ना चाहती है, पर पृथ्वी की कँपकँपी नहीं रुकती। क्यों? क्योंकि तू अपनी कठोर शक्ति से उसे निर्भय नहीं होने देती। यह क्या! तू विकास की ओर दौड़ रही है! तो क्या तू इसे भी खा जायेगी! ठहर जा! ठहर जा!! तू पहिले मेरे प्रेम का गला घोट, मेरा अस्तित्व मिटा, तब इसे खा! मेरे रहते मेरे आँचल का हर तार तुझे इसे छूने भी नहीं देगा।"

कालिमा— "तू इसे दुनिया में रख कर क्या करेगी? दुनिया में दुःखों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। संसार दोषों से घिरा हुआ है,

मनुष्य उसमें फँस कर शान्ति ढूँढता है, पर वहाँ शान्ति कहाँ ? शान्ति तो मेरी गोद में है।" '

परछाई— "तेरी शान्ति वन के फूलों की तरह है, जो एकाकी खिल कर मुरझा जाते हैं। वे संसार से और संसार उनके सौरभ से वंचित रहता है। और फिर क्या कभी तूने उस दुःख की अनुभूति की है जो बिछुड़ने पर होती है ! तू मरण के वियोग को क्या जाने !"

कालिमा — "और तू क्या जाने जीने वालों के जी की! जीवन मरने से कहीं कठोर होता है। मनुष्य चिता की दहकती हुई लपटों में शान्ति से सो सकता है पर दुनिया की रंगीनियों में उस की शान्ति नहीं। अंगारों को चुगना सरल है पर दुनिया की आँखों का ज़हर नहीं पिया जा सकता। शंकर भी नहीं पी सकते यह विष। यह मधु बहुत कड़वा होता है पगली ! टेढ़ी खीर है यह शराब ! तू मुझे पत्थर कहती है पर पत्थर तो वे चलते फिरते मनुष्य होते हैं जो दिल दुखा कर सन्तोष मानते हैं। मान जा मेरी बात छाया ! क्यों इस बिचारे बालक को संसार की उलझनों में डालती है ? सोने दे मेरी गोद में इसे सुख से, नहीं तो दुनिया के पत्थर इसे पीस डालेंगे।"

परछाई— "नहीं, मृत्यु से भयंकर मुझे संसार नहीं लगता।"

कालिमा— "तू अपने हृदय से नहीं, भावना की बाँसुरी से बोल रही है। अच्छा, यदि तू नहीं मानती तो ले मैं जाती हूँ। देखने दे इसे दुनिया के मेले। पर याद रख दुनिया की उलझन इसे रोज़ काटेगी और रोज़ खायेगी। जानती है उस समय की स्थिति ! तब यह न मर सकेगा और न ज़िन्दों में रहेगा। देखूँगी तब तेरी ममता क्या करेगी ? तब तू सब कुछ देखते हुए भी कुछ कह तक न पायेगी। उस समय यह मृत्यु को बार बार याद करेगा पर मृत्यु इससे दूर हटती जायेगी।"

कालिमा हवा में लीन हो गई और स्वप्न टूटते ही माँ के हड़बड़ाते हुए हाथ विकास को टटोलने लगे। किन्तु हाथ विकास पर धरा ही रह

गया। विकास बार बार चिल्ला रहा था— 'माँ! माँ! माँ!' प्रतिध्वनि लौटकर कहती थी— 'क्या? क्या? क्या?'

विकास भौचक्का-सा यह भयंकर लीला देखता रहा। प्रकृति आज उस पर अपना सारा क्रोध उड़ेलती आ रही थी। तूफान के विकराल रूप में विकास कभी कभी चीख़ पड़ता और पुकारता, 'माँ!' प्रतिध्वनि नाच कर प्रश्न बन जाती। आत्मा मचल कर कहता— 'माँ मर चुकी, अब तुझे अपने पैरों पर चलना होगा। हिम्मत न हार! साहस की पतवार ले और आगे बढ़!'

"आगे बढ़!" इन शब्दों की ललकार लेकर विकास आगे बढ़ा। उसने निर्भय हो जलराशि के विकराल ताण्डव में जर्जर नाव छोड़ दी। उसके हृदय में उत्साह था, भुजाओं में मानव का बल।

सहसा विकास को नाव के बराबर में बहता हुए एक डाँड दिखाई दिया। बालक ने साहस करके उसे उठाया और नाव खेने लगा।

देखते ही देखते विकास की नाव उत्ताल तरंगों में संयम से तैरती दिखाई देने लगी। पर कहाँ बाढ़ और कहाँ एक बालक! श्वास फूलने लगा, हाथ पैर हारने लगे, पर वह हाँपता हुआ भी लहरों से लड़ता ही रहा। लहरों ने गर्ज कर कहा— 'कितनी दूर और चल सकेगा? पल दो पल बाद थक कर डूब ही जायेगा।'

उस अकेले पर असंख्य लहरों ने क्रुद्ध होकर एक साथ आक्रमण किया। गिरते हुए तरु-सा विकास का शरीर पैरों की जड़ें हिलने से हिल उठा। बालक थक कर नाव में गिर पड़ा, नाव डूबने लगी। डूबते डूबते विकास ने कहा— "कोई बचाओ! माँ! तुम भी कहाँ गई माँ!"

असहाय बालक की करुण ध्वनि तूफ़ान में विलोड़ित माँ की आत्मा ने सुनी। वातचक्र में नाचती हुई एक हवा लहरों के ऊपर आई और नाव को अपनी गोद में उठाकर ले गई।

इसके बाद विकास को कुछ पता नहीं रहा कि वह कहाँ है। जब उसे चेतना आई तो उसने देखा कि शराब की लहरों की तरह लहरें नाव को डगमगा रही हैं और नाव बहाव की ओर शराबी के पैरों की तरह लड़खड़ाती हुई आगे बढ़ रही है।

विकास ने उठ कर फिर डाँड सँभाला। वह नौका लहरों के प्रतिकूल खेने लगा। बिचारा चारों ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था पर कहीं किनारा न दीखता था। नाव खेते खेते वह थक गया, पतवार हाथों से छूट पड़ी। गिरते हुए माँझी को नाव ने सँभाल लिया।

नाव नाविक को गोद में बिठा स्वयम् लहरों से जूझने लगी। वह तूफानी जलप्रवाह में मद्यप की झूम की तरह मस्ती में आगे बढ़ी। अपने भीषण जलप्रवाह में नौका की मनमानी देख लहरें क्रोध से उफन उठीं। तूफान का एक भयंकर झोंका आया। नाव डूबने लगी। विकास फिर उठा। मानव के बल ने साहस कर फिर पतवार सँभाली। समुद्र की छाती पर क्षितिज की तरह खड़ा हो वह नाव खेने लगा। इस बार अज्ञात शक्ति ने उसका साथ दिया। हवा नाव को अपने वेग से आगे बढ़ाने लगी। विकास जीवन की आशा छोड़ समुद्र को ललकारने लगा, मानो वह स्वयम् शक्तिमान है। श्रम से थकान ने हार मान ली। विकास को विश्वास हो गया कि मैं तूफान में बढ़ सकता हूँ। इस भयंकर समुद्र की गति मेरी गति को नहीं जीत सकती। 'लहरों! गर्जो, कितनी गर्जती हो! आँधियो! आज तुम्हें अपनी शक्ति की शपथ है, बढ़ो, बढ़ो! कितनी बढ़ती हो।'

तूफान थक गये। सिन्धु की लहरें प्रतिबिम्बित तारक दीप ले विकास की आरती उतारने लगीं। बढ़ते हुए पैरों ने तट को पकड़ लिया। विकास के शक्तिसम्पन्न मृदुल चरण छू किनारे ने साधना सफल की।

विकास नाव से उतर सिक्ता के विस्तृत भूखण्ड पर खड़ा सोचने लगा। अन्धकार अब भी मुँह फाड़े क्रोध से उसकी ओर घूर रहा था।

गहरे शून्य में विकास पथ भूला सा चारों ओर देखता और सोच-सिन्धु में डूबने लगता। 'अब मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? मेरा वह सब परिवार अब कहाँ है ? अन्धकार, जल और बालू के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ! अच्छा होता यदि मैं समुद्र में डूब ही जाता। तो क्या मैं अब समुद्र की इन उत्ताल तरंगों में समा जाऊँ ? नहीं, तो फिर क्या करूँ ? इस सुनसान में एक चिड़िया का बच्चा तक मेरी सुनने वाला नहीं। चलूँ, फिर डूब कर प्राण दे दूँ ?'

वह डूब कर प्राण देने को आगे बढ़ा। तट तक पहुँचते ही विचार वापिस आ गये। प्राणों के मोह ने उसे पीछे धक्का दे दिया। मृत्यु ! कितनी भयंकर है इस अवश्यम्भावी की कल्पना भी !

विकास फिर सुन्न खड़ा रह गया। पल भर बाद वह वहीं घुटनों में सर देकर इस प्रकार बैठ गया जैसे पेड़ का सूखा हुआ टहना गिर पड़ता है। वह ठिठरे हुए लट्ठे सा सुन्न था। उसने काँपते हुए स्वर में चीख कर कहा— 'ईश्वर ! या तो तू मुझे मरने की शक्ति दे या चलने की।'

विकास का करुणा भरा स्वर गगन में गूँज गया। सूर्य की स्वर्ण-रश्मियों ने करुण-ध्वनि सुनी। बालारुण की किरणें बालक का तन सहलाने लगीं। विकास उठा, उसने किरणों का कर पकड़ा और मन्थर गति से चलने लगा।

ठिठरा हुआ नंगा बालक चढ़ाई की ओर बढ़ चला। किरणें उसका तन तपाती हुई चल रही थीं। मीठी मीठी धूप के सहारे विकास पूर्व दिशा की ओर चढ़ता गया। उसके सर पर आकाश की छाया और पैरों में अपरिचित लक्ष्य की गति थी। वह हवा का हाथ पकड़े चल रहा था।

इस विलक्षण दुनिया में सुन्न को भी चलना ही पड़ता है। विकास चलता ही रहा। चलता चलता वह प्रश्न करता, पर सब शून्य में खो

जाते। वह रुका, उसने रुककर प्रश्न किया— "तो मैं कब तक इसी तरह चलता रहूँ?"

उत्तर में मन ने कहा— "जब तक जीवन है, जब तक घुटने न टूट जायें तू चल और तब तक चल जब तक तेरा एक भी कण बाकी है। यदि पैर न रहें तो हाथ के सहारे घिसटता हुआ चल, यदि केवल धड़ ही रह जाये तो रेंगता हुआ चल, पर चलना तो पड़ेगा ही।"

चलते चलते विकास को शाम हो गई पर कहीं लक्ष्य न मिला। जितना वह बढ़ता ऊँचाई उतनी ही बढ़ती जाती थी। उसका शरीर ठिठर कर जड़ सा हो गया। आत्मा देह को लोहे के लट्ठे की तरह ढकेलता चल रहा था।

निराशा के उन्माद में विकास की गति न रुकी। अनभिज्ञता के पैर आगे बढ़ते ही रहे। चलते रहने से मंज़िल स्वयम् मिल जाती है। विकास चलता ही रहा। चलते चलते लगभग आधी रात के बाद उसे दूरी पर गोलाकार अग्नि जलती दिखाई दी, मानो जंगल की सूखी घास बटोर किसी ग्रामीण ने तापने को आग सुलगाई है, या कोई तपस्वी अग्नि में तप कर रहा है।

विकास को बल मिला। वह आशा से आगे बढ़ा। सचमुच सहारे की कल्पना भी कितनी गति देती है। प्राणी संसार में अकेला आता है और अकेला जाता है, पर क्या बिना साथी और सहारे के दुनिया में चल भी सकता है!

थोड़ी ही देर में विकास अग्नि के निकट पहुँच गया। हवा की मनमानी में भी अग्नि वैसे ही तेज से दीपित थी जैसे संसार के तूफानों में भी प्रेम की ज्योति जलती ही रहती है।

अग्नि को प्रणाम कर विकास खड़ा हो गया। वह निर्निमेष दृष्टि से अग्नि की ओर देखने लगा। बिना पलक झपाये वह बराबर दो

घण्टे तक देखता रहा। सहसा उसे अग्नि में एक देवी दिखाई दी। विकास की आँखों से आँसू निकल पड़े, वह तड़प कर बोला— "मैं कहाँ जाऊँ, माँ!"

अग्निदेवी— 'तेरे लिये सब रास्ते खुले हैं। तू जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है। अग्नि आज तुझे जला नहीं सकती। आँधी, पानी और काल अभी तुझे छू नहीं सकते। तू अभी दुनिया के दोषों से दूर है। अभी तू सत्य का आकार है। आज तू वह बीज है जिससे काँटे भी पैदा हो सकते हैं और फूल भी। संसृति की अभिलाषा और निराशा तुझमें मचल रही हैं। तू स्वतन्त्र है, चाहे जहाँ जा!'

विकास— 'काँटे तो फूल के साथ ही रहते हैं माँ! और तुम! तुम कौन हो जो आग से भी नहीं जलतीं? कौन-सी शक्ति है तुम में जो यह अग्नि तुम्हें नहीं जलाती? कैसी है यह आग जो आँधी पानी में भी नहीं बुझती?'

अग्निदेवी— 'जो शक्ति देख कर तू आश्चर्य कर रहा है तेरे पास उससे बहुत बड़ी शक्ति है। यदि तू स्वयम् को भूल नहीं गया तो तू हमें अपने इङ्गित पर नचा सकता है। यह अग्नि तुझे तभी तक नहीं जलाती जब तक तू सत्य स्वरूप है।'

विकास— 'पर तुम कौन हो? क्या नाम है तुम्हारा?'

अग्निदेवी— 'मैं तपस्या हूँ। मनुष्य मुझे प्राप्त कर देवत्व पा लेता है। मैं मनुष्य के लिये देवलोक की राह हूँ। मुझे पा प्राणी अप्राप्य भी पाने में समर्थ है। पर तू क्या लेने आया है इसका उत्तर भविष्य के गर्भ में है। फिर भी बता तू चाहता क्या है?'

विकास— 'मैं क्या चाहता हूँ यह मैं स्वयम् नहीं जानता। मैं कौन हूँ, कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा, यह मुझे कुछ पता नहीं।'

अग्निदेवी— 'तू अभी अपरिचित है। परिचय जीवन की विषमता भी है और पगडण्डी भी। तू परिचय और प्रयोग के लिये बढ़! राह को साथी बनाकर बढ़! राह को राह बताता हुआ चल! प्रकृति के फल फूल तुझे शक्ति देंगे।'

विकास— 'तो अब मैं कहाँ जाऊँ?'

अग्निदेवी— 'जिधर को गति ले जाये, जहाँ को पैर बढ़ें। किन्तु सावधान! सँभल सँभल कर! तेरे साथ तेरे शत्रु भी चलेंगे।'

विकास— 'शत्रु! कैसे शत्रु? किसके शत्रु? कहाँ हैं वे?'

अग्निदेवी— 'वे तुझे दिखाई नहीं देते, पर काटने की ताक में लगे हुए हैं। जा! जो होना होगा वह हो कर ही रहेगा।'

विकास— 'तो मैं जाऊँ माँ!'

अग्निदेवी— 'मैं रोकूँ भी तो तू रुक न सकेगा। जा, पर दूरदर्शिता से देखता हुआ जा!'

तपस्या को प्रणाम कर विकास चल पड़ा। वह संकल्प विकल्पों से अपरिचित खोया खोया सा चला जा रहा था। चलते हुए राही का उषा ने अभिनन्दन किया। बालारुण की कोमल किरणों ने आरती उतारी। विकास कुछ देर को बैठ गया, लेकिन उसने देखा कि सूर्यदेव तो चल रहे हैं फिर मैं क्यों थक कर बैठूँ! उत्साह ने ललकारा, वह फिर चलने लगा।

वह चढ़ाई की ओर सीधा चढ़ा चला जा रहा था, कि कहीं से शंख की ध्वनि उसके कानों में गूँजी। दूसरे ही पल घण्टे और घड़ियालों की टन टन भी सुनाई दी। विकास ने अपनी राह बदली। वह घण्टे, घड़ियालों के स्वर की ओर चल पड़ा।

इधर गया, उधर दौड़ा, और अन्त में वह मन्दिर मिल ही गया, जहाँ से आरती के शब्द आ रहे थे। मन्दिर में प्रवेश करते ही विकास ने

एक शुभ्र प्रस्तर मूर्ति के दर्शन किये। मूर्ति के आगे एक छाया प्रेम-विभोर हो नाच रही थी। वह भाव-भक्ति छाया को देखता रह गया। घन्टे, घड़ियाल और शंखों की अलक्ष्य ध्वनि के बीच भजन की तान सुन विकास मन्त्र-मुग्ध सा हो गया। तन्मयता से नाचती हुई छाया कभी मूर्ति के आगे माथा टेकती और कभी आरती उतारने लगती, कभी फूल चढ़ाती और चन्दन चढ़ाने लगती, कभी नाचती नाचती बाँसुरी बजाती और कभी आँखों से अर्घ्य चढ़ाने लगती।

विकास मूर्ति के चरणों में माथा टेक कर बैठ गया। छाया विकास को देख कर श्रद्धा से हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। विभोर होकर उसने विकास को छाती से चिपटा लिया। आँखों से अविरल आँसू बहा वह विकास का मुँह भिगोने लगी। और फिर आँचल से उसका मुँह पूँछती हुई बोली— "आगये मेरे भगवान्! सुधि के सहारे अवसाद को भी प्रसन्नता मानती हुई कब से इन चरणों की प्रतीक्षा में थी। मुझ विरहिन को दर्शन तो दिये तुमने प्रभु! बालक के रूप में आये हो! वह मुकुटमण्डित भव्य छवि कहाँ छोड़ी! शीत ने सताया होगा।" कहते कहते उसने अपनी धोती उतार विकास को पहिना दी।

छाया को नंगी देख विकास ने कहा— "क्या कर रही हो माँ! कौन हो तुम?"

छाया— "तुम सब जानते हो स्वामी! भूल गये अपनी भक्ति को भगवान्!"

विकास— "भक्ति! बड़ी तन्मयता है तुम्हारे प्रेम में! तुम सब को ईश्वर स्वरूप ही देखती हो।"

छाया— "ईश्वर के स्वरूप के अतिरिक्त और है क्या? आओ मेरे भगवान्! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगा कर सुलाऊंगी।"

विकास— "बहुत उत्कण्ठा है तुममें माँ! मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं तो एक राही हूँ। मुझे जीवन का पथ बताओ।"

छाया— "मैं भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती भगवान्! क्या मेरी परीक्षा ले रहे हो नारायण! मैं तो आपकी भक्ति हूँ, भक्ति!" कहते कहते छाया विकास का माथा चूमने लगी।

विकास ने मूर्ति की ओर देखा, एक अद्भुत ज्योति मूर्ति में दिखाई दी। वह उत्सुकता से भक्ति की ओर देख कर बोला— "देखो माँ! मूर्ति में भगवान् प्रकट होकर दर्शन दे रहे हैं।"

छाया दौड़ कर मूर्ति के पैरों से चिपट गई। आँसुओं से भगवान् की मूर्ति के चरण पखारती हुई बोली— "उधर तुम बालक के रूप में साकार और इधर ज्योति के रूप में साक्षात् हो। बस अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी। मैं निराकार की आशा पर अवलम्बित नहीं रह सकती। मुझे साकार साथ चाहिए। आज मेरी झोली में यह वरदान डाल दो कि मुझे छोड़कर नहीं जाओगे।"

प्रतिध्वनि में मूर्ति में से स्वर निकला— "जो मेरा हो कर रहता है मैं उस से कभी दूर नहीं रहता।"

भक्ति भगवान् के पैरों में बच्चे की तरह चिपट कर प्रेम के आँसू बहाने लगी। विकास चित्रखिचित सा खड़ा रहा और फिर अद्भुत तल्लीनता से विलक्षण प्रेरणा ले चल पड़ा। वह चलता हुआ भक्ति और तपस्या के दृश्यों को भावनाओं में देख रहा था। वह खेल में खोया सा सोचता था कि ये भी इन्द्रजालिक के खेल ही होंगे। मंज़िल की कितनी ही दूरी उसने विचारों के इन खेलों में खो दी। प्रकृति और विचारों के चित्रों में घूमता हुआ वह ऊपर की ओर चढ़ने लगा।

चढ़ता चढ़ता जब वह एक चौरस शिला के सामने आया तो उसने देखा कि एक दिव्य देवी ध्यानमग्न बैठी है जिसकी आँखों के सामने किसी का छायाचित्र है। विकास विजन बन में बैठी उस देवी के समीप पहुँच श्रद्धा और उत्सुकता से खड़ा होगया। उत्सुकता मूक न रह सकी। सहसा विकास ने कहा— "कौन हो तुम!"

उत्तर में एक ध्वनि सारे ब्रह्माण्ड में गूँजी— "उपासना।"

विकास ने फिर पूछा— "तो क्या जीवन का सत्य उपासना है?"

उत्तर— "जीवन का सत्य जीवन ही बतायेगा। यहाँ उपासना के अतिरिक्त कुछ नहीं।"

विकास चल पड़ा। टेढ़ी मेढ़ी बटिया पार करता हुआ वह अबाध गति से चलता रहा। लगभग घण्टे भर बाद उसे एक विचित्र तेज दमकता दिखाई दिया। पास जाकर उसने उस तेज में एक महात्मा के दर्शन किये। प्रणाम कर बालक ने कौतूहल से पूछा— "आप सूर्य के सदृश तेजस्वी हैं। कृपा करके आप मुझे अपना परिचय दीजिये।"

महात्मा— "मैं ज्ञान हूँ बालक।"

विकास— "तो मुझे अपना शिष्य बना लीजिये महात्मा! मैं अबोध बालक आप से ज्ञान चाहता हूं।"

महात्मा— "शिष्य बनना सरल नहीं है बालक! जिज्ञासु बनने से पहिले परीक्षा अनिवार्य है। जा, इस पहाड़ की चोटी की दूसरी ओर दुनिया है, वहाँ से जीवन का सत्य ढूँढ कर ला, और ले इस खोज के लिये मैं तुझे भाषा और लिपि देता हूँ।"

विकास ने तीन वर्ष तक वहाँ रह कर भाषा और लिपि सीखी। इसके बाद वह गुरु को प्रणाम कर सत्य खोजने चला। वह पर्वत की चोटी को ललकारता हुआ आगे बढ़ा। अब वह बालक नहीं पथिक था। वह उत्साह और गति से खोजने की चाह लेकर चल रहा था।

कभी वह चट्टान से कुछ कहता, कभी वह धूलि की सुनने लगता। कभी आकाश की ओर देखता और कभी अतीत की कहानी दोहराता। चढ़ता चढ़ता वह चोटी तक पहुँच गया। चोटी पर ध्वजा-स्तम्भ की तरह खड़ा वह सोचने लगा कि अब किस ओर को चलूँ। कुछ देर सोच वह दूसरी तरफ से नीचे की ओर उतरा। अब वह ढलाव पर आ गया था।

वह चल रहा था पर गिरने के भय से सँभल सँभल कर। वह ऐसे चल रहा था मानो ढलाई उसे चलना सिखा रही है।

पगडण्डी और हवा की उँगली पकड़े पथिक चलता ही रहा। कई दिन बाद वह उस स्थान पर आया जहाँ पहाड़ से झरने छूट रहे थे। अब विकास झरनों के बराबर बराबर चलने लगा। निरन्तर चलने के बाद वह समतल पर आया। यहाँ से झरने द्रुत गति से सरिता की शक्ल में राही के साथ साथ चले।

विकास सरिता के किनारे किनारे चला जा रहा था। विस्तृत शून्य में सरिता की कल कल ध्वनि से विकास के श्वास स्वर ताल के सदृश मिल अलौकिक आनन्द में थे।

वह चिन्तारहित चेतन चला जा रहा था कि उसके कानों में आवाज़ आई— ओ भैया यात्री!

विकास ने ध्यान बदलकर देखा कि नदी के दूसरे तट पर हाथ में दीपक लिये एक नंगा साधू खड़ा है। उसके खड़े होने का ढंग कह रहा था कि वह जल्दी से जल्दी कुछ कहकर ऊपर की ओर जाना चाहता है।

उसने विकास के कुछ कहने से पहिले ही फिर कहा— "ओ भैया पथिक!"

विकास— "आज्ञा मुनिवर!"

साधू— "कहाँ जा रहे हो?"

विकास— "दुनिया में।"

साधू— "क्यों?"

विकास— "जीवन का सत्य खोजने।"

साधू— "तू वहाँ खो जायेगा।"

विकास— "यदि मैं खो गया तो रहस्य भी खुल जायेगा।"

साधू— "वहाँ बहुत से ठग हैं यात्री! उन से दुनिया में कोई नहीं बचता। तू वहाँ न जा! वहाँ जा कर प्राणी फँस जाता है। वह निकलना चाहता हुआ भी नहीं निकल पाता।"

विकास— "बिना नर्क के स्वर्ग का मूल्य कैसे आँकूँगा महामुनि!"

साधू— "वहाँ तुझे दुःख उठाने होंगे।"

विकास— "अभी तो मैं दुःख और सुख कुछ जानता ही नहीं।"

साधू— "वह आग की भट्टी है जिसमें जल जायेगा।"

विकास— "तप कर कुन्दन भी तो निकल सकता है।"

साधू— "यह तेरा मिथ्याभिमान है। वह स्याही की काली कोठरी है जिसमें घुसने वाले के दाग़ लगे बिना नहीं रहता।"

विकास— "क्या उस कोठरी की स्याही छुटाई नहीं जा सकती?"

साधू— "जब सत्युग, द्वापर और त्रेता में नहीं छूटी तो कलियुग का कठपुतला क्या छुड़ायेगा! कौन है आज छुटाने वाला?"

विकास— "विकास।"

साधू— "इस युग में विकास तो पतन को कहते हैं। विकास की ओर लपकती हुई दुनिया पतन को पकड़ रही है।"

विकास— "परिवर्तन प्रकृति का नियम है महात्मा! रात के बाद दिन भी निकलता है। पतझड़ के बाद बसन्त भी आता है। क्या बताओगे महात्मा कि पूर्वजों ने अपने युग को सत्युग और हमारे युग को कलियुग की काली भावनाओं से क्यों देखा? क्यों कि वे चतुर नीतिज्ञ थे। पूर्व का आदर्श भविष्य को धुँधला ही क्यों देखता है? मैं यथार्थ की नींव पर नया सत्य खोज कर ही रहूँगा।"

साधू— "आज तू आवेश में है। कल तेरा घमण्ड चूर हो जायेगा। यह वह फिसलन है जिस पर रपटने से कोई नहीं बचता।"

विकास— "गिरकर ही तो उठने का महत्त्व है महात्मा!"

साधू— "होनी होकर ही रहेगी। यदि तू नहीं मानता तो जा! पर सावधान! तनिक अन्तमुंख हो कर भी देखता हुआ चलियो! अगर तू अन्दर के शत्रुओं से बचा रहा तो जा तू अजेय है। पुनः सावधान! सँभल सँभल कर पग धरना! तू जिधर चले वह पथ बन जाये।"

इतना कह कर साधू ऊपर की ओर चल दिया। चलते चलते महात्मा ने फिर कहा— "भूलभुलैया में भूलना मत! सावधान यात्री! सावधान!!"

विकास ने अपनी राह पकड़ी। गङ्गा की गति उसके पैरों को गति दे रही थी। वह जैसे जैसे आगे बढ़ता वैसे ही वैसे उसे नवीनता मिलती। आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की चहचहाहट, जल में उछलते कूदते जलचरों की विभिन्न कलायें; और प्रकृति के पेड़ों की पंक्तियाँ अब उस का मन बहलाने लगीं।

प्रकृति की विचित्र छटा में विकास प्रकृति के स्वर सा जा रहा था। वन के फलों को खाता हुआ, वन पुष्पों की सुगन्ध से भीगता हुआ, शीतल मन्द समीर में झूमता हुआ, तथा बलकल के परिधान में हरे पल्लवों के बीच फूलती हुई किरण सा वह जा रहा है, कोई नहीं जानता कि इसकी मन्ज़िल कहाँ मिलेगी!

वह चला जा रहा था कि उसने आकाश मार्ग से एक व्यक्ति जाता देखा। देखते ही विकास ने आवाज़ दे कर कहा— "ओ भैया आकाश-मार्गी! कहाँ जा रहे हो?"

आकाशमार्गी— "हम जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं। हम सिद्ध हठयोगी हैं। इस समय तो हम कैलाश पर भगवान शंकर के यहाँ बूटी पीने जा रहे हैं।"

विकास— "और आ कहाँ से रहे हो ?"

आकाशमार्गी— "समाधि से ।"

विकास— "तुम्हे पता है दुनिया कितनी दूर है ?"

आकाशमार्गी— "जितनी दूर भी चले जाओ। अरे दुनिया में क्या लेगा ? योगमार्ग पर चल, वहाँ तुझे सिद्धि मिलेगी ।"

विकास— "पर मुझे तो जीवन का सत्य चाहिये ।"

आकाशमार्गी— "जीवन का सत्य संसार में कहाँ पगले ! वह तो योगियों में है। पर तेरी इच्छा, जा घूम आ ! डर यही है कि कहीं उलझ ना जाये ।"

योगीराज आँखों से ओझल हो गये। विकास राह के साथ राह के साथियों से बातें करता बढ़ता चला। जैसे जैसे वह आगे बढ़ता वैसे ही वैसे उसे तरह तरह की ध्वनियाँ सुनाई पड़तीं।

चलता चलता वह एक ऋषि आश्रम में आया, जहाँ यज्ञकुण्ड के चारों ओर बैठे हुए ऋषि सस्वर वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। विकास भी यज्ञ में पधार गया। यज्ञ की समाप्ति पर उसने उन ऋषियों से कहा— "महात्मावृन्द ! मैं जीवन का सत्य ढूँढने दुनिया में जा रहा हूँ, मुझे उपाय बताइये ।"

ऋषियों में से एक महर्षि ने आसन पर खड़े हो कर उत्तर दिया— "सत्य ही से जीवन का सत्य पा सकेगा ।"

विकास— "सत्य कहाँ मिलेगा ?"

महर्षि— "सत्संग में। यदि सत्संग न मिले तो सद्ग्रन्थों के सहारे खोजना और यह न भूलना कि मैं दुनिया में हूँ, जहाँ प्राणी का अस्तित्व स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं। सर्वास्तिवाद एकमात्र ईश्वर है ।"

विकास— "आशीर्वाद दो महर्षि !"

महर्षि— "ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे ।"

विकास आगे बढ़ा। पथ के साधुओं ने उस का मार्ग रोका। हर क़दम पर एक नया साधू था। किसी ने उसे सावधान किया, किसी ने कहा दुनिया से भाग जा। किसी ने धर्म ही श्रेष्ठ बताया, किसी ने कर्म ही प्रधान कहा, किसी ने कहा तप ही में मुक्ति है, किसी ने कहा वैराग्य ही कल्याण का मार्ग है, किसी ने कहा ठगो और मज़ा करो, किसी ने कहा दुनिया से दूर ही सुख है।

गेरुए वस्त्र वाले प्रत्येक साधु की बात पल्ले में बाँधता हुआ विकास चलता रहा। जब वह साधुओं की बस्ती से आगे निकला तो उसने सूखे पेड़ के तने से कमर लगाये एक युवक को जड़वत् बैठे देखा। "यह जीवित है या मरा हुआ"— विकास के मन में संदेह हुआ। युवक आकाश की ओर एक टक देख रहा था। उसके सारे शरीर में छेद ही छेद थे। छेदों से खून चू रहा था। पर इन घावों की जैसे उसे परवाह ही नहीं। वह भावुकता सा उद्विग्न और ध्यानमग्न मौन न जाने किस कहानी को देख रहा था। यहाँ तक कि उसने सामने खड़े विकास को भी नहीं देखा।

पल दो पल विकास देखता रहा, और फिर बोला— "ओ भैया!"

विकास की आवाज़ ने उसका स्वप्न तोड़ दिया। उसने पागल की तरह उस की ओर देखा, और फिर घृणा तथा दया की आँखों से घूरते हुए कहा— "क्या है?"

विकास— "कौन हो भैया तुम? यहाँ इस तरह क्यों बैठे हो?"

यह सुनते ही पहिले तो उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े, पर दूसरे ही क्षण उसने बावले की तरह देखते हुए कहा— "यहाँ भी मुझे नहीं बैठने देते। तकवे चुभा चुभा कर भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ। मैं कौन हूँ अब भी तुम मुझे नहीं पहिचानते। मैं बदमाश हूँ, बदमाश। पागल हूँ, मैं पागल! लो पहिचानो मुझे। मैं समाज के सीने पर खड़ा हुआ शूल

हूँ। मैं वही दीन हीन निर्धन कलाकार हूँ जिस की लाश पर दुनिया दिवाली मना रही है। जले पर नमक छिड़कने आये हो! मेरी चर्चा में चीख चीख कर तुमने अपने गले फाड़ डाले। तुम हत्यारे हो हत्यारे! तुमने उसे खाया है उसे, वह जो मेरे मन्दिर में आज भी बैठी है। तुम वे ही हो जिन्होंने मेरी फुलवारी को नोच नोच कर अट्टहास किया है। तुम वे ही हो जो दो प्रेमियों को नहीं देख सके। तुम पत्थर से भी कठोर हो। बरसो मेरे ऊपर कहाँ तक बरसोगे! मैं कहता हूँ वह मेरी थी, मैं उस से प्रेम करता हूँ। मैं कहता हूँ करुणा मेरी थी, मेरी! करो मेरा क्या करते हो! मारो मुझे, डलवादो मेरे हाथों में हथकड़ियाँ! करो मेरा अपमान ढोल पीट पीट कर! फेंक दो मुझे समाज से ठुकरा कर! नोच डालो मुझे! जब मेरी करुणा ही चली गई तो मैं दुनिया को रख कर ही क्या करूँगा? निकालो अपने मन की! पीट डालो मेरा सर! करुणा! करुणा! करुणा!! तू कहाँ है? देख तेरा प्रभात तुझे पुकार पुकार कर रो रहा है। तू तो कभी इतनी कठोर नहीं होती थी, इस वार तुझे क्या हो गया करुणा! बोल करुणा! बोल! नहीं बोलती, नहीं बोलती! अच्छा तो ले!"

कहता कहता प्रभात अपना सर पेड़ के तने से दे देकर मारने लगा। विकास से न देखा गया, उसके हृदय में करुणा उमड़ आई। उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने प्रभात को पकड़ कर अपनी छाती से चिपटा लिया, और फिर हाथ से उसके माथे का लहू पूँछ कहने लगा— "क्यों भैया! इतने अधीर क्यों हो रहे हो? धैर्य धरो! मुझे अपना ही समझो!"

प्रभात— "नहीं नहीं, मेरी केवल करुणा थी, और कोई नहीं। ईश्वर भी मेरा नहीं। यदि उसके हृदय में दया होती तो वह मेरी करुणा को क्यों ले जाता?"

विकास— "अच्छा तो तुम्हें करुणा ही तो चाहिये। करुणा को पाने का यत्न करो, खोने का नहीं! यदि तुम खो गये तो वह भी खो जायेगी। करुणा को ढूँढने के लिये धैर्य धरो। चलो उसे ढूँढें!"

प्रभात— "अब उसे कहाँ ढूँढें? वह दुनिया की ज़ञ्जीरें तोड़ कर मेरे पास आई थी, पर काल की ज़ञ्जीरें नहीं टूट सकीं!"

विकास— "काल की ज़ञ्जीरें भी तोड़ेंगे भैया! उठो, हार मान कर भागो मत! जीवन का काम हारना नहीं, जीतना है।"

प्रभात— "मैं तो हार चुका, तुम जाओ; यदि जीत कर आये तो तुम्हारा अभिनन्दन करूँगा।"

विकास— "नहीं, नहीं। यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें इस हाल में छोड़ कर नही जाऊँगा। तुम्हें चलना होगा।"

प्रभात— "नहीं, मैं नहीं जाऊँगा, मुझे तंग मत करो!"

विकास— "क्या अकर्मण्य होकर बैठे रहोगे, क्या यही जीवन का उपयोग है? यही जीवन का सत्य है?"

प्रभात— "मैं सत्य और असत्य को नहीं जानता। मैंने केवल प्रेम पढ़ा है। यदि मुझसे कोई पूछे कि सत्य क्या है, तो मैं यही कहूँगा कि प्रेम!"

विकास— "और तुम्हारी जो दशा है इसे क्या कहोगे?"

प्रभात— "प्रेम का परिणाम। तुम दुनिया में जा रहे हो इसलिये सुन लो! प्रेम का परिणाम है प्यास। आशा का परिणाम है निराशा सुख का परिणाम है दुःख और स्वप्न का परिणाम है मृत्यु।"

विकास— "और जीवन का परिणाम क्या है?"

प्रभात— "यह तो वही बता सकता है जो जीवन की यात्रा समाप्त कर चुका है।"

विकास— "तो चलो ढूँढें जीवन का परिणाम।"

प्रभात— "खोजो तुम ही, मुझे खोजने की आवश्यकता नहीं। मैं तो केवल करुणा को खोज रहा हूँ! करुणा को।"

कहता कहता प्रभात फिर रोने लगा। वह ज़ोर ज़ोर से "करुणा करुणा!" पुकार उठा। पुकारते पुकारते उसका श्वास रुकने लगा। विकास ने उसे हृदय से लगा बड़ी कठिनता से शान्त किया, नहीं तो वह धरती में सर पटक पटक कर मर जाता। प्यार से समझा बुझा कर विकास ने कहा— "चलो भैया! मैं तुम्हें तुम्हारी करुणा दिलाऊँगा।"

प्रभात— "क्या तुम मुझे करुणा के पास ले चलोगे? क्या सच कहते हो तुम? मैं उससे दो बात करना चाहता हूँ, करा सकोगे?"

विकास— "दो बात, दो बात कभी पूरी नहीं होतीं। दो बात करोगे, चार की प्यास बढ़ जायेगी।"

प्रभात— "नहीं, नहीं! तुम मेरी उस से बात करा दो। कहते हैं मृतक आत्माओं से बातें कराने वाले हैं।"

विकास— "यदि तुमने साहस नहीं छोड़ा तो।"

प्रभात— "नहीं, नहीं, करुणा की चाह साहस करा ही लेगी। चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

विकास— "तो उठो, और शक्ति के साथ आगे बढ़ो!"

प्रभात— "शक्ति तो करुणा थी भैया! उसके मरते ही उत्साह भी मर चुका। चलो तुम्हारे पैरों के बल पर चल रहा हूँ।"

प्रभात और विकास आशा का आँचल पकड़ कर चल पड़े। प्रभात की आँखों में, हृदय में, पैरों की गति में केवल करुणा ही करुणा थी। वह बोलता था करुणा से, देखता था करुणा को, चलता था उसी की पगध्वनि के सहारे। और विकास की पगध्वनि में जीवन का सत्य खोजने की चाह थी।

करुणा की कहानी कहते सुनते और चलते हुए दोनों को शाम हो गई। थके हुए बटोही सुस्ताने को पेड़ के नीचे बैठ गये। प्रभात कहने लगा— "तो तुम मुझे कहाँ ले चलोगे?"

विकास— "जहाँ करुणा मिलेगी।"

प्रभात— "तुम तो दुनिया की तरफ चल रहे हो।"

विकास— "करुणा तुम्हें कहाँ मिली थी?"

प्रभात— "दुनिया में।"

विकास— "और खोई कहाँ?"

प्रभात— "दुनिया में।"

विकास— "तो उसे ढूँढेंगे भी दुनिया ही में।"

प्रभात— "नहीं नहीं, मैं दुनिया में नहीं जाऊँगा, वहाँ तो जल्लाद रहते हैं।"

विकास— "और देवता कहाँ रहते हैं?"

प्रभात— "जहाँ करुणा रहती है।"

विकास पल भर के लिये सोच में पड़ गया। फिर तुरन्त ही बोला— "दीपक तो अँधेरे ही में जलता है न?"

प्रभात— "हाँ।"

विकास— "तो देवता भी दुनिया ही में रहते होंगे।"

प्रभात— "नहीं, नहीं, नहीं!"

विकास ने जो बड़बड़ाते हुए प्रभात की आँखें देखीं तो लाल अंगारा हो रही थीं। देखते ही देखते उनसे नदी बह चली। ऐसी विचित्र स्थिति में रात्रि की शून्यता के बीच एक अनुपम छाया सुन्दरी विकास की आँखों के सामने आई। उसमें शान्ति थी, सौन्दर्य था और थी मीठी झपकी। उसके आते ही प्रभात अपनी कोहनी पर सिर रख कर

सो गया। और विकास ने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए कहा— "तुम स्वप्न हो या सत्य? कौन हो तुम देवी!"

सुन्दरी— "मैं गाढ़ निद्रा हूँ। प्राणी जब थक जाता है तो मैं उसे शान्ति देती हूँ। करुणा के विरह में इसे नींद नहीं आई। इसलिये मुझे साकार होकर सामने आना पड़ा। यदि यह अब एक पल भी और न सोता तो पागल हो जाता। तुम्हें भी चलते चलते कितनी ही रातें बीत चुकीं। अब आज की रात सो जाओ। बहुत लम्बी है तुम्हारी ज़िन्दगी की मंज़िल।"

विकास— "मैं दुनिया में जीवन का सत्य खोजने आया हूँ, सोने नहीं आया।"

सुन्दरी— "सोना ही पड़ेगा राही! बिना सोये ज़िन्दगी नहीं कटेगी। दुनिया में निद्रा के अतिरिक्त कहीं शान्ति नहीं मिलती। मैं वह माँ हूँ जो कभी पत्नी नहीं बनती। मैं वह माँ हूँ जो अपनी गोद में सबको सुलाती है। अच्छा अब सो तू भी।"

नींद जब आती है तो पत्थरों पर भी आ जाती है। दोनों यात्री झाड़झंखाड़ के घने जंगल में सूखे पेड़ के नीचे सो गये। स्वप्न भी सो गये और कल्पना भी सो गई।

अरुणोदय के स्वर्णिम प्रभात में रश्मियों के कोमल स्पर्श ने विकास और प्रभात के बदन सहलाये। अद्भुत छटा और टीं, वी, टीं, वी, की ध्वनि ने जागरण गीत गाये। प्रकृति के मनोहर दृश्य मानो मनुष्य की कृति को धिक्कारते हुए थके पथिकों का स्वागत कर रहे हैं।

विकास की आँखें खुलीं। उसने सूर्यनारायण को नमस्कार किया। प्रभात भी उठ बैठा। विकास ने कहा— "कौन जानता है यह रचना कब हुई और किसने की!"

प्रभात— "जो रचना होती है उसकी परिभाषा भी बन ही जाती है। किसी जिज्ञासु ने यह रहस्य भी पाया ही होगा। जिसने सृष्टि को पहिचान लिया उसके लिये स्रष्टा को जानना क्या कठिन है। कविता आत्मा की अभिव्यक्ति ही तो है, मानो यह कविता अपने कवि को अन्तस्तल में छिपाये आनन्द से गा रही है और गाती रहेगी।"

विकास— "क्या तुम देख रहे हो उसे?"

प्रभात— "नहीं।"

विकास— "फिर अनुमान कैसे लगाया?"

प्रभात— "अनुभूति से। तिरस्कार और दुःखों की ठोकरें खाता हुआ जब मैं अन्तर्मुख होता हूँ तो आधार की अनुभूति को ईश्वर कह कर प्रणाम करता हूँ।"

विकास— "इस पहिचान की पिपासा क्या है।"

प्रभात— "प्रेम।"

विकास— "क्या तुमने प्रेम को साकार देखा है?"

प्रभात— "साकार देखा है और निराकार देखना चाहता हूँ। करुणा के कोमल शरीर में आकर वह साकार था। उसका वह देह अब नहीं जहाँ हृदय रहता था। इसी उलझन में हूँ कि देह से क्या चला जाता है जो वापिस नहीं आता। मेरा जो खो गया है उसे खोज रहा हूँ, या तो खोजूँगा, नहीं तो खोजता खोजता मर जाऊँगा।" कहता कहता प्रभात रोने लगा। रोते रोते उसने कहा— "तुम मुझे करुणा से मिलाने लाये हो। यदि नहीं मिलाया तो मुझे तुमसे भी घृणा हो जायेगी।"

विकास— "जो करुणा तुम्हारे हृदय में है, आँखों में है, प्रकृति के कण कण में देख रहे हो जिसे, उसे पागलों के प्रलाप में खोना चाहते हो! तुम तो कवि हो प्रभात! तूफान के एक झोके में सृष्टि

प्रलय के जल में घुल सकती है, पर तुम्हारी करुणा तुम्हारे काव्य में शाश्वत है। तुम्हारी प्रतिमा तुम्हारी वाणी में सदैव साकार है। तुम पुरुष हो, उत्साह से उठो! संसार से भागना तुम्हारे लिये अपयश है। लेखनी उठाओ और अमृत निचोड़ कर रख दो। यदि विष न पी सके तो अमृत नहीं पी सकते।"

प्रभात— "कौन सा ऐसा विष है जो मैंने नहीं पिया! अमृत के प्याले अधरों पर धरे, दुनिया हँसती रही और मैं विष के प्याले पीता रहा। मैं अपनी तड़पन पर हँसियों के नाच देखकर भी मूक रहा। मैं घृणा के बदले में कीर्ति देता रहा। मैं कुसुम वेला में शूलों की नोक पर भी नहीं डिगा। मैं प्रेम के बदले पाषाणों की वर्षा सहता रहा। पेट से पत्थर बाँधे, पर आँखों से आँसू न निकाला। मैं हिमालय की तरह स्थिर रहा, गंगा की तरह बहा, पर पथ के पत्थर न पिँघले। मैं नहीं हिलता चाहे प्रलय भी हिलाती, पर करुणा के जाने से मेरा हृदय टूट गया, उत्साह भंग हो गया। अब मेरे आँसू नहीं रुकते। अब मेरा पागलपन बिखरना चाहता है। मुझे मत छेड़ो! मैं एक बुझा हुआ अंगार हूँ। जानते हो क्या हो जायेगा? मैं इस शिला से यहीं अपना सर फोड़ फोड़ कर मर जाऊँगा! रहने दो भैया! मत जलते को जलाओ! क्या तुम भी मुझे तड़पाना चाहते हो? क्यों व्यर्थ थकते हो? तुम उतना नहीं तड़पा पाओगे जितना मैं स्वयम् तड़प रहा हूँ।"

विकास ने देखा कि कुछ भी कहने से प्रभात पागल की तरह सर फोड़ने लगेगा। भावावेश के प्रवाह में कहीं कुछ अनर्थ न कर बैठे, अतः उसी की भाषा में बोलते हुए कहा— "तुम्हारे हृदय को बहुत दुःख है भैया! दुनिया तुम्हारा दुःख नहीं पहिचान सकी। पर तुम्हें दुनिया पर क्रोध नहीं, दया आनी चाहिये। दुनिया पर दया कर के फिर से कलम उठालो! अपने लिये नहीं तो अपनी करुणा के लिये तो तुम्हें कलम

उठानी ही पड़ेगी। तुम करुणा को अमर देखना चाहते हो न! वह तुम्हारी कविताओं में ही अमर रह सकेगी। तभी एक दिन होगा जब संसार उसे श्रद्धा से स्मृति की ध्वनि में गायेगा। और भैया! क्या तुम्हारे दुखी रहने से करुणा की आत्मा प्रसन्न होगी। वह तो तुम्हारी कीर्ति और कविता से प्रसन्न होती थी न? तो तुम उसकी प्रसन्नता को छोड़ते क्यों हो।"

प्रभात— "जब करुणा ही नहीं रही तो फिर यह सब किसके लिये करूँ।"

विकास— "करुणा है, और कण कण में है। उसे सब में देखो। वह सत्य स्वरूप है। असत्य तो है ही नहीं, और सत्य कभी नष्ट नहीं होता।"

प्रभात— "पहाड़ के हृदय में गंगा निवास करती है, मरुभूमि में नहीं। उनमें करुणा कहाँ से देखूँ जिनमें हृदय ही नहीं। यदि इन दुनियावालों में करुणा होती तो करुणा जाती ही क्यों। वह बिचारी तो सब की ठोकरें सहती हुई कल्पना से परे चली गई। दुनिया में दया की परिभाषा कोमलता नहीं, कठोरता है।"

विकास— "चलो, कल्पना से परे भी पहुँचेंगे। हार कर भागो मत, आगे बढ़ो! पथ निर्माण करते हुए चलते रहो। भविष्य के पद-चिह्नों पर तुम्हारा इतिहास लिखा होगा।"

प्रभात— "इतिहास होगा और संसार भी होगा, पर वे पात्र नहीं होंगे जिनकी तड़प का रूप इतिहास ले लेगा।"

विकास— "और उस इतिहास में करुणा होगी।"

प्रभात— "करुणा ही तो मेरी कविता है। पर वह करुणा जिससे कविता बरसती थी अब .... "

विकास— "वह अब और भी अधिक कविता बरसायेगी, यही न!"

प्रभात— "नहीं, दुनिया के इस बूचड़खाने में मैं उस कोमल मधुरिमा का कोई चिह्न नहीं छोड़ना चाहता। दुनिया के लिये कविता एक खिलौनामात्र ही तो है, जिसे तोड़ते देर नहीं लगती। जानते हो कविता का वह क्या करेगी? वह उसे पगली बना कर पीछे पीछे दौड़ती हुई पत्थर मारेगी, उपासना के अमृत-बिन्दुओं पर थूक कर अट्टहास करेगी। तुम अभी दुनिया को नहीं जानते विकास! यह नोच नोच कर गिद्ध और कौओं की तरह मनुष्य का मांस खाती है। इसमें भावुकता के लिये भट्टी जल रही है। और फिर करुणा के कोमल कुसुमों में रहने वाला कवि क्या काग़ज़ के बनावटी फूलों में मन बहला सकता है!"

विकास— "समझो प्रभात! यदि खोया है तो पाओगे भी। अपनी कविता से अन्धे संसार की आँखें खोल दो! छेड़ दो वह गौरव गीत जिससे सत्य साकार दिखाई देने लगे। खोल दो उस उलझे हुए रहस्य को जो आज तक नहीं खुला! दहकादो इन आँसुओं से वे अंगार कि भ्रम भस्मसात् हो जाये। बहुत दिन हो गये इस काल में कवियों को काग़ज़ लीपते हुए, पर अभी तक कटखनों पर ही लिख रहे हैं। बदली हुई थाली में झूठा भोजन हमारे सामने आ रहा है। उठो, यदि लिख सकते हो तो उस से आगे खोज कर लिखो। अतीत के काव्य ने मनुष्य को परास्त कर दिया है। वह उससे आगे नहीं बढ़ सका, जो उसमें है वह कहीं नहीं देखते। दिखा दो वह जो उसमें नहीं है। यदि खोज पाये तो करुणा, कीर्ति और आनन्द तुम्हारी आरती उतारेंगे।"

प्रभात— "खोजना तो चाहता था पर अब चला नहीं जाता! मैं सब कुछ करता था और सब कुछ सहता था पर करुणा को देख कर थकता नहीं था। मैं उसकी प्रसन्नता में हरा था। हा! अब ऐसा पतझड़ हुआ कि हरियाली की आशा ही जाती रही। वह पेड़ जिसकी छाया में संसार बैठता था आज यात्रियों के थपेड़े खा रहा है।"

विकास— "नहीं प्रभात! प्रचण्ड सूर्य की तेजस्वी अग्नि की तरह तुम्हारी ज्वाला भी प्रकाश बन जाये, यही मैं तुम से चाहता हूँ। उठो, चलो!"

प्रभात को उठाता हुआ विकास उठा। दोनों बातें करते हुए चल पड़े। जैसे जैसे वे बढ़े वैसे ही वैसे चहल पहल बढ़ने लगी। उनके एक कान में रुदन की ध्वनि आती थी और एक में प्रसन्नता की पुकार। यात्रियों ने अपनी अगली मंज़िल पर पेड़ के नीचे पड़े एक कोढ़ी को कराहते देखा, जिसके सारे शरीर से मवाद चू रहा था। विकास और प्रभात उसके पास गये। सहानुभूति के शब्दों में पूछा— "क्या हुआ भाई!"

कोढ़ी— "काम का परिणाम भोग रहा हूँ। मैं सड़ सड़ कर मर रहा हूँ, पर आज मुझे फूलों पर रखने वाली वह रति भी मुझ से घृणा करती है। जो रूप मेरे होठों को चूमता था आज मुझे छोड़ कर चला गया। रूप रूप ही को चाहता है।"

विकास— "दुनिया में तुम्हें मिला क्या?"

कोढ़ी— "अविश्वास, स्वार्थ, दुःख, और मिले ठग। मैं प्यासा हूँ, मुझे थोड़ा पानी पिला दो!"

प्रभात दौड़ कर गंगा से अंजलि में जल लाया। जैसे ही जल कोढ़ी के मुँह में डाला कि उसने दम तोड़ दिया। दोनों यात्रियों ने शव गंगा में बहा दिया। शव बहा कर दोनों दार्शनिक चर्चा करने लगे। विकास के मन में दुःख और सुख की कल्पना जागी। वह प्रभात से बोला— "अब तक जो मिला, वह दुखी ही मिला। इस बिचारे की दशा देख कर तो मुझे दया सताने लगी।"

प्रभात— "अभी तो दुनिया बहुत दूर है, देखिये क्या क्या देखना पड़ता है।"

प्रभात यह कह ही रहा था कि दूर से आवाज़ आई, 'इधर आओ, यहाँ सुख है।' दोनों ध्वनि की ओर चले। पास पहुँचने पर देखा कि मल, मूत्र और कफ़ के सड़े हुए गढ़े में एक मरणासन्न मनुष्य चिपटा हुआ पड़ा है। देखते ही विकास ने कहा— "अरे इस बिचारे की यह दशा ! निकालो इसे।" कहते हुए दोनों निकालने को लपके।

पर चिपटे हुए मनुष्य ने रो कर कहा— "नहीं नहीं, मुझे इसी में रहने दो। मैं यहीं सुखी हूँ।" प्रतिध्वनि में गढ़े से आवाज़ आई, 'मैं मोह हूँ, मुझसे चिपटा हुआ मनुष्य छूटता नहीं।'

दोनों निकालने का यत्न करके थक गये पर वह न निकला। हार कर चल दिये। कुछ आगे बढ़ते ही उन्होंने कुत्ते की तरह भौंकते हुए एक आदमी को देखा। उसकी आँखें लाल और हाथ में पेड़ का एक कटा हुआ गुद्दा था। इन्हें देखते ही वह इनकी ओर झपटा।

उसे झपटते देख विकास ने नम्रता से कहा— "क्यों भैया ! ज़रा ठहरो, बात तो सुनो !"

पागल— "मैं किसी की नहीं सुनता। क्रोध ने मुझे पागल बना दिया है। दूर हो जाओ मेरे आगे से, नहीं तो खा जाऊँगा।"

बच कर दोनों निकल गये। आगे बढ़े तो उन्हें सोने में लदी हुई एक सुन्दरी मिली। दोनों को देखते ही वह बोली— "मैं तुम्हारे लिये आई हूँ।"

इधर वह यह कह रही थी, उधर विकास की आत्मा से ध्वनि निकली, 'सावधान ! यह माया है, फेर में न पड़ना।' यह ध्वनि गूंज ही रही थी कि माया में विचित्र हाव भाव प्रकट होने लगे। विकास ने अपना पैर उसकी ओर बढ़ाया। प्रभात ने तुरन्त उसका हाथ खींचते हुए कहा— "लोभ की ओर न बढ़ो, यह इन्द्रजालिक की माया है। मदान्ध बना देती है मनुष्य को।'

विकास पीछे हट दूसरी ओर को चल पड़ा। चलते चलते उसने प्रभात से कहा— "बड़ी भयंकरता से लड़ना होगा।"

प्रभात— "काम की बाँसुरी अभी सुनी ही कहाँ है तुमने। दुनिया में हर पग पर आकर्षण और हर पग पर आँसू हैं। यहाँ लाश पर खड़े होकर हँसना पड़ता है। हँसी के बहाने रोना ही तो दुनिया है।"

विकास— "क्या संघर्ष के बिना जीवन नहीं ?"

प्रभात— "संघर्ष ही तो संसार में जीवन है। संघर्ष से भागना ही तो जीवन की हार है। और मैं हारा हुआ हूँ।"

विकास— "तो तुम भागते क्यों हो ? हार क्यों मान ली ?"

प्रभात— "इसलिये कि पाप ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा।"

विकास— "तुम पाप से डर गए। पाप से डरने वाला दुनिया नहीं देख सकता।"

प्रभात— "चाहता तो था पर अब चाह ही नहीं रही।"

विकास— "हृदय की दुर्बलता छोड़ दो, नहीं तो हार कर हार पहिन कर विजय मानोगे। देखते नहीं, हवा संसार की किसी दीवार से नहीं रुकती। रात और दिन अपनी अपनी गति नहीं छोड़ते। देखते हो इस पेड़ पर उड़ने का यत्न करते हुए इस पक्षी के बच्चे को। इसके अभी पर नहीं हैं, पर उड़ने की तड़प लिये उछल रहा है। एक दिन यह उड़ कर ही रहेगा। यह गगन की गहराई खोजने को उतावला है, हार हो या जीत, पर उड़ता अन्त तक रहेगा। और देखो इस गंगा की गति को। पत्थरों को प्रवाह में डुबाती हुई चली जा रही है। यह पर्वतों को चीरती हुई आई है और समुद्र के अन्तस्तल में घुसती चली जायेगी। पीड़ा को हृदय में दबा कर, आँसुओं को आँखों में पी, संघर्ष के लिये बढ़ो !"

प्रभात— "ले चलो तुम भी मुझे कहाँ ले चलते हो। मालूम होता है अभी भाग्य में कुछ और भी लिखा है।"

मंज़िलें तय करते हुए दोनों एक गाँव के निकट आ पहुँचे। हरी हरी खेती और मुस्काते हुए फूलों ने स्वागत में मूक कविताएँ कहीं। झलकती हुई स्वर्णराशि की गोद में उठती हुई गोधूलि ने घण्टे बजा कर पूजा का प्रसाद दिया। खेती से बिछड़ कर बैलों के साथ फूस के छप्पर को ओर जाते हुए किसान ने अपनी चीथड़ा चादर में छिपी हुई भाषा में कहा— "श्रम से सिंची हुई कृषि से ही जीवन का सत्य पूछ लो, आगे जाकर क्या करोगे!" सत्य और सीधेपन के भोले स्वरूप में धूलि-निमज्जित ग्राम बालकों ने क्या कहा, यह धूलि से पूछो। ग्राम के टेढ़े-मेढ़े कच्चे घर कलात्मक प्रकृति से प्रश्न और उत्तर में उलझे हुए कर रहे थे कि "सचा दर्शन यहाँ है।"

सन्ध्या के उदास और शान्त वातावरण में विकास तथा प्रभात ने गाँव में प्रवेश किया। गाँव वाले इन्हें विचित्रता से देखने लगे। एक सीधा सा बूढ़ा ग्रामीण इनके पास आकर बोला— "रात होने वाली है, यहीं विश्राम करिये। प्रातः जहाँ जाना हो चले जाइये। अब जाने का समय नहीं है। रास्ता भी टेढ़ा-मेढ़ा है।"

विकास— "इस गाँव का क्या नाम है?"

बूढ़ा ग्रामीण— "सेवाग्राम।"

विकास— "सेवाग्राम! सुन्दर नाम है। क्या यह नाम यथा नाम तथा गुण है? क्या यहाँ सब सेवाभाव से ही रहते हैं?"

बूढ़ा ग्रामीण— "सेवा तो मनुष्य का परम धर्म है। भगवान् ने हमें यहाँ खेती कर मनुष्य धर्म पालनार्थ भेजा है। पशु-सेवा, जन-सेवा, हमारा कर्त्तव्य है। अच्छा और सब बात शान्ति से बैठकर होंगी, अब इस समय हम आपको नहीं जाने देंगे। रात्रि को यदि अतिथि किसी

गाँव से जाता है तो उस गाँव के पुण्य चले जाते हैं। घर चलिये, हाथ मुँह धोइये, भोजनादि करके चौपाल पर बैठेंगे, तब फिर सब भाई बातें करेंगे।"

आग्रह और प्रेम से यात्री गाँव के अतिथि बन गये। बातें करते विकास और प्रभात बूढ़े ग्रामीण के घर आ पहुँचे। गाँव के बूढ़े किन्तु अनुभवी किसान हरिदास ने बड़े प्रेम से अतिथियों का सत्कार करते हुए अपने बेटे पोतों से कहा— "अरे बेटा गुलाब और बेटा यशोधन! देखो ये अतिथि आये हैं। खाट लाओ!"

"अच्छा बापू!" कहते हुए बड़े बेटे ने खाट बैठक में बिछा दी। और फिर बोला— "अभी भोजन तैयार हुआ जाता है। आप इतने आराम करें।"

बात की बात में सारा घर अथिति सत्कार में जुट गया। जब खाना तैयार हो गया तो बापू ने हाथ जोड़कर कहा— "अब आप भोजन कर लीजिये!"

विकास— "जैसी आपकी आज्ञा" कहते हुए दोनों खड़े हुए। तपोधन ने आसन बिछाये। दोनों अतिथि भोजन के लिए बैठ गये। प्रभात ने चुपके से अपनी आँखों का आँसू पूछते हुए कहा— "मरने वाला मर जाता है पर पेट का काम नहीं रुकता।"

विकास— "यह समय भोजन का है, रोने का नहीं।"

बड़े भाव से भरी हुई भोजन की थालियाँ सुन्दर और श्याम ने सामने लाकर रक्खीं। "खाओ भैया!" विकास ने कहा।

"अच्छा ईश्वर!" कहते हुए प्रभात ने ग्रास तोड़ा।

प्रेम से परिपूर्ण स्वादिष्ट भोजन में रस आने लगा। लच्छेदार बातों के बीच गर्म गर्म कचौरियों ने लयें बाँध दीं। घर के बालक शुद्ध

घी की तर्मातर्म पूरियाँ चाव से ला ला कर परोसने लगे। बालक गोपाल और यशोधन में होड़ लग गई। गोपाल बोला— "यह फूली हुई कचौरी मैं दूँगा।" यशोधन ने कहा— "नहीं, कचौरी मैं दूँगा। तू पानी परोस।"

तपोधन— "नहीं, साग और पूरी मैं दूँगा, तुम गुड़ दो। रायता बाबा देंगे, तू गिरा देगा।"

यशोधन— "मुझसे पानी नहीं चलेगा, मैं गिर पड़ूँगा। पानी बापू ले जायेगा। अच्छा, नहीं, मैं जा कर पंखा झलता हूँ। खीर रानी ले जायेगी।"

गोपाल— "नहीं, पंखा आशाराम झलेगा, तुझसे अच्छी हवा नहीं होगी। तू अदरक मूली ले जा।"

यशोधन— "आशाराम गउओं की सानी कर रहा है और हरपाल कुट्टी काट रहा है। सुबह के लिये कुट्टी बिल्कुल नहीं है।"

इतने में बाबा ने कहा— "गोपाल! खीर लाओ। और यशोधन! तू रामलाल पड़ौसी के घर से थोड़ा आम का मुरब्बा ला!"

विकास— "यह सब आप क्या कर रहे हैं? आपका प्रेम हमें मोह न ले।"

बापू— "दुनिया में प्रेम ही तो है और धरा ही क्या है।"

प्रभात— "प्रेम ज़िन्दगी और जवानी छीन लेता है बापू! जानते हो प्रेम क्या देता है? जीवन में मृत्यु।"

बापू की आँखें डबडबा आईं पर किसी ने उनके आँसू छलकते नहीं देखे। विकास ने पानी का गिलास ओठों से हटा कर ज़मीन पर रखते हुए कहा— "प्रेम जीवन में मृत्यु नहीं, मृत्यु में जीवन है। प्रेम तो प्रसाद है प्रभात। तुम दुनिया को धिक्कार रहे थे, देखते नहीं कितना सुख है इस दुनिया में। बापू के प्रेम में तुम्हें अमृत नहीं मिल रहा क्या?"

प्रभात— "दुःख की अभी तुम्हें अनुभूति ही नहीं। जैसें जैसे सुख देखोगे वैसे ही वैसे दुःख बढ़ते जायेंगे। जैसे जैसे दुनिया देखोगे वैसे ही वैसे दुःख मिलेंगे। सुख ही तो दुःख का मूल है।"

विकास— "तुम दुनिया से बहुत डरते हो, ऐसी सुन्दर दुनिया क्या डरने के लिये है। क्या तुम बापू के प्रेम में शान्ति नहीं पा रहे!"

प्रभात— "अभी तो पहली सीढ़ी पर ही चढ़े हो दुनिया की। यह दुनिया है दुनिया। इसकी सुन्दरता में उलझा हुआ उलझा ही रहता है।"

विकास— "उलझन में उलझे बिना उलझन नहीं सुलझती।"

प्रभात— "उलझन ही बन जाओगे।"

ग्रामीण— "अरे बेटा! पहले भोजन कर लो। दुनिया की कहानी सुनने सुनाने को ज़िन्दगी पड़ी है।"

प्रभात— "भोजन तो कर चुके बापू! अब और इच्छा नहीं।" कहते हुए दोनों खड़े हो गये।

बापू ने गोपाल को आवाज़ देकर कहा— "लोटा लाकर हाथ धुला!"

गोपाल "अच्छा बाबा जी!" कहता हुआ पानी लाया और गाँव की मीठी भाषा में बोला— "हाथ धो लो बाबू जी!"

दोनों हाथ धोकर खाट पर बैठ गये। अतिथियों को जिमा कर बापू ने भी भोजन पाया, और फिर अँगरखा पहिनते हुए कहा— "चलो अब चौपाल पर चलें।"

'चलो!' कहते हुए विकास और प्रभात बापू के साथ चल पड़े। गली पार कर वे चौपाल पर आ पहुँचे। चौपाल पर चुटकुलों की चाट बँट रही थी। बड़े बड़े दार्शनिक तथ्यों का निष्कर्ष बातों के रसगुल्लों में से निकल कपड़े तक रस में डुबा रहा था। संसार के सारे मुक़दमे

चौपाल पर पेश हो रहे थे। इतिहास के सौ सौ पन्ने गाँव वाले बात की बात में पलट डालते थे। दुनिया के सारे हल मानो ये ही देंगे। एक ग्रामीण ने हुक्के में ज़रा ज़ोर का दम लगाते हुए कहा— "अक रे! नुकह रूस ने ऐसा बम बनाया है जो आधी दुनिया को समापत कर दे है।"

दूसरा ग्रामीण— "हाँ दादा! मैंने परसों गाँव के पुस्तकालय में जो अखबार आता है उसमें पढ़ा है।"

पहला ग्रामीण— "अच्छा, तब तो दुनिया का ओड़ आ गया।"

रामू चमार— "पाप भी बहुत बढ़ गये हैं दुनिया में नम्बरदार!"

प्रभात— "पाप और पुण्य की भी कैसी विडम्बना है!"

गुलाब किसान— "न जाने क्या हो गया है धरती को, खेती ही नहीं होती। जो अन्न पैदा भी होता है वह ऐसा जैसा जला हुआ मूँग!"

हरिसिंह जाट— "ढोरों को जाने क्या हो गया है! दूध ही नहीं रहा उनके नीचे।"

हरिराम बापू— "अरे भैया! यह कलजुग है कलजुग!"

विकास— "यह कलजुग क्या बला है?"

बापू— "ईश्वर का कोप!"

प्रभात— "नहीं नहीं! ईश्वर का कोप नहीं, मनुष्य की अतृप्ति, दुर्बलता और अकर्मण्यता का नाम कलियुग है। वे समझदार देवता थे जो अपने युग को सत्युग और हमारे युग के लिये कलियुग की भविष्यवाणी कर गये। और हम अपनी हार को कलियुग कह कर आराम करना चाहते हैं। अपने पतन को कलियुग का नाम देना चरित्र की दुर्बलता है। सभ्यता के विकास का उपहास करना हीनता है। आज का असहाय मनुष्य कलियुग कलियुग चीख रहा है। क्रान्तिकाल

को कलियुग कहना अन्याय है। पाप और पुण्य को समाज के सीमित धर्म में देखना दीनता है। सदियों के टीलों के नीचे से आज अतीत नयी प्रगति लेकर निकल रहा है तुम उसे अवनति कहते हो!"

विकास— "अवनति और उन्नति का उत्तर समय के गर्भ में है। विश्व उसकी प्रतीक्षा में है।"

बातें हो रही थीं कि बापू का बेटा हरपाल घबराया-सा दौड़ा आया, और रोता हुआ बोला— "जल्दी चलो! रामफल चाचा मर गया!"

सबके मुँह से एक दम निकला— 'क्या रामफल मर गया!' कहते हुए एकदम उठ कर चल पड़े। "क्या यही सत्य है" मन ही मन में सोचता हुआ विकास भी गाँव वालों के साथ मन का मौन खोलता हुआ चला।

बात की बात में उस घर के दर्वाज़े पर आ गये जहाँ रोने पीटने के हृदय-विदारक वातावरण में सत्य शान्त था। हवा हो गया आज वह बोलता हुआ खिलौना। थोड़ी ही देर में अर्थी बँध गई और रामफल का शव श्मशान की ओर ले चले। वह रामफल जो कल तक सारे गाँव को अपने गीतों की लय पर झुमाता था आज सदा के लिये मौन हो गया। वह रामफल जिसे सारे गाँववाले भावनाओं के कन्धों पर उठाये फिरते थे आज कन्धों पर अपनी अन्तिम यात्रा कर रहा है! सारे गाँव की आँखों में आज आँसू हैं। वाणी पर उसकी बड़ाई है। "बहुत अच्छा था बिचारा" गुलाब ने कुर्ते से आँसू पूँछते हुए कहा।

हरिसिंह— "एक दिन अपने गीतों में हँसता रोता हुआ सबको हँसाता था, आज सबकी आँखों में आँसू छोड़ कर जा रहा है।"

देवकराम— "सब कुछ छोड़ चला यहीं बिचारा।"

गुलाब— "यहाँ किसी का है ही क्या? प्राणी मुट्ठी बाँधे आता है और हाथ झाड़ कर चला जाता है।"

प्रभात ने अपने हाथ से अपना आँसू पूँछते हुए कहा— "क्या ये गायक थे ?"

गुलाब ने कन्धा बदलते हुए कहा— "बहुत अच्छा गाते थे। बहुत ही भला मानुस था विचारा। इसके गीतों की तो चौंसठ गाँवों में धाक थी। इसने "ओ मेरी खेती" साँग बनाया है। यह हाथ की हाथ गीत बनाता था और गाता ऐसा सुरीला था जैसे कोयल गाती हो।"

प्रभात— "वे गाने तो सब लिखे हुए होंगे ?"

गुलाब— "नहीं, इसने काग़ज़ पर कभी कुछ नहीं लिखा। यह जो गीत बनाता था याद रखता था। हज़ारों गीत याद थे इसको।"

प्रभात— "हा ! जिन गीतों में इसकी याद कसक रही होगी वे गीत भी विचारा साथ ही ले चला। न जाने जीवन की कितनी अनुभूतियाँ और गीत इसी प्रकार धरती में दबे पड़े हैं। अम्बर के मणिमण्डित परिधानों के बीच चमकते हुए चाँद और सूरज तो सभी देखते हैं, पर क्या खारी सागर के अन्तस्तल में विलोड़ित अमृत की लहर किसी ने देखी है ? यह गाता रहा और संसार अपने क्षणिक उल्लास के प्रवाह में बहता हुआ खेल देखता रहा। पर ठीक ही है जो ग्रामों की आराध्य देवी अट्टालिकाओं के स्वप्निल संसार में नहीं जाती, नहीं तो भयंकर भूत ग्राम की हरी भरी भावना को भी नोच ही डालते।"

विकास— "फिर वही तान।"

प्रभात— "यह तान नहीं, करुणा की कोमल भावनाओं का क्रन्दन है ! मैं समझ सब कुछ गया, पर मन पर विजय और ज़िन्दगी की लहर हाथ नहीं आती।"

गुलाब— "लो श्मशान भी आगया, यहीं तक अन्तिम यात्रा है मनुष्य की।"

हरपाल— "बस यहीं अर्थी उतारो !"

बापू— "चिनो चिता और करो राख की ढेरी।"

गुलाब— "वाह! भई रामफल वाह! खूब थे तुम भी!"

हरपाल— "किसी की खूबियों का पता ही मरने के बाद चलता है। मनुष्य की क़द्र मरने के बाद ही निकलती है।"

रामू चमार— "जीवन में तो हम दुतकारते ही रहते हैं चौधरी!"

प्रभात— "किसी का मूल्य तभी आँका जाता है जब उसका अभाव हो जाता है।"

गुलाब— "चिता तैयार हो गई, रक्खो शव चिता में।"

'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है' कहते हुए शव चिता में धर दिया। देखते ही देखते हवा के चतुर्दिक नाच में चिता धूँ धूँ धधक उठी। गाँववाले शोकाकुल संसार की नश्वरता का चिन्तन करते हुए चिता की लपटें देखते रहे।

निस्तब्ध निशा के शून्य वातावरण में गंगा भी शोक-सिन्धु की ओर बहती जा रही थी। प्रभात ने पीड़ा की श्वास लेते हुए कहा— "कितना भंगुर है मनुष्य! कितनी काल्पनिक है दुनिया! भ्रम के भयावने भूखण्ड में प्राणी भूला सा भटकता फिरता है। तो क्या मैं फिर उसी भ्रम में भटकने को घुसूँ?"

बापू— "अरे भैया! न जाने कितने हम अपने हाथों से फूँक चुके!"

प्रभात— "सच कहते हो, यह जो ज़मीन दीख रही है वह मरने वालों की राख ही तो है।"

गुलाब— "मरने का क्या अचरज, अचरज तो जीने का है।"

हरपाल— "लाश जल चुकी।"

बापू— "अस्थि प्रवाह करो भैया!"

प्रभात— "क्या फूल तीसरे दिन नहीं चुगे जायेंगे ?"

बापू— "फूल तो उसके चुगे जाते हैं जिसका घर होता है और घर वाले होते हैं। उसके लिये तो ज़मीन बिछौना थी और आकाश छाया। अकेला आया था और अकेला चल दिया। बहाओ भैया राख !"

राख गंगा में बहा दी। गुलाब के मुँह से निकला— "अब तो ढूँढने से उसकी राख का भी पता नहीं चल सकता, केवल कहानी रह गई बिचारे की।"

"कहानी भी कुछ दिन बाद भूल जायेंगे।" कहते हुए ग्रामीण उठे और गाँव की ओर चल दिये।

चलते चलते प्रभात ने कहा— "कहानी तो कभी नहीं भूली जाती।"

बापू— "अरे बेटा! उस मदारी की रची हुई दुनिया में कौन किसको याद रखता है! न जाने कितनों की कहानियाँ इस मिट्टी में मिली पड़ी हैं।"

विकास— "तो जीवन का सत्य मृत्यु ही है क्या?"

प्रभात— "नहीं, जीवन का सत्य है विरह, वेदना, जिसमें तड़पता हुआ आत्म-तुष्टि का आधार जीवन और मरण की समस्या में ढूँढता है तथा जीवन और मृत्यु से उत्तर मिलता है— 'पीड़ा ही जीवन की प्रेयसी है'।"

गुलाब— "याद करे जाओ और रोये जाओ, अब वह तो वापस आना नहीं।"

हरपाल— "जो दान पुण्य सेवा कर लो वह अपना, बाकी कुछ नहीं।"

गुलाब— "यह जानते हुए भी हम दुनिया में उलझे रहते हैं।"

प्रभात— "दुनियाँ में हम नहीं उलझते, दुनिया हमें उलझाकर धर्मों की दुहाई देने को कहती है। भूमि के भंगुर भोगों में उलझे बिना क्या कोई श्वास ले भी सकता है! कैसी विचित्र विडम्बना है!"

श्मशान से गाँव की ओर जाती हुई उस पगडण्डी पर शोक में डूबे हुए दार्शनिक वैराग्य के पन्ने पलटते हुए चल रहे थे। कितनी बड़ी शिक्षा देती है मृत्यु भी मनुष्य को, पर कितनी अस्थायी होती है यह भावुकता! मरघट से पेट की भट्टी तक ही तो इसकी सीमा है।

शून्य की उस धूमिल रेखा में श्मशान मौन था, और श्मशान के यात्री कहानी कहते जा रहे थे। विकास ने कहा— "क्या इतनी ही दूर की यात्रा है?"

प्रभात— "यात्रा तो यहीं तक की है पर पथ हैं बहुत टेढ़े-मेढ़े! अरे! यह कौन? रात्रि के इस गहरे अन्धकार में अकेली गंगा की तरफ भागी जा रही है?"

प्रभात की बात ने सबकी भावुकता भंग कर दी। चौंक कर अमराई के किनारे किनारे भागती हुई एक सुन्दर सुकुमारी को सबने देखा। 'ठहरो!' कहते हुए सब उसकी ओर दौड़े। सुन्दरी पहले तो और तेज़ दौड़ी पर जब उसने अपनी चाल को असमर्थ पाया तो ठिठक कर एक पेड़ के सहारे खड़ी हो गई।

बात की बात में ये भी पास पहुँच गये। पास पहुँचने पर गुलाब ने अपने हाथ की लालटेन के प्रकाश में उस महिला का मुँह देखा और चौंक कर बोला, "अरे ये तो हमारे गाँव की मास्टरनी हैं!"

"इतनी रात गये कहाँ जा रही हो बेटी!" बापू ने भाव भरी वाणी में कहा।

उत्तर में बेटी कुछ न बोली। उसकी आँखों ने दो आँसू धीरे से ढुलका दिये। उन मौन आँसुओं ने मन का भेद खोल दिया।

"गंगा में डूब कर प्राण देने जा रहीं थीं न? अच्छा होता यदि हम तुम्हारे मार्ग में न आते।" प्रभात ने दूर का स्वप्न विचारते हुए स्वयम् से स्वयम् का भाव कहा।

"चलो घर चलो बेटी!" बापू ने थकी हुई वाणी में हृदय से कहा।

"गंगे माँ! जान पड़ता है तू भी मुझ से घृणा करती है। तेरी गोद भी मुझ अभागी को न मिल सकी। पीड़ा की पहिचान शायद तुझे भी नहीं।" जीवन से उदास और मृत्यु की इच्छुक उस भोली भावना ने मन ही मन में कहा।

धरती मूक थी। आकाश ने मौन व्रत धारण किया हुआ था किन्तु मन का तूफान उतार चढ़ाव पर था। जान पड़ता है प्रतिध्वनि भी आज शून्य में समाधिस्थ है, तभी तो पीड़ा की ध्वनि संसार को सुनाई नहीं देती।

भावनायें मन ही मन में गूँजती रहीं और पैर गाँव की ओर बढ़ते गये।

७

"जीवन इतना सस्ता नहीं कि गंगा में डूब कर समाप्त कर दिया जाये। भावुकता भयंकर नहीं होनी चाहिये।" तीसरे दिन सन्ध्या समय शकुन के घर पर गम्भीर मुद्रा से प्रभात ने कहा।

"पर जीवन का मूल्य भी क्या है! दुनिया में ज़िन्दगी जब काटने से भी नहीं कटे तो फिर क्या किया जाये।" शकुन ने उदास किन्तु सुन्दर मुद्रा में कहा।

प्रभात— "तुम तो अध्यापिका हो। कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाना तुम्हारा धर्म है।"

शकुन— "धर्म उस समय बहुत सुन्दर लगता है जब वह किसी को सिखाया जाता है। पर क्या पालना भी उतना ही सरल है जितना कहना?"

प्रभात— "जितना सरल कहना है करना उतना ही कठोर सत्य है। किन्तु सत्य से अधिक सरल कुछ नहीं।"

शकुन— "सत्य भी केवल कहने का आदर्श है। परिस्थितियाँ मनुष्य से क्या नहीं करातीं। पाप और पुण्य की रेखाओं में उलझ कर मैं आज ठोकरें खा रही हूँ।"

प्रभात— "मान और अपमान का विचार मन की भावना है, उसमें उलझ कर जीवन को दुखी बनाने से क्या लाभ?"

शकुन— "दुःख और सुख मन को समझा कर काल्पनिक नहीं बनाये जा सकते। बुद्धि की बर्बरता से मन की कली नोच कर नहीं फेंकी जाती। विधवा को संसार दया की आँखों से न देख कर क्रूरता की दृष्टि से देखता है। मैंने जीवन में सुख की कल्पना करके दुःख ही देखे हैं। क्षय रोग से पीड़ित पतिदेव की दो वर्ष तक आशा से सेवा की, किन्तु ईश्वर कठोर ही रहा। पढ़ना चाहा, पर कठोर आँखों ने पढ़ना भी पाप बना दिया। किसी ने दया-भरी प्यासी आँखों से मेरी ओर देखा कि समाज के जलते अंगारे बरसने लगे। अपने टूटे फूटे ज्ञान के सहारे गाँव की पाठशाला में नौकरी मिल गई। भला हो ज़िलाबोर्ड के चेयरमैन साहब का जिन्होंने मुझ पर दया करके यहाँ स्थान दे दिया। नहीं तो माँ-बाप सास-ससुर सब ने धक्के ही दे दिये थे। पता नहीं जीवन में कोई किसी का होता भी है या नहीं।"

प्रभात— "सुख की कल्पना ही दुःख का कारण है। दया की चाह करना हीनता है। संसार उसके आगे झुकता है जिसमें बल होता है। तुम दीन बन कर समाज से कुछ नहीं ले सकतीं। जीवन के हर तूफान में तूफान बन कर चलो। कायरों की तरह आत्महत्या करना मानव की दुर्बलता है। दुनिया में वही देवता है जिसके हाथ में शक्ति है।"

शकुन— "आत्महत्या दुर्बलता नहीं, जीवन की वह मंज़िल है जिससे परे शायद शान्ति हो। पर इस मंज़िल पर कूदना कायर के बस का नहीं, मृत्यु को सामने देख कर बड़े बड़े काँप जाते हैं।"

प्रभात – "और दुःखों को देखकर कौन कौन नहीं रोते ? रोना व्यक्तित्व की दुर्बलता है।"

शकुन— "रोना ही पड़ता है। आँसू रोकने से नहीं रुकते। जब ये सरसों की तरह बिखरते हैं तो चुगे नहीं जाते। बताओ प्रभात! मैं कैसे अपने रोने को रोकूँ। इस गाँव का गायक रामफल कभी कभी मेरी खबर ले लेता था। अपने गीतों से मेरे मन की पीर हलकी कर देता था। किन्तु दैव की निर्ममता उसे भी दूर ले गई।"

प्रभात— "क्या तुम रामफल से प्रेम करती थीं?"

शकुन ने गर्दन हिला कर 'हाँ' कहा और फिर रोने लगी।

प्रभात— "तो फिर तुमने उससे विवाह क्यों नहीं किया?"

शकुन— "समाज के डर से। यदि मैं उससे शादी कर लेती तो मेरी नौकरी छूट जाती। रामफल बिचारा स्वयम् पैसे के अभाव में मुस्काता था। एक बार हमने सोचा भी, पर चर्चा चलते ही समाज में तूफान आ गया।"

प्रभात— "तुम्हारी आयु क्या होगी?"

शकुन— "चौबीस वर्ष।"

प्रभात— "सचमुच प्रेम बड़ा पापी होता है शकुन!"

शकुन— "आप बड़े भले मालूम होते हैं बाबू जी!"

प्रभात— "संसार में सभी भले बनते हैं। पता नहीं भला बुरा क्या है। पाप और पुण्य का धर्म कहीं बखेड़ा ही तो नहीं।"

शकुन— "बखेड़ा हो या न हो पर उलझन अवश्य है। धर्म क्या है यह कुछ निश्चय नहीं होता, पाप क्या है यह भी पता नहीं चलता। कर्त्तव्य प्रधान है यह भी मानव चिल्लाता है, तो फिर अधर्म क्या स्वभाव की हत्या है!"

प्रभात— "या तो मनुष्य स्वभाव के धर्म की हत्या करे या सत्य का ढोंग रचा कर असत्य से स्वभाव को सन्तुष्ट करता रहे।"

शकुन— "क्या दुःख की चोटों को सहते हुए मुस्कराना मनुष्य का धर्म नहीं है ?"

प्रभात— "विवशता या दुर्बलता के कारण मनुष्य दुःख भोगता है और यही उसकी हार है। मैं तो ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि जैसे भी हो मनुष्य सुखी रहे, यही उसका धर्म है। धर्म और पाप के झूठे वितण्डे में फँसकर जीवन को मृत्यु बनाना है।"

शकुन— "जीवन और मृत्यु का प्रश्न भी कितना भयंकर है! जीवन की मंज़िल पर चलता हुआ मृत्यु का यात्री हर पड़ाव पर आवश्यकताओं से बँधा हुआ है। जीवन की हलचल भी बड़ी ही विचित्र है!"

प्रभात— "विचित्रता का नाम ही तो संसार है।"

"संसार क्या है, यही तो मैं देखना चाहता हूँ।" सहसा विकास ने प्रवेश होते हुए कहा।

प्रभात— "आओ विकास! मैं भी अभी आने ही वाला था।"

विकास— "जब प्रतीक्षा करता करता ऊब गया तो बुलाने चला आया।"

"तो प्रतीक्षा सताने लगी तुम्हें भी। चलो," खाट से उठते हुए अनमने से किन्तु प्रदर्शन में मुस्कराते हुए प्रभात ने कहा।

शकुन— "फिर आइये कभी।"

प्रभात— "आता रहूँगा। तुम से बात करने से दुःख हल्का हो जाता है।"

शकुन दोनों को द्वार तक छोड़कर फिर उधेड़बुन में उलझ गई। विकास और प्रभात ढलती हुई संध्या के गीत दोहराते हुए चल

दिये। खेतों के किनारे किनारे प्रकृति के आँगन की छटा में वे ज़िन्दगी अनुभव करने लगे। कृषि की मंजुता पर मोहित होकर प्रभात ने कहा—"इस रम्य आँगन को छोड़ कर कहाँ चलोगे? इससे जितनी दूर हटोगे उतने ही अङ्गारे मिलेंगे।"

विकास— "तो क्या इस गाँव में ही ज़िन्दगी बिताना चाहते हो? हम पृथ्वी प्रदक्षिणा करने निकले हैं। दुनिया का कोना कोना देखेंगे, तभी तो जीवन का सत्य मिलेगा।"

प्रभात— "जीवन का सत्य अनुभव से मिलेगा। बुद्धि का चमत्कार उसके लिये नहीं चाहिये। नर्क की गहराई तुम्हें जितना सिखा देगी, स्वर्ग की ऊँचाई से तुम उतना नहीं सीख सकते!"

विकास— "जो अभी भविष्य के गर्भ में है मैं उसे प्रत्यक्ष कैसे करदूँ। हाँ इतना अवश्य है कि बुद्धि ही मनुष्य का बल है। जीवन का सत्य विवेक की विजय में हो सकता है। अच्छा अब चलोगे भी या नहीं, बापू नाराज़ होंगे।"

प्रभात— "जहाँ जायेंगे वहाँ अशान्ति के आँसू मिलेंगे। अच्छा तो यही है कि प्रकृति के प्यालों में भूल जायें कृत्रिम चमक दमक को। तुम नहीं जानते विकास! क्योंकि तुमने अभी वह कौंध नहीं देखी जो अन्धा बना देती है और तब हम आँखें होते हुए भी नहीं देख सकते।"

विकास— "तो तुम क्या करोगे?"

प्रभात— "मैं कविता लिखूँगा, सुकुमार प्रकृति मुझे प्रेरणा देगी, उस प्रेरणा में करुणा का स्नेह बरसेगा। मेरी करुणा अमर होगी। और तुम मेरी कवितायें सुनना।"

विकास— "तो क्या तुम मुझे भी कविता करनी सिखा दोगे?"

प्रभात— "कविता करनी सिखाई नहीं जाती, वह स्वयम् हृदय से

फूट पड़ती है। आनन्द की अमराई और दुःखों के आँसुओं का दूसरा नाम कविता है। क्या करोगे इस पचड़े में पड़ कर !"

विकास— "मैं अपने कोष में पचड़ा नाम का कोई शब्द रखना नहीं चाहता। जीवन का क्रम है संघर्ष, और उद्देश्य है सत्य की खोज। बुद्धि मेरे पास है, जिससे सत्य और असत्य का निर्णय होगा। कविता में भी कुछ है, तभी तो जब तुम गाते हो तो पत्थर भी आँसू बहाने लगते हैं, पतझड़ में हरियाली और ऊसर में खेती लहलहा उठती है। ऐसी सुन्दरी क्या डरने की वस्तु है !"

प्रभात— "कविता सुन्दर लगती है पर कवि के हृदय की आग जो आँसुओं में घुल कर शब्दों में प्रकट होती है उसे ही तो जग कविता कहता है। यह सत्यम् शिवम् सुन्दरी अनुभूति और भावुकता की प्रतिमा है। कविता काँटों की शैया है, अकंटकित फूलों की गुदगुदी सेज नहीं।"

विकास— "सौन्दर्य भावना की यह प्रतिमा अद्भुत है। इसकी प्राप्ति की प्रियता कौन कह सकता है !"

प्रभात— "सरस्वती का यह वरदान बहुत कठोर है विकास ! जिस कठोरता में कामना की बलि देनी पड़ती है।"

विकास— "जिस दिन मेरी बुद्धि कहेगी कि कविता में सत्य नहीं है उस दिन से मैं घोर यत्न करूँगा कि जग में कवि कर्म से कोई न रहे।"

प्रभात— "सत्य और असत्य के जंजाल में न पड़ो विकास! जो कुछ है वह गाँव की गोधूलि में है। जीवन का जितना सत्य गाँव की मिट्टी में है उतना और कहीं नहीं।"

विकास— "आदर्श क्रिया के फल से निश्चित होता है। मैं कर्म के फल से सत्य का निर्णय करूँगा। बहुत देर हो गई प्रभात ! चलते भी रहो, नहीं तो बापू का हृदय दुखी होगा।"

घूमते घामते दोनों लगभग नौ बजे घर पहुँचे। बूढ़े बापू ने इन्हें दूर से देखते ही कहा— "अरे भैया। खाना खाने की भी सुध नहीं, कहाँ घूमते फिरते हो सारे दिन ?"

प्रभात— "कहीं नहीं बापू! सरसों के खेतों की तरफ चले गये थे।"

बापू को दोनों से कुछ ऐसा प्रेम हो गया था जैसा किसी को अपने बेटों से होता है। बड़े प्रेम और गम्भीर भाव से कहने लगे— "ठंडी हवा चल रही है, बे मौसम बरसात हो रही है। इधर उधर घास में घूमना अच्छा नहीं, कीड़े-मकौड़े का डर रहता है।"

विकास— "आपको बड़ी चिन्ता रहती है हमारी।"

बापू— "सबकी चिन्ता भगवान् करता है. बेटा! अच्छा अब आराम करो। थक गये होगे।"

अपनी अपनी खाट पर दोनों लेट गये। आज बापू की तबियत कुछ खराब थी, उन्हें नींद नहीं आती थी। प्रभात और विकास भी विचारों की उधेड़-बुन में चक्कर काट रहे थे। बापू को खाँसी का एक ज़ोर से ठसका आया, वे खाट पर उठ बैठे। विकास और प्रभात भी उठ बैठे। सहानुभूति और कुछ सेवा करने की दृष्टि से बापू की ओर देखने लगे। बापू का चित्त खाँस कर जब कुछ शान्त हुआ तो वे कहने लगे— "सोओ बेटा! आज मेरा दम कुछ उखड़-सा रहा है। तुम्हारी खाट दूसरी बैठक में बिछवा दूँ। यहाँ तो मेरी खाँसी तुम्हें सोने नहीं देगी।"

विकास— "नहीं बापू! हम यहीं सोयेंगे। भला आपकी तबियत खराब होते हुए हम दूसरी जगह कैसे सो सकते हैं।"

बापू— "जैसी तुम्हारी इच्छा! अच्छा यह तो बताओ कि आप कौन से शहर के रहने वाले हैं ?"

विकास— "अभी तो कहीं भी घर नहीं है। प्रभात का घर था सो—

वह भी उजड़ गया। पृथ्वी हमारा घर है और अम्बर कफ़न!"

प्रभात— "इस दुनिया में किसी का घर ही क्या!"

बापू— "तो तुम्हारे माता पिता घर बार कुछ नहीं?"

उत्तर मौन था। पर बापू मौन न रह सके। उन्होंने फ़िर कहा— "तुम्हारा घर उजड़ कैसे गया भैया!"

यह सुनते ही प्रभात की आंखों से आँसू की बूँदें बरसने लगीं। उसने जी कड़ा करके कहा— "याद मत दिलाओ बापू! चोटें दुखती हैं।"

बापू— "यह क्या! अरे तुम तो रोने लगे।"

विकास— "पता नहीं बापू! इन्हें क्या हो गया है! बात बात में रो पड़ते हैं। खाना, पहिनना, सोना, सभी इन्हें अखरता है। खोये खोये से न जाने क्या सोचते रहते हैं।"

बापू— "नहीं बेटा! किसी बात का दुःख नहीं माना करते। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है! बहुत ज़िन्दगी काटनी है अभी तुम्हें।"

प्रभात— "ज़िन्दगी तो काटे से नहीं कटती बापू! पर काटनी पड़ेगी ही।"

बापू— "साहस नहीं छोड़ा करते! मुझे देखो, न जाने कितने पर्वत टूटे हैं मेरे ऊपर, पर अपनी सौ वर्ष की आयु में आज तक आँसू आँखों से बाहर नहीं निकाला। दुनिया आँसू देख कर हँसती है। हाँ तो बेटा! यह तो बताओ कि तुम अकेले ही हो या तुम्हारे कोई और भी है? क्यों विकास!"

विकास— "था तो सब कुछ पर अब कुछ भी नहीं। बाढ़ में सब कुछ बह गया। धन ढोर परिवार सभी कुछ तूफान में लीन हो गये। अब तो उसका एक ध्वस्त कण केवल मैं हूँ।"

बापू— "मैं नहीं, विकास कहो! अच्छा बेटा! अब तुम सोओ, रात बहुत हो गई। मेरे घुटने में ज़रा दर्द हो रहा है, गुलाब से आग जलवा कर सिकाई कराऊँगा। तुम चौक की परली बैठक में जा सोओ। मैं बूढ़ा आदमी हूँ। यहाँ खाँसता बोलता रहूँगा, तुम्हें नींद नहीं अयेगी।"

प्रभात और विकास एक साथ बोल उठे— "नहीं, नहीं! हमें कोई कष्ट नहीं। आप से बातें करना बहुत अच्छा लगता है। आग हम सुलगाये देते हैं। गुलाब भाई को न जगाओ इस समय।"

पर बापू ने शिष्टता के वशीभूत होकर एक न सुनी। उन्होंने ज़ोर से आवाज़ दी— "गुलाब! बेटा गुलाब!"

दालान में सोया हुआ गुलाब आँखें मलता हुआ उठा, और बोला— "हाँ बापू!"

बापू— "देख बेटा! विकास और प्रभात को चौक की परली बैठक में सुला आ, और अंगीठी में थोड़ी आग सुलगा। मेरे घुटने में दर्द हो रहा है, सिकाई कराऊँगा।"

यद्यपि गुलाब बहुत थका हुआ सोया था, और उसे उठना बहुत अखर रहा था पर अपने घर में आये अतिथियों को कोई कष्ट न हो इस ध्यान ने उसे एकदम खड़ा कर दिया। "चलो" कहता हुआ गुलाब दोनों को साथ लेकर चौक की परली बैठक में सुला आया। और फिर अंगीठी में आग सुलगा कर लाया। "लाओ घुटना सेकूँ बापू!" कहता हुआ वह बापू के पँगायते ज़मीन पर बैठ गया।

बापू ने घुटना सिकवाते सिकवाते कहा— "ये दोनों मालूम तो भले होते हैं। और यह प्रभात तो कोई बिचारा बहुत दुखी जान पड़ता है।"

गुलाब— "हाँ बापू! दुखी तो जान पड़ता है पर भला बहुत है, और योग्य भी बहुत है, बहुत पढ़ा लिखा मालूम होता है।"

बापू— "हाँ यह तो लगता है। और यह जो विकास है जान पड़ता है यह अभी दुनिया की बातें नहीं जानता।"

गुलाब— "पर बापू बड़े दिमाग़ की कहता है।"

बापू— "हाँ है तो होनहार, और मुसीबतों को सहन करने वाला भी है।"

गुलाब— "तो बापू! इन्हें यहीं गाँव में रोक लो। हमारे काम तो बहुत हैं ही, हम समझेंगे हमारे दो भाई और हैं।"

बापू— "सोचता तो मैं भी यही था, पर फिर तेरी माँ की तरफ़ से ज़रा डर लगता है। उसका स्वभाव कुछ चिढ़चिढ़ा है। ज़रा छुवाछूत बहुत मानती है। और भैया! कल का तुम्हारा भी क्या पता है?"

गुलाब— "नहीं बापू! हमारी आपस में लड़ाई कभी नहीं होगी। हाँ माँ के समझने की बात है।"

बापू— "सबेरे तेरी माँ की सलाह भी ले लेंगे। अच्छा अब सो तू भी।"

रात के लगभग दो बज गये थे। हवा कुछ तेज़ हो चली थी। रात्रि की सुन्दर मौन थपकियों में सब निद्रानिमग्न हो गये। लेकिन ऐसे समय में भी प्रभात को नींद नहीं आ रही। वह पड़ा पड़ा न जाने कितने अतीत को दोहरा रहा है। "करुणा! तुम मुझे अकेला छोड़ गईं। मैं कैसे रहूँ करुणा! मैं तुम्हें बहुत प्यार करता था। मैं तुम्हारे साथ रहते हुए किसी दुःख को दुःख नहीं मानता था। अपमान, ठोकरें कुछ भी तो मुझे भारी न थीं। पर आज जीवन दुर्भर हो गया है। लोग कहते हैं किसी के मरने पर मनुष्य अपने सुख के लिये रोता है, लेकिन मैं तुम्हारे सुख के लिये रोता हूँ। तुम्हारा सुख ही मेरा सुख था। 'तो फिर अपने सुख के लिये ही तो रोया पागल! तू उसे सुखी और यशस्वी देख कर सुखी

होता था न !' मेरे लिये एक पल भी कठिन हो गया है करुणा ! मेरे इतने आँसुओं से भी तुम नहीं आतीं। तुम तो मेरा एक आँसू भी नहीं देख सकतीं थीं।"

मन में बातें दोहराते दोहराते प्रभात का मन ज़ोर से भर आया। वह आँसुओं को रोकना चाहते हुए भी न रोक सका। दो तीन हुचकियाँ ज़ोर से आईं। विकास की आँख खुल गईं। प्रभात को रोता देख वह उठ बैठा। "क्या है प्रभात !" विकास ने प्रभात की खाट पर आकर बैठते हुए कहा।

प्रभात— "कुछ नहीं भैया ! चाहता हूँ कोई मेरी आँखों का आँसू न देखे। पर, पर शून्य के नीरव वातावरण में जब करुणा याद आती है तो हज़ार कोशिश करने पर भी आँसू नहीं रुकते। देखते नहीं विकास ! करुणा के न होने से चाँद आज मुझ पर हँस रहा है, रात्रि की रमणीयता मुझे चिढ़ा रही है, प्रकृति के परिन्दे मेरा उपहास करते हैं। लेकिन फिर भी मैं ज़िन्दा हूँ। आशा अब भी नहीं मरी। अभी भी लिखने की आशा शेष है। मैं लिखूँगा और इतना लिखूँगा कि मेरी करुणा मेरे आँसुओं के गीतों में अमर रहेगी।"

अपनी भावुकता के आवेश में प्रभात कहता ही जाता था कि आँसुओं की बाढ़ ने उसका क्रम भंग कर दिया। विकास ने उसे अपनी छाती से चिपटाते हुए कहा— "धैर्य से काम लो प्रभात ! ऐसा करने से तो प्रेम कलंकित होता है। देखो सबेरा हो ही सा गया। गुलाब की माता जी ने घर का कामधंधा शुरू कर दिया। वे बुहारी लिये सकेरने को बैठक की ओर जा रही हैं। अच्छा, अब थोड़ी देर को सो जाओ, रात भर नहीं सोये।"

प्रभात— "नींद किसे आती है ! सोने का बहाना करता हूँ केवल।"

विकास— "नींद न आती तो हाथ में ईंट लेकर फिरने लगते।"

उधर गुलाब की माता जी ने बुहारी की खड़ खड़ से सारा घर जगा डाला। बैठक में अपने सर पर बुहारी की खड़ खड़ सुन कर गुलाब ने कहा— "क्या कर रही हो माँ! सोने नहीं देतीं।"

माँ— "सारी रात हो गई सोते सोते, अब भी उठने को जी नहीं करता, आठ बजेंगे।"

बापू की आँख प्रातःकाल की ठंडी हवा लगने से कुछ लग गई थीं। पर कामधन्धे और बातचीत के शोर ने उन्हें जगा दिया। वे खाट पर उठ बैठे। बुहारी देती देती गुलाब की माँ गुलाब के बाप की बैठक साफ करने भी आ पहुँची। दो चार मिनट इधर उधर की बातें करने के बाद बापू ने गुलाब की माँ से कहा— "अरी! ये विकास प्रभात जो आये हैं इन्हें हम अपने यहाँ रखलें।"

"रखलो मैं क्या मना करूँ! अपनों ही के गुज़ारे ना होते।" गुलाब की माँ फूलवती ने माथे में बल डालते हुए कहा।

गुलाब— "नहीं माँ! वे बहुत अच्छे हैं, रखलो उन्हें। क़सबे में जो अपनी कपड़े की दुकान है उस पर विकास को बिठा देंगे, या और कोई काम दे देंगे खेत वेत पर, सौ काम हैं अपने यहाँ।"

फूलवती— "वे तो तुझे बड़ा खेत का काम कर के देंगे। उनकी बातें तो कुछ अनोखी ही हैं।"

बापू— "पर हमें उन से लाभ ही रहेगा।"

फूलवती— "तुम्हें तो भंगी चमार भिस्ती सभी अच्छे लगते हैं। बैठक क्या है, चमारों की चौपाल बना रक्खी है। जब यहाँ आती हूँ तभी जा कर नहाना पड़ता है।"

गुलाब— "माँ! तुम तो हर वक्त उल्टी बात करती हो। हम इन्हें ज़रूर रक्खेंगे।"

फूलवती— "तेरी और इन की तो एक सलाह रहती है। अच्छा तुम्हारी राज़ी हो तो रख लो। अब मैं तो चली। बहुत काम करना पड़ा है मुझे अभी।"

कहती हुई फूलवती चली गई। बापू गुलाब से बोले— "बड़ा गर्म मिज़ाज है तेरी माँ का। हर समय बड़बड़ाती ही रहती है।"

इतने में तपोधन और यशोधन से बात मिलाते विकास और प्रभात भी वहाँ आ गये। बापू ने उन की ओर देख कर कहा— "सो उठे बेटा!"

विकास— "हाँ बापू!"

बापू— "बैठो बेटा! अच्छा मेरी सलाह है कि तुम अब यहीं गाँव में ही रहो। गाँव में ज़रा श्रम तो करना पड़ता है पर ज़िन्दगी बहुत सुखी रहती है। अपने यहाँ काम बहुत है। दो सौ बीघे ज़मीन भी है अपनी। सब भाई मिल कर प्रेम से रहना। तुम सब सहयोग से सुखी रहो।"

प्रभात— "सुख तो केवल कल्पना का नाम है बापू! ज़िन्दगी में सुख कहाँ! जीवन में तो दुःख ही दुःख है। दुनिया में मनुष्य का घर बार ही कहाँ, जहाँ बैठ गया वहीं घर है।"

विकास— "कैसी बातें करते हो, हर वक्त हवा में उड़ते रहते हो। बिना घर के कहीं काम चलता है। पक्षियों को देखो, पेड़ों पर नीड़ बना कर रहते हैं। धरती में बिल हैं। फिर जब हमें बुद्धि दी है तो हम घर बना कर सुख से क्यों न रहें। घर का स्वाद भी तो चखना ही चाहिये।"

प्रभात— "जो चीज़ उजड़ सकती है उसका बसना ही क्या? जीवन में मनुष्य को एक स्थान पर कहीं सन्तोष नहीं होता। वह भटकता फिरता है। नवीनता की खोज में मृगतृष्णा सा प्राणी पागल रहता है। हर नई वस्तु से चार दिन बाद वह ऊब जाता है। उसे पुरानापन अखरता है।"

विकास— "प्रलाप से कोई लाभ नहीं। जीवन के लिये ठिकाना अवश्य चाहिये। हम बापू के पास रहेंगे और तुम्हें रहना ही पड़ेगा।"

प्रभात— "वह चली गई जो मेरा ठिकाना बनी थी। अब मैं स्वतन्त्र हूँ। स्वतन्त्रता से मुक्त गगन में उड़ने वाला पत्ती क्या पिँजरा पसन्द करेगा। वह पेड़ गिर पड़ा जिस पर मेरा नीड़ था। अब मैं नीड़ कहाँ बनाऊँ।"

विकास— "एक पेड़ गिर गया। दूसरे पेड़ की छाया मिलेगी। जीवन की मञ्ज़िल पर तो अनेकों पेड़ मिलते हैं। थके हुए पथिक को छाया मिलती ही है।"

प्रभात— "ख़ैर! तुम्हारी इच्छा है तो रहो। मैं तो अभी अनिश्चित हूँ। आजकल तो मैं अधिक समय गाँव के सिरे वाले पुराने मन्दिर में विताया करूँगा।"

विकास— "अच्छा तुम बैठ कर कहीं कुछ लिखना तो शुरू करो।"

बापू— "अच्छा! अच्छा! ठीक है। तुम नित्यकर्म से निवृत्त हो लो, मैं तुम्हें इधर उधर कहीं नहीं भटकने दूँगा।"

सब अपने अपने काम में लग गये। प्रभात यह कहता हुआ चल दिया कि 'मैं मन्दिर की ओर जा रहा हूँ। वहीं से नहा धोकर आऊँगा।' चलता चलता वह न जाने क्या क्या सोच रहा था। कभी वह अपने खाली हाथ से आँसू पूँछता, कभी बीती कहानी पढ़ने लगता, कभी भविष्य की तस्वीर उतारता। इस तरह न जाने कितने विचार उसके साथी थे। वह मन ही मन में बोल उठा— "तो क्या वह वापिस नहीं आ सकती? नहीं, वह वापिस नहीं आयेगी। फिर मैं क्या करूँ? जो बात बीत गई उसे भूलना ही पड़ेगा। अपना उपहास क्यों उड़वाते हो? आँसुओं को आँखों ही में पीकर कुछ करो। क्या करूँ? कैसे करूँ? उत्साह ही नहीं। तुम अपने जीवन को सँभालो! तुम कवि

हो, कोई सुन्दर काव्य लिखो। कविता लिख कर क्या करूँ ? भूखा भिखारी बन कर औरों के लिये भीख माँगने का कर्म क्या अच्छा है ? इस दुनिया में अच्छा बुरा कुछ नहीं। जिसमें सुख मिले वही करो। करुणा के लिये मुझे क्या करना चाहिये ? क्या उसके बाद मैं उसके लिये कुछ भी न करू ? तू कर ही क्या सकता है ! तू कोई 'शाहजहाँ' नहीं जो उसकी याद में 'ताजमहल' बनवा कर खड़ा कर सकता। तेरे आँसुओं से ताजमहल खड़ा नहीं होगा। उसके लिये धन चाहिये धन ! तो तू क्या करे ? नहीं, तू कर सकता है। संयम, व्रत, ब्रह्मचर्य, सेवा। पागलपन कहेंगे लोग इसे ! नहीं, लोग कुछ भी कहें, पर मैं आज से अन्न केवल एक समय खाया करूँगा, दुःख और सुख को समान समझूँगा, अपनी हर बात में करुणा की भावना को आकार दूँगा। मैं कवि हूँ, कविता लिख लिख कर करुणा को अमर बना दूँगा। 'शाहजहाँ' की स्मृति का चिह्न 'ताजमहल' तूफान के किसी झोंके से गिर भी सकता है पर मेरी करुणा का काव्य कभी नहीं मिट सकता।"

"मगर दुनिया की रङ्गीनियों में तू मिट गया तो ?" टकराती हुई प्रतिध्वनि ने कहा।

"नहीं नहीं, यह सम्भव नहीं। पुण्य और पाप में आदर्श और यथार्थ उलझे हुए हैं। जीवन एक समस्या है जिसका हल उलझन में है।"

प्रभात न जाने क्या क्या और कहता रहता पर मन्दिर के द्वार ने उसकी कहानी भंग कर दी। वह कुछ देर के लिये मन्दिर के कुंवे पर बैठ गया और फिर नहाने धोने की तैयारी में लग गया। लेकिन उसकी क्रिया में विचित्रता थी। कभी वह नहाता और कभी पुराने मन्दिर से प्रश्न करने लगता। कभी वह चेतन रहता और कभी जड़ हो जाता।

उधर विकास नहा धोकर फिर बापू के पास आ बैठा। बापू को मौन रहने की बहुत कम आदत थी। कुछ न कुछ भले की कहना

उनका स्वभाव था। विकास को देखकर वे बोले— "देखो बेटा! इधर उधर खाली फिरने से जीवन खराब होता है। कुछ काम करना चाहिये। मेरा खयाल है कि तुम कल से रामपुर में कपड़े वाली दुकान पर चले जाया करो। गुलाब तुम्हें वहाँ छोड़ आयेगा। हमारी वह दुकान लाला धन्नोमल के साझे में है। तुम रोज़ सुबह दुकान चले गये, शाम को लौट आये। और रहा प्रभात का, वह तो अभी कुछ करना ही नहीं चाहता। न जाने क्यों मन में बहुत उदास रहता है बिचारा! घूमने फिरने दो अभी कुछ दिन गाँव में ही। कुछ दिन बाद अपने आप समझ जायेगा।"

विकास— "नहीं बापू! वह समझदार तो बहुत है, पर उसका दिल टूट चुका है। उस टूटे हुए हृदय से करुण कविता के अतिरिक्त अब और कुछ नहीं हो सकता।"

बापू— "क्या कविता भी करता है प्रभात, सुनाई तो नहीं उसने हमें।"

विकास— "वह जीवन से ऊब गया पर कविता से अब भी नहीं ऊबा। किन्तु वह किसी को भी कविता सुनाकर सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसलिये अब उससे सुनाया नहीं जाता। उस टूटे हृदय से कविता निकलती तो है पर वाणी से कही नहीं जाती। कण्ठ रुंधा रहता है उसका। खोया खोया सा रहता है हर समय। ऐसा लगता है जैसे हर समय कुछ खोजता रहता है। न खाना भाता है उसे, न कहीं मन लगता है उसका। सोते जागते हर समय करुणा करुणा रटता रहता है।"

बापू— "तुमने कभी उसे समझाया भी, कुछ पूछा भी?"

विकास— "पूछता तो हूँ बापू! पर प्रभात वह चर्चा छिड़ते ही रो पड़ता है। बस इतना ही जानता हूँ कि करुणा कोई थी जिससे प्रभात बहुत ही प्रेम करता था, उसकी मृत्यु हो गई और इसकी यह दशा।"

यह सुनते ही बापू के मस्तिष्क में भूचाल सा आ गया। उनके मुँह का रंग एकदम बदल गया। अस्सी वर्ष का बूढ़ा हरिराम यह बात सुनकर हिल गया। उसे अपना बीता हुआ इतिहास याद आ गया। वह घटना जो समय की गति में घुल चुकी थी आज फिर तैर आई। बापू के हृदय में एक धक्का लगा। अपने बुढ़ापे की एक लम्बी श्वास लेते हुए वे बोले— "हाँ भैया! यह प्रेम नाम की वस्तु बहुत ऊँची चोटी पर रहती है, जहाँ तक पहुँचने में बहुत बार गिरना पड़ता है, जहाँ तक पहुँचने के लिये कितने ही श्मशान लाँघने पड़ते हैं, और कभी कभी तो वहाँ तक पहुँचकर भी गिरना पड़ता है। प्रेम के बन्धन में बँधे हुए दो प्राणियों को ईश्वर भी नहीं देख सकता। नहीं, नहीं, हमारी कायरता ही समाज की निर्ममता है। तेरी बात सुन कर मुझे भी अपनी जवानी की बात याद आगई बेटा! वह वेश्या थी, पर कितनी अच्छी थी! कितनी सुन्दर थी! पर क्या संसार उसे समझ पाया! उसके पास भी एक चाह भरा हृदय था। जीवन की रेखाओं ने उसे वेश्या बना दिया। वह तन ठोकरों से रुँदवाती थी, मन नहीं। उसने आँसुओं की ललचाई चपलता में ठोकरों को माथे से चूमा। किन्तु इस निर्मम संसार से यह भी सहन न हुआ। धन के मद में अन्धे एक कामुक ने उसकी हत्या कर डाली। और मैं चोरी चोरी प्यार करने वाला उसके हत्यारे से प्रतिशोध भी न ले सका। संसार क्या कहेगा इस डर से मैं उसके शव के साथ भी नहीं गया, पर वह तड़प अब भी किसी किसी समय मेरे हृदय में धक्का मार जाती है। वह कहानी याद आती है तो आँसू रोके नहीं रुकते। साठ साल बीत चुके इन बातों को पर आज तक यह बात मैं कृपण के सोने की तरह छिपाये रहा। आज पहली बार तेरे आगे अपने मन की बात कही है।"

भावुकता और वेग में बापू न जाने कहाँ तक कहे जाते पर प्रभात ने आकर क्रम भङ्ग कर दिया। उसे देख बूढ़े ग्रामीण बापू ने

भाव बदल कर कहा— "नहा आये बेटा ! बैठो ! अच्छा देखो, विकास कल से रामपुर वाली दुकान पर काम किया करेगा। और तुम्हें क्या पसन्द है बोलो !"

प्रभात— "मेरी पसन्द तो दुनिया से चली गई दादा ! संसार को क्या पसन्द आता है इस उलझन में हूँ।"

बापू— "तेरी उलझन कभी नहीं सुलझेगी पगले ! दुनिया में मन लगा, नहीं तो ज़िन्दगी बवाल हो जायेगी। बीती कहानी भूलनी ही पड़ती है।"

प्रभात— "बीती कहानी को भूलना स्वयम् को भूलना है दादा ! बात बात में जब हृदय पर धक्का लगता है तो पत्थर भी टूट जाती है।"

बापू— "मन तो लगाना ही पड़ेगा प्रभात ! मेरे इन सफ़ेद बालों को देख जो सहते सहते सफ़ेद हुए हैं। दुनिया इसे बुढ़ापा कहती है, लेकिन ये परीक्षा देते देते सफ़ेद हुए हैं। परीक्षा ही का नाम ज़िन्दगी है। दुनिया में हर चरण पर नयी परीक्षा होती है। इस स्वयंवर में जो जीतता है वही जयमाला पहिनता है।"

प्रभात— "अब किस बात की परीक्षा देनी शेष है ! कोई विषय ही नहीं रहा परीक्षा के लिये, और ना ही कोई चाह है।"

बापू— "चाह के बिना तो जीवन चलता ही नहीं। अभी क्या, अभी तो बहुत परीक्षायें हैं ! ईश्वर उसे परीक्षाओं से मुक्त नहीं करता जो उत्तीर्ण होता रहता है।"

प्रभात— "परीक्षाओं से मनुष्य नहीं हारता, हारता तो तब है जब लक्ष्य तक पहुँचकर चोटी से गिर पड़ता है।"

बापू— "जो चढ़ते हैं वे गिरते भी हैं। तुम लक्ष्य से नहीं, लक्ष्य के रास्ते से गिरे हो। यह गिरना भी चढ़ने ही का एक चरण है। जो

चलता रहता है मंज़िल उसके चरण चूमने की आदी हो जाती है।"

प्रभात— "पर जब पैर ही नहीं उठे तो राही क्या करे।"

बापू— "कविता तो मृतक को भी जीवन देती है। आज एक कवि के मुख से हारे शब्द सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।"

प्रभात— "यही तो अभिशाप है बापू! यदि भावुकता कवि का हृदय मोमबत्ती नहीं बनाती तो कवि भी संसार के पाषाणों की तरह सब सह लेता। कविता करके कवि को मिला क्या! निराशा और आँसू। जीवन की घटा, आँसुओं की वर्षा और बिजली की तड़प कलाकार की तूलिका ही में कौंधती है। संसार समझ सकता है कि कवि अपना दुःख कह तो सकता है लेकिन दुनिया में तो ऐसे मूक पीड़ित भी हैं कि जिनके पास कहने के लिये भाषा तक नहीं। पर पता नहीं मेरी वेदना कैसी है।"

बापू— "अच्छा बेटे! जो कुछ बीत चुकी वह बीत चुकी, भूल जाओ उसे।"

प्रभात— "न जाने कितनी विस्मृतियों की स्मृति लिये श्वास ले रहा हूँ दादा! भूली हुई पगडण्डी पर जीवन से ऊबा हुआ जी रहा हूँ। जीने के लिये जीना भी कोई जीना है!"

बापू— "याद तो कोई नहीं भूलता, पर याद और पीड़ा को हृदय में दबा कर ज़िन्दा रहना वीरता है। अच्छा, अब तुम कुछ खा पी लो, फिर खेतों की तरफ घूम आना, हरी हरी खेती गा गा कर तुम्हारा मन बहलायेगी।"

लोनी घी, रोटी और मट्ठे का गिलास सामने देख प्रभात के मुँह में भी पानी भर आया। उसने खाया तो पर ध्यान घूमता ही रहा। खा पीकर प्रभात ने विकास से कहा— "चलो अब खेत की तरफ घूम आयें।"

विकास— "चलता तो पर कुछ सर में दर्द सा है, सोना चाहता हूँ।"

प्रभात— "हाँ हाँ! तुम सोओ। मैं जाता हूँ।" कहता हुआ प्रभात चल दिया। वह चला तो पर इस तरह जैसे अर्थी के साथ शोक चल रहा हो।

गाँव की बस्ती से निकल प्रभात याद करता और रोता हुआ दो तीन कोस बराबर चलता रहा। राह में उसके साथ या तो उसका रोता हुआ मन था या विश्व के प्रहरी। कभी वह सूर्य से कहता— "तुम प्रकाशमान् हो, सर्वत्र व्यापक है तुम्हारी ज्योति, तुम अपनी स्वर्ण-रश्मियों से कमलों को खिलाते हो, दया करो मुझ पर, करुणा जहाँ भी हो उसे शान्ति दो। बोलो सूर्य! कहाँ है मेरी करुणा! नहीं बताते, नहीं बोलते, कहीं तुम भी वियोग ही की आग में तो नहीं जल रहे! न जाने किस वियोग की आग से तपते हुए तुम ज्योति बाँट रहे हो! या किसी के अभिशाप की ज्वाला तुम्हें जला रही है! पक्षियो! तुम ही बोलो! नहीं बोलते, हाँ भैया! बिगड़ी में कौन किसका होता है! बताओ तरुओ! तुम ही बताओ! आकाश! तू ही कुछ बता! धरती! तू ही बोल! कोई कुछ नहीं बोलता! तो तूफान! तू ही आ! आग! तू ही बरस! भूतनाथ! तू ही ताण्डव छेड़! यह क्या! प्रकृति भी मेरा उपहास करने पर उतारू हो गई! चाँद! तुम निकल आये, पर मेरा चाँद कहाँ है! तारों के साथ जगमगाते तुम्हें लज्जा नहीं आती! उस दिन तुम अच्छे लगते थे जब मेरा चाँद तुम्हें अपनी आँखों से दुलारता था। अब यह चाँद तारों से सजी रात श्मशान में धधकती हुई चिता जैसी है। तू मुझे श्मशान में खड़ा देख कर हँस रहा है! अपनी अमरता पर गर्व करके मुझे चिढ़ाने आया है! क्या कहा! कहाँ है तेरी वह हँसी जो मुझसे होड़ लगाती थी! देख रही हो करुणा! आज तुम्हारे न होने से सब मेरी खिल्ली उड़ा रहे हैं। आज मोम भी पत्थर बन कर मुझ पर बरस रहा है। अब पत्थर नहीं सहे जाते! बोलो करुणा! अब मैं क्या करूँ! क्या करूँ अब मैं? यदि मैं मर जाऊँ तो क्या तुम मुझे मिल जाओगी!"

उत्तर में शून्य में मौन ही गूँज कर रह गया। प्रभात की भावुकता पराकाष्ठा पर आ पहुँची, और आ पहुँचा सामने श्मशान। चलता चलता प्रभात गंगातट के श्मशान में जा पहुँचा। उसके मन में विचार आया— "जब नश्वरता की उड़ती हुई राख ही अंत है तो फिर जीकर क्या करूँ ? वेदना की कौंध पर जीना भी कोई जीवन है ! जब कहीं मन ही नहीं लगता तो इस गंगा में डूब कर मरने ही में शायद शान्ति हो। इच्छा थी कि करुणा के आँचल में हृदय की धड़कन से जो चित्र खींच रहा हूँ वे युगों की चट्टानों पर चेतना से खड़े रहेंगे। पर किसे पता था कि वह तूलिका इतनी जल्दी टूटने वाली है। ईश्वर! तूने मुझे सुख ही कौन सा दिया था जो यह दुःख देकर आत्महत्या के लिये भी विवश कर दिया। कलाकार! तुझे कलाकार पर भी दया नहीं आई! यदि मुझे यह भी पता होता कि करुणा अमुक स्थान पर सुख से है तो भी मैं लड़खड़ाता हुआ लिखता रहता, पर तू तो उसे न जाने किस अज्ञात स्थान पर ले गया। कितना निठुर है तू भी! मुझे तुझ पर तरस आता है। करुणा क्या अभी संसार से उठाने की वस्तु थी ? तूने उसे दुःख दिये थे और मैं उसे सुखी देखना चाहता था, बहुत सुखी। पर तूने प्याला उस समय हाथ से छीन लिया जब वह अधरों से छूने को था। तो ले, मैं भी तेरे पास आता हूँ। बहुत रोऊँगा तेरे आगे! तब तू अवश्य पिघलेगा।"

कहता हुआ प्रभात गंगा की तरफ दौड़ा। वह डूबना ही चाहता था कि किसी आशा ने उसका पैर पीछे खींच लिया। उसकी आँखों के आगे उसकी भावनाओं की एक छवि चित्रित हो गई। उसने गूँजती हुई आवाज़ में कहा— "हार मानते हो जीवन से, छोड़ दो इन दुर्बल विचारों को।"

प्रभात— "कौन हो तुम जो मुझे इस दुनिया में तड़पने के लिये जीवित रखना चाहती हो ?"

छवि— "मैं तुम्हारी कला हूँ। करुणा मुझमें समा चुकी है। मैं तुम्हारी लिये तपस्या कर रही हूँ, तुम्हारी कीर्ति बनने के लिये। तुम कवि हो न! अनुभूति के आँगन में रास रचा कर तुम किसे नहीं रिझाते! वर लो कवि मुझे!"

प्रभात— "नहीं, नहीं! मुझे कीर्ति नहीं, करुणा चाहिये, करुणा।"

छवि— "वह तुम्हें अब कीर्ति ही में मिलेगी।"

प्रभात— "कीर्ति की चाह मनुष्य को दुर्बल बनाती है। सम्मान का पाप मनुष्य से अपराध कराता है। अपमान के भय से दया को कठोर बनते क्या नहीं देखा?"

छवि— "कैसी विचित्रता है! मनुष्य जिसे चाहता है वह उससे दूर हटती है, और जो उसे चाहती है वह उससे दूर भागता है।"

प्रभात— "कीर्ति भागने वाले के पीछे दौड़ती है और जो उसे पकड़ना चाहता है, उसके वह हाथ झटक देती है। मैं कीर्ति से उस निन्दा को महत्त्व देता हूँ जो भलाई को मिलती है। निन्दा इस जग में प्रेम का प्रसाद है।"

छवि— "तुम मुझे न चाहो पर मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। मुझे दुःख होता है जब तुम्हें दुखी देखती हूँ, पर उस दुःख से कविता निकलती है, वह किसे आनन्द नहीं देती!"

प्रभात— "तो इसका यह अर्थ हुआ कि मेरा दुःख संसार का खिलौना है।"

छवि— "नहीं, तुम्हारा दुःख खिलौना नहीं है, खिलौना तो संसार है जो काल के हाथों से टूटता रहता है। तुम्हारे हृदय से निकला हुआ शब्द क्या कभी टूटता है! तुम्हारे शब्द में अमर शक्ति है।"

प्रभात— "तो क्या मैं जीवन भर अपने आँसुओं के खिलौने बनाता रहूँगा?"

छवि— "तुम्हारी सौन्दर्य भावना की प्रेममयी अनुभूति का परिणाम ललित कला है। उक्तिमात्र से आनन्द देने वाले शब्दमय संसार! तुम्हारी वाणी समष्टि की आशा है।"

प्रभात— "न जाने कितनी बार मुझे आशा ने नया जन्म दिया है। मैं अभी नहीं मरूँगा। मैं दुनिया में पाप पुण्य का एक एक कण देखूँगा और लिखूँगा। अरे यह क्या! चाह मुझे खींचे लिये जा रही है। तो मेरा प्रेम किस में रहा? करुणा में या कीर्ति में। ओह! कितना अस्थायी होता है मनुष्य का प्रेम! परीक्षा का परिणाम गर्भ में ही रहता है। कुछ समझ में नहीं आता क्या है! आशा निराशा, सत्य असत्य, जीवन मरण, न जाने क्या है? जान पड़ता है वेदना अनश्वर है और मनुष्य वेदना ही लेकर संसार से जाता है।"

छवि— "सच कवि! तुम्हारी पीड़ा जितनी अमर है उतनी ही कड़वी भी। पर तुम्हारी वेदना कीर्ति को तुम्हारे लिये पागल बना रही है।"

प्रभात— "अपकीर्ति के गन्दे नाले फाँदने के बाद करुणा मिली थी और अब करुणा के बाद उसकी कसकती हुई याद में कीर्ति ललचा रही है। पता नहीं जीवन में कहाँ कहाँ मन रुकेगा।"

प्रभात न जाने कब तक भावना की तस्वीर से बातें करता रहता। पर 'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है' के घोष ने उसका ध्यान भंग कर दिया। प्रभात ने जो मुँह फिरा कर देखा तो कुछ आदमी एक अर्थी कन्धों से उतार गंगातट पर श्मशान में रख रहे थे।

प्रभात का स्वप्न टूट गया, वह फिर उलझन में पड़ गया। उधर दो किनारों के बीच में नदी बह रही थी, और इधर दो धाराओं के बीच प्रभात बह चला। श्मशान में धधकती हुई चिता ने उसे फिर निराशा में डाल दिया। और उधर कीर्ति उसे फिर कला की ओर खींच रही

थी। 'मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? कुछ निश्चय नहीं होता। तो चलूँ शकुन के पास चलूँ, सम्भव है वहाँ कुछ शान्ति मिले।'

शकुन का ध्यान आते ही प्रभात में बिजली चमक उठी। उसके पैर फिर तो एक पल के लिये भी न रुके। मन दौड़ने लगा। पैरों ने उसका साथ दिया। वह जल्दी जल्दी गाँव की ओर लपका। 'जल्दी से जल्दी शकुन के घर पहुँच जाऊँ।' यह भावना उसे तीव्र गति से ले चली। कुछ ही देर में उसकी मंज़िल पूरी हो गई। लगभग नौ बजे होंगे जब प्रभात शकुन के घर पहुँचा।

शकुन दीपक के धीमे प्रकाश में खाट पर बैठी स्कूल की डायरी भर रही थी। प्रभात को देखते ही वह खड़ी हो गई और बड़े आदर से डरती हुई सी बोली— "आइये! बैठिये! इस समय कैसे कष्ट किया?"

प्रभात— "टहलता हुआ आ रहा था, जब इधर से निकला तो तुम्हारा ध्यान आ गया। मैंने सोचा मिलता ही चलूँ।"

शकुन— "बड़ी कृपा की आपने। कुछ थके हुए से जान पड़ते हैं, आराम से बैठिये।"

प्रभात— "नहीं, थकान वकान कुछ नहीं। जीवन थकने वालों के लिये नहीं होता।"

शकुन— "अच्छा, तो मैं आपके लिये कुछ लाई।" कहती हुई शकुन अन्दर गई और रकाबी में थोड़ी सी पँजीरी तथा पानी का गिलास लेकर ऐसे आई जैसे कोई मज़दूर दो आने की जगह चार आने मज़दूरी के पाकर फूलता हुआ आता है। ससम्मान जर्जर तिपाई पर हाथ की निधि रखती हुई बोली— "खाइये!"

प्रभात पर कुछ जादू-सा हो गया। उसका ध्यान अतीत की कहानी में था और मन शकुन की गतिविधि की ओर। वह करुणा और प्यार की दृष्टि से शकुन की तरफ देखता हुआ बोला— "आप भी ...."

शकुन— "मैं भी ले आती हूँ। यह तो आप ही का हिस्सा है।" कहती हुई वह दूसरी तश्तरी में पँजीरी के दो कतले और ले आई, एवं शर्माती हुई सी पास ही पड़े पीढ़े पर बैठ कर अपने अतिथि का स्वागत करने लगी।

प्रभात का शोक कुछ जड़ सा हो गया। शकुन के प्रति उसके हृदय में आकर्षण का अंकुर उगने लगा। जलपान करते हुए उसने सहानुभूति भरे शब्दों में कहा— "क्या क्रम रहता है आपका? कैसी दिनचर्या चल रही है?"

शकुन— "अच्छी है। ईश्वर जिस दशा में रखता है उस दशा में रहना पड़ता है। क्रम ही क्या? सबेरे से शाम और शाम से सबेरा। हर सबेरा श्रम लेकर आता है और हर शाम अन्धकार में खो जाती है।"

प्रभात— "स्कूल से कितना वेतन मिलता है आपको?"

शकुन— "पैंसठ रुपये।"

प्रभात— "इस मँहगाई में काम चल जाता है?"

शकुन— "काम तो चलाना ही पड़ता है।"

प्रभात— "आपको उन्नति करनी चाहिये। जब आपको नौकरी ही करनी है तो आगे पढ़ना चाहिये। क्या योग्यता है आपकी?"

शकुन— "अपर मिडिल पास हूँ। आगे पढ़ना तो चाहती थी पर साधन ही नहीं जुटे। पढ़ना तो अब भी चाहती हूँ पर पढ़ूँ कैसे?"

प्रभात— "क्या बाधा है तुम्हें?"

शकुन— "अजी, एक बाधा हो तो बताऊँ। पढ़ना बहुत कठिन है और फिर नारी के लिये तो समाज में पढ़ना पाप कहा जाता है। क्या आप नहीं जानते! अर्थ की विवशता, विधवा का होना, समाज की निर्दयता, इन सब में पढ़ना क्या सरल है! जाने कैसे कैसे मैं मिडिल पास

पास कर सकी हूँ। अब अपनी रूखी सूखी स्वाभिमान से तो खा लेती हूँ। माँ बाप या ससुराल वालों पर बोझ तो नहीं।"

प्रभात— "क्या तुम्हारे माँ बाप और ससुराल वाले हैं। तब तो तुम सुविधा से पढ़ सकती थीं।"

शकुन— "मैं आपको क्या बताऊँ और कहाँ तक अपनी कहानी सुनाऊँ। वहाँ रह कर पढ़ना तो दूर रहा, वहाँ रहने मात्र से ही उनकी ज़िन्दगी बवाल बनी हुई थी। ससुराल से तो उनके मरने के तीन दिन बाद ही माँ के पास आ गई थी। वहाँ भी कुछ दिन बाद रहना बोझ हो गया। तब मैंने जैसे तैसे कुछ पढ़ा। पढ़ने के बाद शहर ही में नौकरी करनी चाही तो माँ बाप की आँखों के आगे इज़्ज़त का प्रश्न नाचने लगा। कहने लगे— 'तू हमारी नाक कटवायेगी यहाँ नौकरी करके।' मेरे लिये जीवन दुर्भर हो गया। मैं रोटी क्या खाती, रोटी मुझे खाने लगी। मुझे देखते ही माँ बाप के माथों में भी बल पड़ने लगे। न जाने कितनी मुसीबतें उठा शहर छोड़ कर बोर्ड के इस स्कूल में सेवा कर रही हूँ।"

प्रभात— "समाज कभी किसी का दुःख नहीं देखता और उससे आशा रखने वाले या डरने वाले कुछ नहीं कर सकते। समाज सामूहिक कृत्रिम आदर्श का नाम है। समाज का कोई व्यक्ति क्या तुम से और मुझ से अधिक आदर्श है? यथार्थ की ज़िन्दगी पर आदर्श मातम मनाने का नाटक करता है। छोड़ दो इन दुर्बल विचारों को। अपने बल का आश्रय लेकर संसार की हर चुनौती स्वीकार करो। विजय तुम्हारे चरण चूमेगी। आँसुओं से पत्थर चाहे पिघल जायें पर चिता तक जिनकी मंज़िल है वे नहीं पिघलते। तुम जब यहाँ तक बढ़ आई हो तो इतनी बढ़ो कि समाज तुम्हारी छाया में आ जाये।"

शकुन— "विचार तो बहुत हैं पर पथ दिखाई नहीं देता।"

प्रभात— "पथ स्वयम् मिल जाता है, चलने की शक्ति होनी चाहिये।"

शकुन— "जब पथ सामने होता है तो शक्ति स्वयम् आ जाती है। न जाने यह जीवन किसके संकेत पर चलता है। कल क्या होगा, कहाँ जायेंगे, यह कुछ पता नहीं।"

प्रभात— "पर संकल्पों के आधार पर चलना तो पड़ता ही है। कर्म करना हमारा धर्म है। परिणाम की चिन्ता में पड़ कर हाथ पर हाथ धरना दीन भाव है।"

शकुन— "देखिये, अगर भाग्य में कुछ हुआ तो।"

बातों की लड़ी टूटती नहीं थी और उधर शकुन संकोच कर रही थी। कहीं ऐसा न हो कि कोई देख ले और फिर गाँव में रहना भारी हो जाये। प्रभात भी व्यवहारिक दृष्टि से बार बार उठने की सोचता था पर मन उसे उठने न देता था। मानो वह अपनी मानसिक उलझन सुलझाने में व्यस्त है। आखिर शकुन ही सहानुभूति दर्शाती हुई बोली— "मेरा दुःख तो रात दिन का है। आप कहाँ तक सुनेंगे और कहाँ तक साथ देंगे। मेरे रास्ते में शूल ही शूल हैं, उस पथ पर तो वज्र भी बिंध जाते हैं। आपके कोमल पैर उस कठोरता के लिये नहीं। रात बहुत हो गई है।"

प्रभात को अनुभव होने लगा कि शकुन डर रही है। उठने का नाट्य करते हुए उसने कहा— "रात तभी अखरती है जब कि प्यार का आधार नहीं होता। साथी के साथ थकान कभी नहीं होती। जीवन में चलते चलते इतने शूल चुभे कि चुभने को कोई स्थल ही नहीं रहा। अब तो चुभने का पता ही नहीं चलता। अच्छा तो अब मैं चलता हूँ, रात बहुत हो गई, लगभग ग्यारह का समय हो गया। विकास और दादा प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

शकुन— "हाँ, समय तो बहुत हो गया, लगभग बारह बजे होंगे। अँधेरे में आपको जाना कठिन पड़ेगा।"

प्रभात— "नहीं कठिन कुछ नहीं, हमारे लिये अन्धेरा उजाला ही क्या! सब ठीक है।" कहता हुआ प्रभात चप्पल पहिन कर उठ खड़ा हुआ।

शकुन— "तो फिर दर्शन देने की कृपा कीजियेगा।"

प्रभात— "अब तो मैं आपके पास आता ही रहूँगा। अच्छा आप सोइये, मैं चला।"

कहता हुआ प्रभात चल दिया। जब प्रभात शकुन के घर से बाहर निकला तो पड़ौस में रहने वाली हरदेई ने उसे देख लिया। उसकी जिठानी कलिया के बच्चा होने वाला था। वह दरवाज़े के बराबर की बैठक में सोये अपने आदमी को उठाने आई थी। जब वह दरवाज़े पर आई तो उसने संदेह की दृष्टि से जाते हुए प्रभात को देखा। पर जल्दी में उसने उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। प्रभात तो अपने विचारों में घूमता हुआ जा रहा था, उसने तो किसी को देखा ही नहीं।

'देर बहुत हो गई, सब सो गये होंगे। इतनी रात गये घर जाना ठीक नहीं। तो फिर कहाँ जाऊँ? मन्दिर में चलूँ! रात कुएँ पर काट दूँगा, सबेरे घर चलूँगा। ओह! जीवन भी कितना विचित्र है! ध्यान करुणा की ओर है और मन फिर भागने लगा। करुणा! यह सब क्या हो रहा है?'

कहते कहते प्रभात की आँखों से दो आँसू गिर पड़े, और चलते चलते कुआँ भी आ गया। प्रभात कुछ देर कुएँ पर बैठकर रोता रहा और फिर रोता ही रोता लक्ष्यहीन सा चल दिया।

उधर जब रात के एक बजे तक प्रभात घर नहीं आया तो विकास ने

बापू के पास जाकर कहा— "दादा दादा! प्रभात अभी तक नहीं आया।"

बापू ने कुछ चौंक कर आँखें खोलीं और घबराये से बोले— "क्या है?"

विकास— "प्रभात अभी तक नहीं आया। ओले पड़ रहे हैं। यह तूफानी जाड़ा और पता नहीं वह कहाँ है।"

बापू— "क्या अभी तक नहीं आया और तुम मुझसे अब कहने आये! तुमने उसे अकेला जाने ही क्यों दिया था? अरे गुलाब! उठ जल्दी! देख प्रभात अभी तक नहीं आया। मुझे उसकी तरफ से डर लगा रहता है। उठो, जल्दी उसे देख कर लाओ।"

सुनते ही गुलाब भौंचक्का सा उठा— "क्या प्रभात अभी तक नहीं आया, मैं तो समझा था वह आकर घर में सो गया।"

बापू— "जाओ जल्दी उसे देख कर लाओ, देर मत करो।"

गुलाब ने खाट से उठ कर कुर्ता पहिना, लाठी कन्धे पर धरी और फिर जूती पहिन कर बोला— "कहाँ कहाँ देखूँ बापू!"

बापू— "या तो वह गाँव के बाहर गंगा किनारे मिलेगा या मन्दिर के कुएँ पर पड़ा होगा।"

विकास— "मैं भी गुलाब के साथ ही जा रहा हूँ बापू!"

बापू— "हाँ, चले जाओ और लालटेन लेते जाओ, अँधेरी रात है, रास्ते खराब हैं, देख भाल कर जाना।"

लालटेन लेकर विकास और गुलाब प्रभात को ढूँढने चल दिये। राह में गुलाब बोला— "प्रभात का चित्त न जाने कैसा रहता है। न उसे कुछ अच्छा लगता है, न किसी से मन की बात कहता है।"

विकास— "उसकी बात वही जाने। कुछ पार नहीं मिलता उसके हृदय का।"

गुलाब— "पर गुणी तो बहुत है वह।"

विकास— "और दुखी भी बहुत है।"

गुलाब— "तो क्या जो जितना गुणी होता है वह उतना ही दुखी होता है?"

विकास— "हाँ, कुछ ऐसा ही लगता है।"

गुलाब— "तो बहुत बुद्धि होनी बहुत खराब बात है?"

विकास— "नहीं, बहुत बुद्धि होनी तो बहुत खराब बात नहीं है, पर हृदय का बहुत गुणी होना बहुत दुःख देता है। भावुकता भयङ्कर होती है।"

गुलाब— "बड़ा विचित्र व्यक्ति है वह, न जाने रात को भी कहाँ घूमता फिर रहा है।"

विकास— "चिन्ता तो यही है। वह कहीं मिल जाये यही सोच रहा हूँ। मुझे डर है कि कहीं वह ······"

गुलाब— "नहीं नहीं, ऐसा नहीं, वह समझदार है, जहाँ होगा ढूँढ ही लेंगे, घबराने की कोई बात नहीं। और कल से मैं अकेला उसे कहीं नहीं जाने दूँगा। चलो पहले अमरूदों के बाग में देख लें, कहीं भगतराम माली से बातें न छोंक रहा हो।"

"लो अमरूदों का बाग तो आ गया" विकास ने आशा और डर भरे हृदय से कहा।

गुलाब— "भगतराम! ओ भैया भगतराम!"

कोई उत्तर नहीं आया। विकास ने उत्कण्ठा से कहा— "जान पड़ता है प्रभात यहाँ नहीं है, और भगतराम भी सारे दिन का थका हुआ गहरी नींद में सोया जान पड़ता है।"

गुलाब— "जान पड़ता है भगतराम गहरी नींद में सो गया है। उसकी झोंपड़ी पर चल कर जगाते हैं।"

लालटेन के धीमे प्रकाश में देखते भालते दोनों फूस की झोंपड़ी के निकट पहुँच गये। भगतराम खाट पर कम्बल बिछाये पुरानी सी रजाई में खुर्राटे भर रहा था। गुलाब ने झंजोड़ा तथा आवाज़ देकर उसे उठाया। वह घबराता हुआ उठा। अपने सामने गुलाब को खड़ा देख चौंक कर उसने कहा— "क्या बात है गुलाबसिंह जी !"

गुलाब— "बात क्या है, प्रभात बाबू तो इधर नहीं आये थे ? अभी तक उनका पता नहीं।"

भगतराम— "मैंने उन्हें लगभग तीन बजे गंगा की तरफ जाते देखा था।"

सुनते ही विकास और गुलाब जल्दी जल्दी बिना कुछ उत्तर दिये गंगा की तरफ चल दिये।

विकास— "मेरा मन डर रहा है, कहीं वह गंगा में न डूब गया हो।"

गुलाब— "नहीं भैया। वह कोई नादान नहीं है।"

विकास— "नादान तो नहीं है पर जीवन से ऊब चुका है।"

गुलाब— "मनुष्य जीवन से ऊब जाता है पर मरने से डरता है। हर आदमी कहता है मैं मर जाऊँगा पर मरता तभी है जब मौत आती है।"

गंगा आ गई, आस पास के घाट छान डाले, किनारे किनारे कोस भर बढ़ते रहे, पर प्रभात कहीं दिखाई नहीं दिया। विकास आगे बढ़ रहा था पर उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। उसने काँपते हुए कहा— "अब कहाँ देखें ? प्रभात मुझे बहुत प्यारा है। ज़िन्दगी के पथ पर वह मुझे एक सच्चा भाई मिला था। कहीं वह गंगा में ······ ।"

गुलाब— "घबराओ मत भैया। हम उसे ढूँढ कर ही रहेंगे। देखो ये सामने से कौन आ रहे हैं। जान पड़ता है डाकू हैं।"

इतने में एक डरावना दल मुँह के सामने आ गया। उन में से एक ने कड़क कर कहा— "कौन हो ? कहाँ जाते हो ?"

गुलाब— "हमारा भाई सबेरे का घर से निकला हुआ है, अभी तक घर नहीं पहुँचा। उसे ढूँढते फिर रहे हैं। तुमने किसी को कहीं देखा तो नहीं ?"

डाकू— "इधर आगे कहीं कोई नहीं है।"

कहते हुए डाकू चल दिये। गुलाब ने डरते हुए हिम्मत करके कहा— "गाँवों में डकैतियाँ बहुत पड़ रही हैं। कहीं ये हमारे ही गाँव में तो डाका नहीं डालेंगे।"

विकास— "क्या पुलिस डाकुओं को पकड़ती नहीं ?"

गुलाब— "पुलिस क्या डाकुओं से कम है। पुलिस तो डाकुओं से मिली रहती है।"

विकास— "ईश्वर सब की रक्षा करता है। वह सबसे बड़ी पुलिस है। अब बताओ प्रभात को कहाँ देखें।"

गुलाब— "चलो लौटकर मन्दिर की तरफ चलते हैं।"

लगभग तीन बजे रात को गुलाब और विकास गाँव के दूसरी तरफ उस मन्दिर में आये जो टूटा फूटा होने पर भी जीवन का सत्य बता रहा था और बरसा रहा था मौन मधुर शान्ति।

प्रभात मन्दिर के चबूतरे पर ऐसे सो रहा था जैसे थका हुआ यात्री दुःखों के सोने पर मीठे स्वप्न में सो रहा हो। चाँदनी उसके बराबर में सोई हुई थी। मन्दिर की शान्ति उसे थपकियाँ देकर सुला

रही थी। हवा इसलिये बन्द थी कि प्रभात एक कुर्ते में जाड़े की रात भूला हुआ था।

संसार के दुःखों में जीवन से ऊबे हुए प्रभात को निद्रा अपनी गोद में शान्ति दे रही थी। उसे देखते ही विकास और गुलाब के मुँह पर प्रसन्नता और पैरों में थकान दौड़ आई। गुलाब ने खोई हुई निधि पा प्रफुल्ल वाणी में कहा— "देखो, कैसा पागल है! जाड़े की इस ठंडी रात में यहीं सो गया।"

विकास— "जी नहीं चाहता कि इसे जगाऊँ। जागते ही इसकी पीड़ा जाग जायेगी।"

गुलाब— "इसे जगाना चाहिये, ऐसी ठंड में जंगल के इस खुले कुएँ पर सो रहा है, कहीं नमूनिया हो गया तो! उठो प्रभात! उठो!"

प्रभात की नींद टूट गई। वह चौंक कर उठ बैठा। ग्लानि अनुभव करते हुए उसने कहा— "अरे, तुम इतनी रात गये मुझे ढूँढते फिर रहे हो। सच मैं बहुत बुरा हूँ। मुझसे किसी को सुख नहीं मिला। माँ बाप मुझ से धन और सम्मान चाहते थे पर मैं अभागा यत्न करके भी उनकी इच्छा पूरी न कर सका। क्योंकि मैं कवि हूँ, अर्थ की हीनता के कारण मैं अपने प्रिय से प्रिय को भी प्रसन्न न कर सका। संसार अर्थ से प्रसन्न होता है, हृदय से नहीं। हृदय का आभारी प्रेम भी अर्थ के अभाव में ऊबने लगता है। आशा पर तुषारापात करने वाला मैं घिनौना कीट ही तो हूँ। मुझे स्वयम् से घृणा हो रही है भैया! सब को कष्ट दिया। अब यहाँ तुम्हें भी कष्ट देने को ज़िन्दा हूँ।"

विकास— "यह समय पागलपन की बातों का नहीं है। जब देखो प्रलाप ही छिड़ा रहता है। घर चलो जल्दी, बापू दुखी हो रहे हैं।"

गुलाब— "चलो भैया! बापू बाट देखते देखते घबरा गये होंगे। कहीं ऐसा न हो कि वे हमें ढूँढने निकल पड़ें।"

चाँदनी के पाँवड़ों पर तीनों पथिक घर की ओर चल पड़े। टूटे फूटे पथ पर तमिस्रा की अस्फुट रेखा उनके साथ थी। तीनों अपनी अपनी सोचते जा रहे थे। विकास कल्पनाओं और महत्वाकांक्षाओं का जाल बुनता चलता था। प्रभात न जाने कितनी कवितायें रचता और मिटाता हुआ आगे बढ़ रहा था। गुलाब उत्पादन की उधेड़बुन में श्रम के मोतियों की माला मन मन में गूँथता जाता था।

चिन्ता और संकल्पों की वेला में चलते चलते तीनों जब गाँव में घुसे तो हरीसिंह जाट के साथ लाठी टेकते हुए बापू इनकी ओर आते दिखाई दिये। प्रसन्नता और कुछ क्रोध की भाषा में उन्होंने कहा— "जब नहीं रहा गया तो हरिसिंह को जगा कर तुम्हें देखने निकला। सबेरे के पाँच बजे हैं। कहाँ मारे मारे फिरते रहे? हरदेई नायन की जिठानी कलिया के लड़का हुआ है। हरदेई अभी अभी कलिया की माँ को खबर देकर घर जाती हुई मिली थी। वह कहती थी रात करीब बारह बजे मैंने प्रभात को शकुन मास्टरनी के घर से जाते हुए देखा था।"

प्रभात के चेहरे पर चिन्ता की रेखा दौड़ गई। उसने भाव बदलते हुए कहा— "शकुन को आज स्कूल में पढ़ाने के लिये मुझ से कुछ पढ़ना था। मैं उसे पढ़ा कर मन्दिर की तरफ चला गया। आधी रात आपको कष्ट न देने के भाव से वहीं मन्दिर के कुएँ पर सो गया।"

बापू— "सोने के लिये घर नहीं था जो ऐसे जाड़े में मन्दिर के कुएँ पर जा सोये। बराबर के गाँव में डाका पड़ गया है, अगर तुम्हें रात भर घर से ग़ायब पाकर पुलिस फँसा ले तो?"

प्रभात की त्यौरी कुछ बदल सी गई। उसने आवेश में कहा— "पुलिस डाकुओं को तो पकड़ नही सकती और भले आदमियों को बन्द

करती है। मैं ऐसे अन्याय से नहीं डरता। और रही घर की बात, कभी घर था, पर अब तो बेघर फिरता हूँ। हाँ, यह दुःख अवश्य है कि मेरे कारण आपको भी कष्ट उठाना पड़ता है। मैं आपको दुःख नहीं दूँगा, गाँव छोड़ कर चला जाऊँगा।"

बापू— "इन पागलपन की बातों से कोई लाभ नहीं। जीवन बहुत बिखर चुका, अब उसे संयत करना चाहिये। अच्छा, अब घर चलो और कल से तुम गाँव के बच्चों को पढ़ाया करना। मन भी बहलेगा और सेवा भी होगी।"

दूसरे दिन दस बजे विकास और प्रभात जब भोजन कर चुके तो बापू ने उन्हें बैठक में बुलाकर कहा— "मनुष्य को कुछ कार्य करना चाहिये, खाली पड़े पड़े ज़िन्दगी भार बन जाती है। व्यस्त कर्मठ जीवन ही सुख है। मैंने तुम दोनों के लिये कार्य निश्चित कर लिये हैं। प्रभात! तुम कल से गाँव में बच्चों को पढ़ाया करो। और विकास! तुम रामपुर वाली कपड़े की दुकान पर जाया करोगे। वह दुकान लाला धन्नोमल के साझे में है। हमारी उसमें पाँच आने की पत्ती है। तुम हमारे प्रतिनिधि बनकर काम करोगे।"

प्रभात— "यदि मुझसे पढ़ाया गया तो मैं कल से अवश्य पढ़ाऊँगा। पर पढ़ाऊँगा उसी पुराने मन्दिर में। वहाँ का शुद्ध वातावरण मुझे बहुत पसन्द है। ऐसे शुद्ध वातावरण में बच्चों के मध्य रहने से मन बहल जाने की आशा भी हो सकती है।"

बापू— "तो फिर ठीक है। मन्दिर में बच्चों की पाठशाला शुरू कर दो कल से। विकास! तुम रामपुर जाने की तैयारी करो।"

विकास— "तैयारी ही क्या बापू! मैं तैयार हूँ, चाहे अभी भेज दीजिये।"

बापू— "अच्छा, तो अभी चले जाओ। गुलाब तुम्हें छोड़ आयेगा। तपोधन! गुलाब काका को बुला तो ज़रा।"

गुलाब के आते ही बापू ने कहा— "बेटा गुलाब! विकास को रामपुर वाली कपड़े की दूकान पर छोड़ आओ। यह आज से वहीं काम करेगा।"

गुलाब कुर्ता पहिन लठिया उठा चलने को तैयार खड़ा हो गया। प्रभात विकास की ओर डबडबाई आँखों से देखने लगा! विकास का मन भी कुछ भारी सा हो उठा। उसने भावुकता पर नियंत्रण करते हुए कहा— "परेशान न होओ प्रभात! मैं प्रतिदिन सन्ध्या को लौट आया करूँगा। दुःख न मानो!"

प्रभात— "नहीं, दुःख मानने की कोई बात नहीं। संसार का नियम ही ऐसा है। मिलन तो कल्पना को कहते हैं। वस्तुतः वेदना और बिछोह ही सत्य है। पता नहीं मेरा भाग्य कैसा है, जो मिलता है वही बिछुड़ जाता है।"

कहते कहते प्रभात की आँखों से आँसू निकल पड़े। अब विकास के भी आँसू न रुक सके। विदा वेला में किसके आँसू रुके हैं आज तक। बापू ने अपनी लम्बी आयु की शिला छाती पर धर गम्भीरता से कहा— "अरे कोई साल दो साल के लिये सौ दो सौ पाँच सौ कोस तो नहीं जा रहे जो इतने व्याकुल होते हो। सुबह गये शाम को वापिस आगये।"

प्रभात— "प्रेम में एक पल का बिछोह भी भयंकर होता है। न जाने क्यों मुझ में यह दुर्बलता आ जाती है। पता नहीं मेरी भावुकता मेरा क्या बनाना चाहती है।"

विकास— "मन छोटा मत करो भैया! मैं तुम से कभी दूर नहीं हूँ।"

प्रभात— "नहीं भैया! मन छोटा करने की कोई बात नही, पर कहीं तुम भी मुझे भूल तो नहीं जाओगे ? कहीं तुम भी मुझे किसी दिन पापी तो नहीं कहने लगोगे ?"

विकास— "कैसी बात करते हो प्रभात! मेरे लिये दुनिया में तुम से अधिक और कौन है।"

प्रभात— "आज तो नहीं, पर कल की कौन जानता है।"

बापू— "कल क्या होने वाला है यह सब मेरी लम्बी आयु देख चुकी है। जो होना होगा वह हो जायेगा। अभी से चिन्ता में क्यों घुलते हो। भविष्य किसी और के संकेत पर है।"

विकास गुलाब के साथ चल पड़ा। चलते समय उसने अपार प्रेम की आँखों से प्रभात को देखा। प्रभात भी तब तक बराबर एकटक देखता रहा जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये। विकास जीवन की मंज़िल पर उधेड़बुन में उलझा हुआ आगे बढ़ा।

* * *

जीवन का नया पृष्ठ खुला। विकास कपड़े की दूकान पर नापता और फाड़ता दिखाई देने लगा। जीवन की चहल पहल और आकांक्षायें बढ़ने लगीं। नयी नयी बातें और नये नये रंग ढंग में उस पर भी रंग चढ़ने लगा। विकास की व्यापार में दिलचस्पी बढ़ी। उसके श्रम और कार्य-कुशलता से धन्नोमल बहुत प्रसन्न हुए।

दिन प्रतिदिन व्यापार बढ़ने लगा। विकास अब दूकान तक ही सीमित नहीं रहा। उसने इधर उधर हाथ फैलाने शुरू कर दिये। एक दिन लाला धन्नोमल से उसने कहा— "बाज़ार तेज़ जाने की आशा है, हमें माल रोक कर बेचना चाहिये। और मेरा खयाल है अगर रुपये का प्रबन्ध हो सके तो चाँदी, सोना और गुड़ की खरीद करनी चाहिये। लड़ाई छिड़ने के पूरे लक्षण हैं। लाभ अवश्य होगा।"

धन्नोमल— "तेज और मन्दे के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। लड़ाई के बादल फट भी सकते हैं और धूप भी निकल सकती है। यह तो एक तरह का सट्टा है। परिणाम का कुछ पता नहीं क्या हो, दिवाला भी निकल सकता है। और फिर रुपया भी तो सब कपड़े के व्यापार में लगा हुआ है।"

विकास— "कैसे भी और किसी तरह भी आप सौ बोरी गुड़ तो अभी अवश्य खरीदिये। मेरा मन कह रहा है कि गुड़ कल तक तीस रुपये मन हो जायेगा।"

धन्नोमल का लालच बढ़ा, उन्होंने दलाल को बुला कर कहा— "ढाई सौ मन गुड़ हमारे लिये अभी खरीद लो। क्या भाव में होगा?"

दलाल— "अट्ठारह रुपये छः आने का भाव है।"

धन्नोमल— "खरीद लो!"

तीसरे दिन भाव तीस रुपये मन का हो गया। लाला धन्नोमल को इस सौदे में लगभग उनत्तीस सौ रुपये का लाभ रहा। आज लाला धन्नोमल बहुत प्रसन्न हैं। फूले फूले वे घर पहुँचे। पत्नी को पास बुलाकर कहने लगे— "यह जो गाँव से विकास दूकान पर आया है, बहुत होनहार जान पड़ता है। व्यापार में तो इसकी बुद्धि बहुत तेज़ चलती है। तीन दिन में इसकी बात मानने से मुझे तीन हज़ार का फायदा रहा।"

धन्नोमल की पत्नी लक्ष्मी लक्ष्मी मैया की स्तुति करती हुई बोली— "तो इस मंगलवार को मैं कीर्तन अवश्य करवाऊँगी। उसमें गुलदाना नहीं बटेगा, मिठाई की तश्तरी बटेगी।"

धन्नोमल— "हाँ हाँ हो जायेगा।"

लक्ष्मी— "प्रेरणा के लिये कोई लड़का देखा? इस अगले लगन में उसका विवाह अवश्य हो जाना चाहिये।"

धन्नोमल— "लड़का तो कोई दिखाई नहीं देता। जो मिलते हैं वे लाखों की बात करते हैं। हाँ! यह विकास कैसा रहेगा।"

लक्ष्मी का मुँह खिल उठा। उसने प्रसन्नता से कहा— "बिलकुल ठीक है। दीवा लेकर ढूँढोगे तो भी ऐसा लड़का नहीं मिलेगा। देखने में सुन्दर, बुद्धि में तेज़, होनहार, हर प्रकार से अच्छा है।"

धन्नोमल— "तो मैं हरिराम बापू से बातें करूँगा। बात पक्की हुई तो इसी लगन में विवाह कर डालूँगा। बहुत अच्छी रहेगी यह बात।"

लक्ष्मी— "लड़के के माँ बाप भाई बहन कौन कौन हैं?"

धन्नोमल— "इस सब के बारे में मुझे अभी पूरा पता नहीं है। बस इतना ही जानता हूँ कि बापू का विकास पर बड़ा विश्वास और प्यार है।"

लक्ष्मी— "अगर ऐसा लड़का सौ सौ कोस ढूँढोगे तो भी नहीं मिलेगा, बात हाथ से निकलने न पाये।"

धन्नोमल— "जैसी जूड़ी बली होगी होगा तो वही, पर अपनी जान में कोई कसर उठा नहीं रक्खूँगा।"

दूसरे दिन दूकान पर आकर धन्नोमल ने कहा— "बापू बहुत दिनों से रामपुर नहीं आये, कल गाँव जाओ तो कहना कि वहाँ सब आपको याद करते हैं। गुलाब भी जब से तुम्हें छोड़ कर गये हैं तब से आये ही नहीं।"

विकास— "बापू बहुत बूढ़े हो गये हैं, अब उन से चला फिरा बिल्कुल नहीं जाता। उनके सीधे घुटने में दर्द रहता है। कल आप ही हमारे साथ गाँव चलिये।"

धन्नोमल— "कल तो नहीं, मंगल की छुट्टी को आऊँगा।"

विकास— "कल बृहस्पतिवार है, मैं सोचता हूँ कि आज दो तीन बजे के लगभग सेवाग्राम चला जाऊँ। कई दिन हो गये मुझे वहाँ गये हुए। प्रभात और बापू दिन प्रति दिन बाट देखते होंगे। अगर आपकी आज्ञा हो तो आज ही चला जाऊँ।"

धन्नोमल— "हाँ हाँ चले जाओ! पैदल आने जाने में तुम्हें कष्ट होता होगा। तुम एक काम करो, एक बाईसिकल ख़रीदलो। चलो मेरे साथ, अभी तुम्हें साइकिल लिवा दूँ। चलाना तो आता है न ?"

विकास— "हाँ, यहीं रामपुर में विक्रम से सीख तो लिया है।"

घण्टे भर बाद दो सौ रुपये की नई साईकल पर सवार हो विकास गाँव की ओर चल दिया। सूर्य की किरणें वृक्षों की डालियों पर खेल कर पर्वतों के शिखरों पर मचल रहीं थीं। और विकास गांव की पगडंडी पर उत्साह की तरंगों में तैरता जा रहा था। 'शाम को जा रहा हूँ, सुबह आ जाऊँगा। सुबह और शाम के आवर्त्तन में जीवन का नर्तन न जाने किस पल भंग हो जाये, लेकिन भंगुरता का मनोहर स्वप्न भंग नहीं होता। भोग का अस्तित्व पल भर भी तो नहीं रहता। स्वप्न से भी भंगुर है भोग। फिर जीवन का उद्देश्य क्या है ? सुख क्या है ? सत्य क्या है ? कुछ निश्चय नहीं हो पाता।'

न जाने इस प्रकार कितने प्रश्नोत्तरों में उलझा हुआ वह साइकिल दौड़ाये चला जा रहा था। जब विकास सेवाग्राम के किनारे पहुँचा तो उसने प्रभात को शकुन के साथ खेतों की ओर घूमते देखा। विकास पास पहुँच कर साइकिल से उतरा। प्रसन्नता से प्रभात को गले से लगाते हुए वह बोला— "अब मैंने बाइसिकल खरीद ली है। रोज़ शाम को गाँव आ जाया करूँगा। बाईसिकल पर सेवाग्राम से रामपुर का केवल बीस मिनिट का रास्ता है। और कहो क्या हाल है ? अब तो कुछ बदले बदले से दिखाई देते हो।"

प्रभात— "और तुम भी तो बदल गये हो वहाँ जाकर।"

विकास— "परिस्थितियाँ व्यक्ति को बदल देती हैं, पर स्वभाव को नहीं। मैं बाहर से बदला हुआ अवश्य दिखाई देता हूँ पर हूँ वही, अभी तक तो बिलकुल वही हूँ, हाँ कल की नहीं कह सकता।"

विकास— "और शकुन जी! आप का क्या हाल है? आपके विद्यालय की क्या दशा है?"

शकुन— "हाल चाल ही क्या, नौकरी है, कोई भाईबन्दी थोड़ी। पूरा श्रम लेते हैं तब कहीं पैसे देते हैं। इस पर भी हर समय नौकरी से अलग करने की धमकी बनी रहती है।"

प्रभात— "नौकरी क्या मट्टी पलीत है। ये भावुक और सरल स्वभाव की इस कठोर कार्य के लिये नहीं बनीं। ये तो कला की मूर्ति हैं। बहुत स्नेह है इन्हें कला से।"

शकुन भावुकता और स्नेह की आँखों से प्रभात को आँखें झुकाकर देखने लगी। विकास ने मन में कुछ सोचते हुए कहा— "चलो प्रभात! घर चलें, बापू बड़ी बाट देखते होंगे।"

प्रभात— "तुम चलो, मैं भी अभी आता हूँ और फिर तुम तो घोड़े पर सवार हो भैया!"

विकास— "तुम पीछे बैठ जाना, या दोनों साथ ही पैदल चलेंगे।"

प्रभात— "नहीं भैया! तुम चलो, मैं शकुन से कुछ बातें करके अभी आता हूँ।"

विकास समझ गया कि प्रभात का चलने को मन नहीं है। उसके हृदय में एक द्वन्द सा छिड़ गया। हृदय की आँधी में बुद्धि को घसीटता हुआ वह घर की ओर चल पड़ा। चलते चलते उसने कहा— "जल्दी आना प्रभात!"

प्रभात— "अभी हाल ही आता हूँ भैया !"

शकुन— "अब मुझे भी चलना चाहिये। आज पाठशाला के मैनेजर ने पांच बजे सब अध्यापिकाओं को स्कूल में बुलाया है। परसों निरीक्षण के लिये निरीक्षिका आने वाली हैं।"

प्रभात— "जाने का नाम न लो शकुन ! मेरा जी नहीं चाहता कि तुम जाओ।"

शकुन— "भोली बातें न करो। आप इन गाँव वालों को नहीं जानते, किसी ने भी देख लिया तो गाँव में रहना भारी हो जायेगा।"

प्रभात— "तो क्या तुम्हें मुझसे दूर रहना अच्छा लगता है ?"

शकुन— "अच्छा तो नहीं लगता, पर दुनिया जो खाती है, विवशता को क्या करूँ ? आप से अलग होने को मन बिल्कुल नहीं करता। पता नहीं आपने क्या जादू सा कर दिया है। पाठशाला चली तो जातीं हूँ पर जी आप ही में पड़ा रहता है। सचमुच तुम देवता हो प्रभात ! तुम्हारी कविताओं में अमृत है, कैसे जाऊँ तुम्हें छोड़ कर ! पर जाना ही पड़ता है। देखो, जल्दी में कुछ बदनामी की बात न हो जाये। यह स्कूल का मैनेजर बड़ा ज़ालिम है, तुरन्त माँ को चिट्ठी लिख देगा। फिर हम बिलकुल नहीं मिल सकेंगे।"

प्रभात— "मैं देवता ! देवता इस दुनिया में कहाँ पगली ! वे तो कहीं आकाश लोक से ऊपर रहते होंगे। या किसी ने सत्युग की कल्पना में देखा होगा उन्हें। यह कलियुग का कराल काल कहा जाता है। तुम मुझे देवता इसलिये समझती हो कि मैं तुमसे स्नेह करने लगा हूँ। जिससे जिसका स्वार्थ सिद्ध होता है वह उसके लिये देवता ही है। किन्तु स्नेह संसार की वाणी में कलंक कहा जाता है। संसार की भयंकर आँखें स्नेह जलाने के लिये आग होती हैं।"

शकुन— "प्रेम ही तो देवता का धर्म है, फिर पता नहीं प्रेम किसी से सहन क्यों नही होता।"

प्रभात— "संसार में एक दूसरे की प्रसन्नता से जलता है। पाप पाप पुकार कर धर्म की दुहाई देने वाली दुनिया का धर्म धर्मस्थानों की दीवारों के अन्दर समाया रहता है।"

शकुन— "अच्छा अब जाऊँ, देर बहुत हो गई है, मैनेजर बुरी भली कहेगा।"

प्रभात— "मेरे पास जो आता है वह छोड़ कर जाने के लिये ही। करुणा चली गई, परिवार भूकम्प डस गया, और भी न जाने क्या क्या बिछड़ा है। मेरी वह माँ और पत्नी जो रूढ़ि की दीवारों में बन्द थीं पता नहीं गोमती की बाढ़ में बह गई या कहाँ हैं! देखो शकुन! जीवन भी कितना विलक्षण है! क्या क्या देखकर भी दुनिया में चाहों के पीछे दौड़ना पड़ता है।"

कहते कहते प्रभात गम्भीर हो गया। शकुन का दुःख भी उमड़ आया। वह आँचल से आँसू पूँछती हुई बोली— "बीती बात भुला कर ही चलना पड़ता है, भूल जाओ सारा अतीत। समझो कि हम आज ही दुनिया में आये हैं। मैं भी क्या करूँ, मैं जाना चाहती हूँ पर पैर मन ने जकड़ लिये हैं।"

प्रभात— "अच्छा यही है कि तुम मुझसे दूर रहो, मैं बहुत बुरा हूँ शकुन! बहुत बुरा। तुम साँप को पकड़ना चाहती हो। किसी ने हमें देख लिया तो तूफान खड़ा हो जायेगा। तुम्हारी नौकरी पर बिजली पड़ सकती है। यह प्रेम है पगली! जो घृणा और सत्य के शिखर पर ठहरता है।"

शकुन— "अब मेरे बस की बात नहीं रही, प्रेम की प्यास ने मुझे पागल बना दिया है।"

प्रभात— "तुम्हारा जीना कठिन हो जायेगा। तुम पहाड़ से कूदना चाहती हो। परिणाम भयङ्कर मृत्यु है। यह अमृत विष से भी कठोर है, पीने की इच्छा मत करो। जाओ शकुन जाओ! मेरे उजड़े हुए जीवन में फिर से तूफ़ान आ रहा है।"

शकुन— "तूफ़ान ही का नाम ज़िन्दगी है। तुम कवि होकर तूफ़ान से डरते हो! मेरी आँखों के आँसू देखो, ये तुम्हारी गोद में बिखरना चाहते हैं। ले लो इन मोतियों की भेंट, न ठुकराओ इन्हें।"

प्रभात— "आँसुओं को पत्थर पर गिर कर टूटने दो। मेरी आँखों की सूखी सरिता में इन्हें न तैराओ। मैं बहुत दुखी हूँ शकुन! मुझे डर है कि कहीं तुम मेरे दुःखों की आग में जल न जाओ। मेरे साथ तुम्हें सुख नहीं, दुःख मिलेंगे शकुन!"

शकुन— "मैं सब सह लूँगी, लेकिन तुम्हारी दूरी नहीं सह सकूँगी।"

प्रभात— "निकटता का नाम ही दूरी है। यह वह मंज़िल है जिस पर जितने बढ़ो मंज़िल उतनी ही बढ़ जाती है। अच्छा शकुन! अब तुम जाओ, समय अधिक हो गया, कहीं प्रारम्भ से पहिले ही अन्त न हो जाये।"

शकुन— "अच्छा मैं जाती हूँ, अब फिर कब?"

प्रभात— "प्रभात वेला में।"

अनमने मन से शकुन चल दी। पर वह चलती चलती बार बार प्रभात को पीछे फिर कर तब तक देखती रही जब तक दूरी की छाया ने आँखों के चित्र का रूप नहीं ले लिया।

जल्दी जल्दी चल कर शकुन पाठशाला पहुँची। उसके हृदय में कम्पन थी, 'मैनेजर साहब नाराज़ होंगे। पाँच बजे बुलाया था, सात

बज गये ।' वह यह सोचती हुई जैसे ही पाठशाला के द्वार में प्रवेश हुई वैसे ही चौधरी धूमसिंह धमधमाते हुए स्कूल से बाहर आते हुए मिले। उन्होंने लाल लाल आँखों से शकुन को देखा, और फिर अकड़ते हुए बोले— "कहाँ थीं आप इतनी देर तक ? सवेरे इंस्पेक्टर आने को हैं और आप घूमती फिर रही हैं ।"

शकुन— "जी तनिक तबियत कुछ......"

चौधरी— "हाँ हाँ 'जी तनिक तबियत क्या'! उस छोकरे प्रभात के साथ हवा खा रही होंगी। पाठशाला को बदनाम कर दिया है तुमने ! सारे गाँव में तुम्हारी चर्चा हो रही है । उस बापू ने यह प्रभात क्या साँप गाँव में पाल लिया है । सारे दिन आवारा की तरह गाँव की लड़कियों को बहकाता फिरता है । कवि आया है कहीं का साहब कवि !'

शकुन— "आप क्यों किसी को बुरा भला कहे जा रहे हैं। जो कुछ दोष है मेरा, किसी दूसरे का कुछ दोष नहीं ।"

चौधरी— "मैं तो पहिले ही सब समझता हूँ। तुम्हें उसका दर्द नहीं होगा तो किसे होगा ! अच्छा रात को तुम मेरे घर आना तब तुम्हारी नौकरी का फैसला होगा ।"

कह कर अकड़ते हुए चौधरी साहब चल दिये, और शकुन दीवार के सहारे खड़ी खड़ी रोने लगी। वे सब और अध्यापिकायें भी जो अब तक चौधरी के डर से अपने अपने स्थानों पर बैठी काम कर रही थीं, अब सहानुभूति दिखलाती हुई शकुन के पास आकर खड़ी हो गईं। हिन्दी की अध्यापिका ज्योति ने कहा— "क्यों रोती हो बहिन! हम अध्यापिकाओं का जीवन ही ठोकरों में है। भाग्य तो हमारे तभी फूट चुके जब वे मरे और हमें नौकरी करने निकलना पड़ा। यदि वे न मरते तो क्यों मारी मारी फिरतीं ! और फिर गाँव की इस छोटी सी पाठशाला में तो ज़िन्दगी खराब है। हर समय डाट सहना यही तो हमारी ज़िन्दगी है। माँ बाप

और सुसराल वालों के तानों से तंग आ यहाँ चली आई, पर यहाँ भी हर समय माँस नोचा जाता है। पचास रुपए क्या देते हैं खून पीते हैं। मैं तो नौकरी छोड़कर रामपुर चली जाऊँगी। पहिले खूब पढ़ूँगी, फिर किसी अच्छे स्कूल में नौकरी करूँगी या स्वयं एक आदर्श विद्यालय खोलूँगी।"

ज्योति के सुन्दर मुख से भोले भाव ऐसे निकल रहे थे जैसे दया के सरल नेत्रों से आँसू निकल रहे हों। शकुन अपना दुःख कुछ भूल उसका मुँह देखती रह गई। पर उसकी यह शान्ति जलोकड़ी अध्यापिका रेवा से सहन नहीं हुई, उसने नाक भौं चढ़ाते हुए कहा— "मैनेजर भूठ थोड़ी कहते हैं। नौकरी है, कोई भाईबन्दी थोड़ी! इधर उधर फिरने से बदनामी तो होती ही है।"

ज्योति— "कैसी बदनामी! किसकी बदनामी! व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश करते तुम्हें लज्जा नहीं आती। जब कोई भूखी होती है तो रोटी तुम खिलाती हो? जब कोई रोती है तो आँसू तुम पूँछती हो? बिना सहारे के क्या किसी का जीवन चल सकता है? बड़ी आई हो बातें बनाने वाली, जले पर नमक छिड़कना ही तुम्हारा काम रहता है। मैनेजर के कान भरती फिरती हो, कहीं घर घर में चर्चा करती हो। जाओ अपना काम करो, हमारे बीच में न पड़ो। राजा रूठेगा अपनी नगरी लेगा, कोई भाग्य थोड़ी छीन लेगा।"

रेवा चिढ़ कर आँखें निकालती हुई चली गई। शकुन अपार अपनत्व की दृष्टि से ज्योति की ओर देखती हुई बोली— "बहिन! तुम बड़ी अच्छी हो।"

ज्योति— "रोओ मत बहिन! दुनिया रोतों को रुलाती है। संसार रोने वालों का नहीं, जूझने वालों का है। दुनिया से लड़ो और तमाचा मार कर आगे निकलो।"

शकुन— "सच कहती हो बहिन! आपके उन्हें मरे कितने दिन हो गये?"

ज्योति— "दो वर्ष हो गये। दो वर्ष में दबते दबते अपना सत्यानाश कर लिया। सारा जेवर और रुपया सुसराल वालों ने दबा लिया। माँ बाप की आँखों में भी खटकने लगी। दुनिया ने पढ़ने पर आफत डाल दी। मैंने सोचा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, अभी तेरी चौबीस वर्ष की आयु है, कैसे कटेगी। मन ने उत्तर दिया साहस और स्वावलम्बन से। जो दुनिया से दबता है दुनिया उसी को खाती है।"

शकुन— "तुम्हारे पीहर या सुसराल में कोई है?"

ज्योति— "हैं तो सब, पर मेरे लिये कोई नहीं। दोनों घरों में किसी बात की कमी थोड़ी है। पूरे पूरे कुटुम्ब हैं, पर मेरे ही लिये जगह नहीं। मैंने जब देख लिया कि अपने पैरों पर खड़े हुए बिना कोई अपना नहीं होता तो शक्ति और साहस को अपनाया। संसार का सत्य शक्ति और साहस में है।"

शकुन— "अच्छा बहिन! अब मुझे मैनेजर के घर जाना चाहिये, वे आँखें टेढ़ी कर के कह गये हैं, रात को घर आना, तुम्हारी नौकरी का फैसला होगा।"

ज्योति— "अच्छा बहिन! जाओ, ईश्वर तुम्हें साहस दे!"

शकुन— "तुम कितनी अच्छी हो ज्योति! तुम्हारे शब्दों में कितना साहस और स्नेह है। मैं तो पढ़ाने से ऊब सी चुकी हूँ, नौकरी क्या गुलामी है।"

ज्योति— "समय मनुष्य से सब कुछ करा लेता है। और समय भी वही कराता है जो हम करते हैं। दुनिया कर्मों के परिणाम को होनी कहती है।"

शकुन— "होनी हो कर ही रहती है।"

ज्योति— "जो होता है उसे भुगतने की शक्ति भी परमात्मा देता है।"

शकुन— "देखने जा रही हूँ कि होनी क्या करती है। कहीं चौधरी नौकरी से न छुड़ा दे।"

कहती हुई शकुन चल दी। गली पार कर वह धूमसिंह चौधरी की बड़ी हवेली में ऐसे पहुँची जैसे हृदय में घृणा होने पर भी कृत्रिम मुस्कान झलकती है। दर्वाज़े पर खड़े नौकर से उसने कहा— "चौधरी साहब से कहो शकुन आई है।"

गरीबा नौकर— "चलिये, चौधरी साहब बाट में बैठे हैं।"

मन में काँपती सी शकुन गरीबा के साथ घर में घुसी। चौधरी साहब पुराने ढंग के ठाठदार कमरे में शानदार मूढ़े पर विराजमान थे। वे इस प्रकार अकड़े बैठे थे मानो उन्हें कभी मरना ही नहीं है। "आइये बैठिये!" सामने पड़े मूढ़े की ओर संकेत करते हुए चौधरी ने कहा।

शकुन झिझकती सी बैठ गई। नौकर चला गया। चौधरी साहब की चोंच के बन्धन खुल गये। वे अपनी शान में तन कर बोले— "मुझे तुम से हमदर्दी है। मैं चाहता हूँ तुम्हें कोई तकलीफ न हो। तुम्हारी बदनामी फैलती जा रही है। तुम प्रभात से बातचीत करना बन्द कर दो। मैं अपने इसी मकान में तुम्हें एक कमरा दे दूँगा। यहाँ हर तरह की सहूलियत रहेगी। मुझे तुम अपना ही समझो।"

शकुन— "धन्यवाद आपका। आपकी जितनी कृपा है वही काफी है, और बोझ मैं नहीं सँभाल सकती। मेरे श्रम के मोती ही मेरे लिये सब कुछ हैं। वह झोंपड़ी ही मेरे लिये महल है जिसमें रहती हूँ। मैं आपके अहसानों को लेकर गरीबी की गरिमा नहीं बेच सकती।"

चौधरी साहब ने देखा कि शकुन मक्खन जैसी बातों पर नहीं फिसलने की, तो त्यौरी बदलते हुए बोले— "तो तुम प्रभात का साथ नहीं छोड़ोगी! वह तुम्हें कहीं का न छोड़ेगा।"

शकुन— "मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहती। मेरे व्यक्तिगत जीवन में आप क्यों पड़ते हैं? अपना भला बुरा मैं खूब समझने लगी हूँ, आप चिन्ता न करें।"

चौधरी— "चिन्ता मुझे नहीं तो किसे हो? स्कूल की बदनामी के मारे नाक में दम हो रहा है।"

शकुन— "इसमें बदनामी की तो कोई बात नहीं है। प्रभात साहित्यिक है, मुझे साहित्य से प्रेम है। प्रेम पाप तो नहीं चौधरी साहब! क्या दुनिया को हमारी चर्चा का ही काम है?"

चौधरी— "दुनिया चर्चा झूठी नहीं करती। तुम्हारी वजह से पाठशाला बदनाम होती जा रही है। मैंने तुम्हारी भलाई सोच कर तुम से यहाँ रहने को कहा था। सोचा था सब बदनामी दब जायेगी। पर तुम्हें तो उसने पागल बना रक्खा है। मैं तुम्हारी माँ के पास खबर भेजे देता हूँ कि अपनी लड़की को सँभालो।"

शकुन— "आप धनाढ्य हैं, आपके यहाँ अच्छी बुरी हर बात दब सकती है। निर्धन की ज़िन्दगी ही क्या! मुस्कान तो उसके अधरों पर उसे लज्जित करने को आती है।"

चौधरी— "तुम अपने को गरीब क्यों समझती हो, यहाँ आकर रहो, तुम्हें कोई कमी नहीं रहेगी। मैं तुम्हें ······"

शकुन— "ये आप कैसी बातें करते हैं! आप मुझ पर अधिक कृपा न कीजिये, मैं जाती हूँ।"

पुण्य कर रहे हैं आप! मार डालिये मुझे! मैं तंग आ गया हूँ जीवन से। ज़िन्दा रहते मेरे हरे घाव नहीं सूखेंगे। विकास ने बड़ा पाप किया जो मुझे फिर दुनिया में घसीट लाया।"

प्रभात के कहने में कुछ ऐसी करुणा थी कि मारने वालों के हाथ रुक गये। उनमें से एक ने कहा— "बस बहुत पिट चुका, अब बस करो!"

प्रभात— "नहीं, मारो, तब तक मारो जब तक मैं मर न जाऊँ।"

दूसरा गुण्डा— "मारेंगे और तब तक मारेंगे जब तक तू चौधरी साहब के रुपये नहीं देगा।"

प्रभात— "कैसे रुपये? क्या इस गाँव में झूठ भी सच होता है?"

गुण्डा— "झूठ सच नहीं, चौधरी साहब से तूने एक मास के वायदे से रुपये लिये थे और अब तक नहीं दिये।"

प्रभात— "यह सब झूठ है। मैंने चौधरी से कभी कोई दमड़ी नहीं ली। और तुम कहते हो एक मास पहिले लिये थे। अभी एक मास तो मुझे गाँव आये हुए भी नहीं हुआ।"

तीसरा गुण्डा— "क्यों चौधरी साहब! यह क्या बात है? एक महीना तो इसे यहाँ आये हुए भी नहीं हुआ।"

चौधरी— "अरे पहलवान! कभी कोई लेकर यह कहता है कि मैंने लिया है।"

दूसरा गुण्डा— "सच सच बताओ चौधरी साहब! हमने भी सैंकड़ों को देखा है पर ऐसी वीरता से कभी किसी को पिटते नहीं देखा। हम गुण्डे ज़रूर हैं पर झूठ सच की पहिचान भी रखते हैं। हमें तुम्हारी बात झूठ लग रही है।"

यह सुनते ही चौधरी साहब के मुँह का रंग उड़ गया। वे अन्दर से थर थर काँपने लगे पर ऊपर से साहस करके बोले— "मैं कोई झूठ कहता हूँ क्या ?"

प्रभात— "तुम्हें तो यह पता तक नहीं कि सच किसे कहते हैं। और झूठ भी बोलते हो तो ऐसा जो पैरों न चल सके।"

गुण्डा— "जान पड़ता है आज चौधरी ने एक निर्दोष को पिटवा दिया।"

चौधरी— "बड़े आये मुझे कहने वाले, तुम्हारी औक़ात ही क्या है। दस रुपये की शराब पिलाकर तुम से कुछ भी करालो।"

दूसरा गुण्डा— "होश की दवा करो चौधरी साहब! हम से तीन पाँच न लगाना।"

चौधरी— "क्या करोगे तुम मेरा? मेरे टुकड़े खाते हो और मुझ पर ही गुर्राते हो।"

तीसरा गुण्डा— "यह बात है तो ले" कहते हुए लट्ठ मारने को उठाया, पर तुरन्त ही उसका लट्ठ घायल प्रभात ने पकड़ लिया और धीमे स्वर में कहा— "ऐसा न करो, वह तो अपने कर्मों से आप मरा हुआ है, क्यों मुर्दे को मारते हो!"

गुण्डा— "देख दुष्ट! देवता ऐसे होते हैं। ऐसे महात्मा पर तूने हमारा हाथ उठवाया, तेरा अपराध क्षम्य नहीं है, पर महात्मा की बात माननी चाहिये इसलिये छोड़ते हैं। जा भाग जा यहाँ से, जल्दी भाग जा, कहीं क्रोध का पागलपन महात्मा का आदेश न भूल जाये।"

यह सुनते ही चौधरी जल्दी जल्दी क़दम बढ़ा मुँह बनाते हुए चल दिये। वे डर अवश्य रहे थे पर गुस्से से फुके जा रहे थे। मम मन में

शकुन— "जी चाहता है आपको अपने घर ले चलूँ और सेंकती रहूँ आपकी चोटें। पर गाँववाले .... "

प्रभात— "इतनी शीघ्र आवेश ठंडा हो गया। नहीं, तुम ठीक कहती हो, शीघ्रता शुभ नहीं होती। चलो, मुझे बापू की बैठक तक छोड़ कर घर चली जाना।"

ढलती हुई किरण सी शकुन के कन्धे पर हाथ धर लँगड़ाता हुआ प्रभात बापू के घर की ओर चल पड़ा, मानो राका की रमणीयता में टूटे फूटे प्रश्न और हल जा रहे हैं।

प्रभात ने प्रश्न किया— "क्या यही प्यार का परिणाम है ?"

शकुन ने सहारा देते हुए कहा— "हर परिणाम का एक नया प्रश्न खड़ा रहता है। चिता तक परिणाम का पता नहीं चलता।"

प्रभात— "इतने संघर्ष सहे कि अब शक्ति नहीं रही शकुन ! तुम में शक्ति है ?"

शकुन— "आवश्यकता शक्ति को जन्म दे देती है।"

प्रभात— "घर आगया शकुन !"

शकुन— "घर आगया, बटोही की इस मंज़िल पर कितनी मीठी छाया होती है।"

घर के दर्वाज़े पर शकुन ने क्षीण वाणी में आवाज़ दी— "बापू !"

बापू प्रभात की चिन्ता में पड़े पड़े स्वप्न देख रहे थे। धीमी आवाज़ ने उन्हें चौंका दिया, वे खाँसते हुए उठे और दर्वाज़ा खोला, स्वप्न भंग था और प्रभात सामने। "लेकिन यह क्या ! कहीं मैं स्वप्न ही तो नहीं देख रहा हूँ ! तुम्हारे सर से खून बह रहा है और ये .... ?"

सुनते ही शकुन हिचकियाँ भर भर रोने लगी। जब कोई अपना दिखाई देता है तो आँसू रोके से नहीं रुकते। उसे रोते देख बापू बोले— "अ! तू रो क्यों रही है बेटी! बात तो बता। क्या हुआ? कैसे चोट लगी? किसने क्या कहा? आखिर बात क्या है?"

प्रभात— "बात कुछ न पूछो बापू! अब मेरा इस गाँव में रहना ठीक नहीं, आप पर गाँव भर का तूफ़ान आ सकता है। समाज यथार्थ को आदर्श की कठोरता में देखना चाहता है, किन्तु यथार्थ भौतिक सत्य के अंक में रहता है। आदर्श के रंगीन पुजारी यथार्थ को धिक्कारते हैं।"

बापू— "मैं तुम्हारी पहेली नहीं समझा, साफ साफ कहो।"

प्रभात— "क्या तुम्हें भी हृदय की भाषा सुनाई नहीं देती बापू! मौन भाषा में जितना सत्य है ज़बान की भाषा उतनी शुद्ध नहीं होती।"

बापू— "समझा, आत्म तुष्टि का आधार ढूँढ लाये हो। दुःखों की जितनी वृद्धि होती है, इच्छाओं की सीमा भी उतनी ही बढ़ जाती है। किन्तु तुम इस गाँव को नहीं जानते प्रभात! यहाँ जो प्रेम करता है उसे गँडासे से काट डालते हैं। तुम्हारी बात बहुत बढ़ चुकी है, पर मुझसे जो कुछ हो सकेगा करूँगा। अच्छा, यह तो बताओ यह क्या हुआ? चोटें कैसे लगीं?"

शकुन— "उस चौधरी धूमसिंह की काली करतूत का यह नमूना है, वह इस गाँव का भला और बड़ा आदमी है न?"

बापू— "दुनिया में केवल स्वार्थ भला है और कोई भला नहीं। आज वह चौधरी धूमसिंह है, उसकी भलाई वे छोकरियाँ जानती हैं जिनसे वह भोली भोली बातें करता है। खेतों की पत्ती पत्ती उसकी बड़ाई करती हैं! लेकिन फिर भी उसका धन समाज में उसे सबसे ऊँचा आसन दिलाता है। कौन सी ऐसी सभा होती है जिसका वह सभापति नहीं बनता, कौन सी ऐसी संस्था है जो उसके इशारे पर नहीं नाचती?

शकुन— "नहीं, पूरी वूरी कुछ नहीं बनाइये। इतना समय नहीं है, मैं अब चली।"

कहती हुई शकुन चल पड़ी, प्रभात की आँखें फिर भर आईं, दर्वाज़े तक पहुँच कर शकुन ने एक बार फिर प्रभात को देखा, और फिर आँचल से आँसू पूँछती हुई जल्दी जल्दी पाठशाला की ओर चल दी।

प्रभात बुखार के ताप से तपे हुए लोहे सा खाट पर पड़ा पड़ा लाखों तूफानों में झूलने लगा। उसके मन ने बातों की झड़ी लगा दी— 'नौकरी कितनी कठोर होती है! शकुन भूखी चली गई। वह श्रम करती है, दुखी है, फिर भी संसार को संतोष नहीं। मुझे उससे प्रेम हो गया है, पर क्या केवल उसके शरीर से? नहीं, मुझे उसकी भावनाओं से प्रेम है, उसके दुःखों ने मेरे हृदय में दर्द पैदा किया है। अपनी भावुकता की प्रेरणा से मैं उसे चाहता हूँ! पर तू अपने अवलम्ब के लिये भी तो उसे चाहता है।'

दस बजे तक सब अपनी अपनी दिनचर्या में लगे रहे और प्रभात पड़ा पड़ा जीवन की आलोचना करता रहा। दस बजे बापू, विकास, गुलाब आदि सब प्रभात के पास बैठ गये। बैठे हुए दस पन्द्रह मिनट हुई होगी कि यशोधन कूदता हुआ आया और बोला— "रामपुर की दूकान वाले लाला जी आये हैं।"

"क्या सेठ धन्नोमल आये हैं?" कहते हुए हरिराम बापू उठ कर दर्वाज़े की ओर चले, और साथ ही चले गुलाब और विकास।

दर्वाज़े से स्वागत सत्कार करते हुए धन्नोमल को सब बड़े प्रेम से अन्दर लाये। सेठ जी को मूढ़े पर बिठाते हुए बापू ने कहा— "बहुत दिन में कृपा की आज।"

धन्नोमल— "कृपा क्या बापू! स्वार्थ खींच लाया है।"

बापू— "बताइये क्या सेवा करूँ आपकी ?"

धन्नोमल— "सेवा क्या, प्रार्थना है एक। मैं अपनी लड़की प्रेरणा का विवाह आपके विकास से करना चाहता हूँ।"

बापू— "बात तो ठीक रहेगी, मिली जुली रिश्तेदारी है, लड़की मेरी देखी हुई है ही, मुझे तो बिल्कुल आपत्ति नहीं, पर ज़रा गुलाब की माँ से भी पूछना आवश्यक है।"

धन्नोमल— "हाँ, परामर्श करलो। बात तय हो जाय तो मैं लड़का रोक दूँ और इसी लगन में विवाह हो जाय।"

बापू— "अच्छा तो मैं अभी घर में पूछ कर आता हूँ।" कहते हुए बापू घर में पहुँचे। गुलाब की माँ फूलवती चक्की चला रही थी। बापू पास पहुँच गये, पर फूलवती अपने चने पीसने की धुन में मस्त थी। उसने गुलाब के पिता जी को देखा तक नहीं। हरीराम ने दो तीन बार कहा— "अजी सुनती भी हो, सुनो तो!" तब कहीं चक्की की घरर घरर में फूलवती के कानों के दर्वाज़े खुले। उसने चक्की चलानी छोड़ स्वामी की ओर देखते हुए कहा— "क्या है, कहो।"

हरिराम— "बात क्या है, रामपुर से लाला धन्नोमल आये हैं, अपनी लड़की प्रेरणा की शादी विकास से करना चाहते हैं, रिश्ते की बातचीत करने आये हैं। क्या राय है तुम्हारी ?"

फूलवती कुछ देर के लिये चुप हो गई। वह सोचने लगी, गुलाब की तरह विकास भी उसे माँ कह कर पुकारता था। घर में रहते रहते फूलवती को विकास से पुत्रवत् प्रेम हो गया था, विकास के व्यवहार और श्रम ने उसे मोह लिया था। घर में फूलवती से सब से अच्छा व्यवहार आजकल विकास ही का था, वह घर में माँ की किसी इच्छा के प्रतिकूल नहीं चलता था। गुलाब चाहे फूलवती के पेट का था पर विकास के लिये भी उसके पास वैसा ही हृदय था।

वह अपने विचारों की सीमा में भ्रमण करके बहुत जल्दी लौट आई। प्रसन्नता और लालच में उछलते हुए हृदय से उसने कहा— "रिश्ता तो अच्छा है, पर विवाह में कितना रुपया लगायेंगे ? दहेज में कितना सोना देंगे ? पहिले पाँच हज़ार रुपये मिलाई में अवश्य लूँगी और पाँच हज़ार सगाई में। ये सब बातें ठहरा कर बात पक्की कर लो।"

हरिराम— "तो तुम्हारा मतलब यह है कि मैं उनसे सौदा करूँ।"

फूलवती— "इसमें सौदे की क्या बात है, यह तो आजकल का व्यवहार चल रहा है, सभी करते हैं। और मेरा विकास क्या ऐसा वैसा है ? हीरा है हीरा ! दीवा लेकर ढूँढेंगे तो ऐसा लड़का नहीं मिलेगा लाला साहब को।"

"भई, मेरा मुँह तो माँगने का पड़ता नहीं। तुम पर्दे में बैठ कर बातें कर लो।"

"हाँ, मैं बातें कर लूँगी, चलो !" कहती हुई फूलवती बैठक के बाहर चौक में पर्दे की आड़ लेकर बैठ गई। बापू गम्भीर मुद्रा से बैठक में पहुँच तकिये के सहारे पलंग पर जा बैठे।

धन्नोमल— "हाँ साहब ! क्या सम्मति है उनकी ?"

बापू— "बात सब ठीक है, पर ज़रा लेने देने की बात अवश्य है।"

धन्नोमल— "आप जैसे कहें मैं तैयार हूँ। मेरा अपना जो कुछ है वह सब आप ही का है, मेरे तो एक ही लड़की है, जो कुछ है वह सब आज भी उसका कल भी उसका। मैंने तो पहिले ही सोच रक्खा है कि विकास को सब कुछ सौंप दूँगा। आप सम्बन्ध स्वीकार कर लीजिये।"

बापू— "ज़रा दो मिनट ठहरें।" कहते हुए बापू दर्वाज़े के पास गये, और फूलवती से बोले— "क्या राय है तुम्हारी ?"

फूलवती— "बात बिल्कुल ठीक है, सम्बन्ध मान लो।"

बापू लौट कर पलंग पर बैठते हुए बोले— "अच्छा लाला धन्नोमल! बात पक्की है।"

धन्नोमल— "तो फाल्गुन शुक्ला छट का विवाह भी पक्का करिये, और परसों मैं सगाई भेज दूँगा।"

विकास— "नहीं बापू! मैं अभी विवाह नहीं कराऊँगा, प्रभात भैया की तबियत बहुत खराब चल रही है, जब तक प्रभात बिल्कुल ठीक न हो जाये, मैं यह सब कुछ नहीं सोच सकता।"

प्रभात— "मैं तो कल परसों तक बिल्कुल ठीक हो जाऊँगा विकास! मेरी इतनी चिन्ता न करो। विवाह होगा और मैं बारात में चलूँगा।"

धन्नोमल— "हाँ हाँ, तबियत ठीक हो जायेगी।"

बापू— "इसकी तबियत क्या ठीक होगी? इसके लिये कोई दवा संसारमें नहीं बनी। अच्छा लाला धन्नोमल! विवाह छट का ही पक्का रहा। अब आये दिन। पन्द्रह दिन बाकी हैं।"

विवाह की बात पक्की कर लाला धन्नोमल ने प्रसन्नता से रामपुर की राह इस प्रकार पकड़ी जिस प्रकार युगों से परतन्त्र देश स्वतन्त्रता की झनकार पकड़ता है। आज से पहिले वे ऐसे चलते थे जैसे मनों बोझ उनके सर पर धरा हो, और आज वे ऐसे चल रहे थे जैसे जीवन की सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गये। सचमुच लड़की भी पिता के लिये कितनी बड़ी चिन्ता होती है।

चिन्ता की मुक्ति में फूलते हुए वे घर आये। लक्ष्मी उत्सुकता से पति की प्रतीक्षा कर रही थी। धन्नोमल को देखते ही उसका हृदय उछलने लगा, वह मौन न रह सकी। भावुकता मुखर हुई और लक्ष्मी ने कहा— "क्या रहा?"

धन्नोमल— "सब ठीक है। छुट का विवाह भी पक्का कर आया, परसों सगाई जायेगी। पाँच हज़ार रुपये सगाई में भेजने होंगे!"

लक्ष्मी— "पाँच हज़ार की क्या बात है? लोग तो लाख लाख रुपये की सगाई भेजते हैं। आपने परसों अखबार में नहीं पढ़ा, उत्तर प्रदेश के एक मिनिस्टर ने दो लाख रुपये दहेज में दिये हैं।"

धन्नोमल— "बड़े आदमियों की बड़ी बातें होती हैं। ग़रीब की दुनिया, दुनिया नहीं होती पगली! अभी दस ही वर्ष की तो बात है जब हम एक एक वक्त खा कर काटते थे, तब सब हमें चोर और बेईमान समझते थे, आज भगवान की दया से चार पैसे पल्ले हैं तो हमारे सारे पुराने पाप ढक गये।"

लक्ष्मी— "छोड़ो इन बातों को, प्रेरणा आ रही है।"

प्रेरणा सहेली के घर से बुनना सीख कर आ रही थी। आते ही उसने माँ से कहा— "माँ! विकास अभी तक गाँव से नहीं आये, दो दिन हो गये उन्हें गये, कुछ खबर भी नहीं आई।"

लक्ष्मी— "प्रेरणा! विकास के साथ तेरी शादी की बात पक्की हो गई है।"

माँ के उत्तर में प्रेरणा के सारे उत्तर मिल गये। वह प्रसन्नता से उछल और लज्जा से शर्माती हुई दूसरे कमरे में चली गई। अब तक वह गुड्डे गुड़ियों से खेलती थी, अब जीवन का नया खेल खेलेगी। उससे न रहा गया। वह दौड़ती हुई अपनी सखी सुमति के पास पहुँची। उसे बहुत प्रसन्न देख सुमति ने पूछा— "आज क्या बात है प्रेरणा! जो फूली नहीं समाती? तू तो ऐसे फूटी पड़ रही है जैसे चाँद को देख कर प्यार की रात खिल जाती है।"

प्रेरणा— "सचमुच ऐसी ही बात है सुमति! विकास से मेरा विवाह पक्का हो गया, पिता जी ने छुट की शादी भी निश्चित कर ली है। अब तक तेरा गुड्डा और मेरी गुड़िया होती थी। आज मैं गुड़िया बनूँगी, और गुड्डा ...... ।"

सुमति— "यह खेल गुड्डे गुड़िया का नहीं है, जीवन का खेल है पगली!"

प्रेरणा— "जीवन में तो सब खेल ही खेलते हैं सुमति! कोई कैसा खेल खेलता है, कोई कैसा!"

सुमति— "सखी! जीवन का खेल सरल नहीं होता, लोहे के चने चबाने पड़ते हैं, तभी जीवन जीवन कहलाता है, मैंने राम और कृष्ण की कथाओं में यही तो पढ़ा है।"

सुमति की माँ चन्द्रमणि भी दोनों की बातों के बीच आ टपकी। सुमति ने कहा— "माँ! प्रेरणा का विवाह होने वाला है।"

चन्द्रमणि— "कहाँ बात ठहरी प्रेरणा?"

प्रेरणा शर्मा कर मौन हो गई। सुमति ने कहा— "विकास के साथ विवाह होगा।"

चन्द्रमणि— "क्या उसी विकास से जो इनकी दूकान पर काम करता था, और इनके घर आता जाता रहता था।"

सुमति— "हाँ माँ! उसी विकास से, बड़ा अच्छा है।"

चन्द्रमणि— "घर आता जाता था, अब तो अच्छा है ही। न जाति का पता न बाप का, बापू हरिराम के घर कहीं से आकर रहने लगा है। और विवाह कब का है?"

सुमति— "छुट का।"

चन्द्रमणि— "इतनी जल्दी विवाह की तिथि भी रख दी, अवश्य कुछ दाल में काला है।"

कहती हुई चन्द्रमणि ढिँढोरा पीटने पड़ोसिन के घर चली गई। प्रेरणा यद्यपि अभी दुनियादारी की बातें पूरी तरह नहीं समझती थी, पर उसके मन और मस्तिष्क में तूफ़ान की लहर सी आ गई। विवाह के चाव में तूफान की लहर इसी तरह मिट गई जिस तरह नाव क्षीण रेखा बनाती हुई आगे बढ़ती है और लहरें रेखा मिटा डालती हैं। प्रेम से सुमति के कण्ठ में बाँहें डाल मस्ती में कहने लगी— "कल सगाई जायेगी सखी! तुझे सवेरे सवेरे हमारे घर आना होगा। अच्छा, अब मैं चली, माँ बाट देख रही होंगी।"

घर आकर प्रेरणा माँ से सट कर बैठ गई। माँ प्रेम से बेटी की ओर देखती हुई बोली— "मेरी चाँद सी बिटिया! अब तू पराई हो जायेगी। बेटी का धन भी ऋण की तरह ही होता है। माँ बाप तो इस धन के केवल चौकीदार ही होते हैं। अपनी आबरू की तरह बेटी को बड़ी सँभाल कर रक्खा जाता है। जन्म देना, पढ़ाना सिखाना माँ बाप का धर्म ही नहीं, अपनी लाज की निर्लज्जता के सामने रक्षा भी करनी है, यही कारण है कि हम अपना पूरा कर्त्तव्य न निभा सके। माँ बाप अपनी औलाद सुखी देखना चाहते हैं। सुख के लिये सब से बड़ी आवश्यकता शिक्षा की है, लेकिन दुःख है कि हम तुझे पूरी शिक्षा न दिला सके।"

प्रेरणा— "मैं कम कैसे पढ़ी हूँ माँ! जब से मैं पैदा हुई हूँ तब से आज तक तो तुम मुझे पढ़ाती रही हो। सिलाई सिखाई तुमने, घर का काम करना सिखाया, कातना बुनना सिखाया, रामायण और गीता रोज़ पढ़ाती हो, हाँ यह अवश्य है कि मैं किसी कालिज में नहीं पढ़ी, सो कोई मुझे मेम थोड़ी बनना था। मैं तो एक आदर्श बनना चाहती हूँ।"

लक्ष्मी— "अच्छा प्रेरणा! जा तू अपना कालीन बुन ले। मैं सगाई के लिये चन्द्रमणि के घर कहने जा रही हूँ।"

प्रेरणा— "नहीं माँ! तुम वहाँ न जाओ, सुमति सबेरे आयेगी, मैंने उससे कह दिया है, पर सुमति की माँ चन्द्रमणि शायद सबेरे न आये, वे विकास के साथ मेरे विवाह की बात सुन कर नाराज़ हो रही थीं। कहती थीं कि 'लड़के के माँ बाप नहीं हैं, रोज़ घर पर आता था, ज़रूर कुछ दाल में काला है।' "

'दाल में काला है' इस बात ने लक्ष्मी को कँपा दिया। उसके मन और मस्तिष्क में तूफान पर तूफ़ान आने लगे। वह सोच में पड़ गई। पर सबेरे सगाई जायेगी इसलिये वह काम धन्धे में लगी ही रही।

कल सबेरे दस बजे सगाई जायेगी। घर घर में नायन निमन्त्रण दे आई, और साथ ही ज़बान ज़बान पर चर्चा छा गई— "धन्नोमल की लड़की प्रेरणा की शादी उससे होगी जिस की जाति का पता नहीं, जिसके बाप का पता नहीं, जो हरिराम बापू के टुकड़ों पर पलता है, उसने सारी वैश्य जाति की नाक कटवा दी, धन्नोमल ने दूसरी जाति के लड़के से अपनी लड़की का रिश्ता क्यों किया। उसका जाति बहिष्कार कर देना चाहिये, उसके यहाँ सगाई में शामिल नहीं होना चाहिये। कोई नहीं जायेगा, कोई नहीं जायेगा।"

"सगाई में शामिल नहीं होना चाहिये। सगाई में कोई नहीं जायेगा।" और फिर सबेरे सगाई में कोई पहुँचा भी नहीं।

साढ़े दस बज गये और लाला धन्नोमल के घर कोई नहीं आया। लक्ष्मी ने चिन्ताग्रस्त मुद्रा में कहा— "अब क्या होगा?"

धन्नोमल— "होगा क्या, जाति बहिष्कार, हम जाति से निकाल दिये जायेंगे। हमने अन्तर्जातीय विवाह निश्चित किया है न? ये

समाज के ठेकेदार जो अपने व्यक्तिगत जीवन के सत्य को कृत्रिमता और अहंकार के आँचल में छिपाये रहते हैं, मेरा तिरस्कार नहीं कर रहे अपितु अपनी जाति की चिता तैयार कर रहे हैं। वह जाति विकास नहीं करती जो रुके हुए जल की तरह ज़मीन के गढ़े में क़ैद रहती है। यह क्या, लक्ष्मी! तुम रो क्यों रही हो? तुम्हारी लड़की का विवाह होगा और विकास ही से होगा। विकास में किस बात की कमी है, वह सब तरह से सुयोग्य है। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये कि तुम्हारी प्रेरणा को ऐसा सुन्दर वर मिला!"

लक्ष्मी—"मेरी प्रसन्नता पर समाज की कठोरता का प्रहार हो रहा है। तनिक सोचिये तो सही, क्या बीतेगी। विवाह में कोई भी नहीं आयेगा। सगाई जाने को ग्यारह बज गये पर अभी तक नाई का भी पता नहीं, सगाई तो भिजवाइये किसी तरह।"

धन्नोमल—"देखो, नाई को में देखने जाता हूँ। जाने वह भी कहाँ रुक गया। गया था बुलावे देने और अभी तक पता नहीं!" कहते हुए धन्नोमल नाई को ढूँढने चल दिये।

धन्नोमल नाई के घर की तरफ़ क़दम बढ़ाये चले जा रहे थे। वे सौ दो सौ क़दम ही गये होंगे कि रामपुर के दस बारह समाज के चौधरी नाई को घेरे भाषणों की प्रलय मचा रहे थे। लाला धन्नोमल राम राम कर हाथ जोड़ सबके सामने खड़े होकर बोले— "प्रेरणा की सगाई जा रही है, आप सब चलिये!"

एक चौधरी—"तुम्हें लज्जा नहीं आती धन्नोमल! हमसे कहते हुए।"

धन्नोमल—"मुझे लज्जा क्यों आनी चाहिये, सोचना तो आपको चाहिये।"

दूसरा चौधरी— "उसकी जाति का पता नहीं, और तुम उससे अपनी लड़की की शादी करने चले हो।"

धन्नोमल— "जाति का पता कैसे नहीं, वह मनुष्य जाति का है और हिन्दू है।"

तीसरा चौधरी— "हिन्दू है! चमार, चूढ़े, भंगी सब हिन्दू ही तो हैं! संसार में जितने आदमी रहते हैं वे सब मनुष्य जाति के ही तो हैं! आया है हमें लैक्चर देने! जाओ, हम सबने तुम्हारा जाति बहिष्कार कर दिया। हममें से कोई तेरे यहाँ नहीं आयेगा। बुलाले अपने चूढ़े, चमार और भंगियों को! बुला भेज उन मनुष्यों को जिन पर तुझे घमण्ड है!"

धन्नोमल— "चौधरियो! तुम समाज के ठेकेदार हो, जिसे चाहो उसे सता सकते हो। तुम्हारी बात बड़ी है। उस बड़ी बात में बड़े बड़े चन्दे छिप जाते हैं, बड़े बड़े कुकर्मों का पता नहीं चलता। तुम भंगी, चूढ़े और चमारों से चिढ़ते हो, क्योंकि वे अशिक्षित हैं, और तुम नियामक, पर हैं वे भी मनुष्य ही। तुम यदि उन्हें अपनी शक्ति समझते तो जीवन के सत्य पर चलते। पर तुम उन्हें गुलाम बना मूँछें पैनाते हो! वे बहुत अधिक सेवा करते हैं इसलिये तुम उन्हें बहुत अधिक घृणित मानते हो! खैर चौधरियो! न चलो, लेकिन यह विवाह होगा ही।"

सब चौधरी— "और तेरा हुक्का-पानी भी बन्द होगा।"

धन्नोमल ने इस इच्छा से नाई की तरफ देखा कि सगाई दे आओ, पर नाई चौधरियों की तरफ देखकर मौन खड़ा रह गया। उसकी बन्दी वाणी और धन्नोमल की उस पर कृपाओं के आभार ने मौन भाषा में कहा— "मैं तो तैयार हूँ सेठ जी! पर ये मुझे बांधे खड़े हैं।"

धन्नोमल दो चार पल सबकी तरफ देखते रहे, और फिर अपने हृदय से बातें करते हुए घर आ गये।

कह रहे थे 'भूगतूगा तुम्हें भी।' जब काफी दूर निकल गये तो चिल्ला कर कहा— "देखूँगा तुम्हें।"

एक गुण्डा— "जा, खून लगाकर थाने में रिपोर्ट लिखवा आ, जा।" और फिर प्रभात की तरफ देखते हुए कहा— "बहुत चोट लगी है आपके। क्षमा कर दीजिये हमें, हमने बड़ा पाप किया है।"

दूसरा गुण्डा— "अरे, इन विचारी का मुँह तो खोलो।"

मुँह खुलते ही शकुन दौड़ कर घायल प्रभात का सर सहलाने लगी। उसने रोते रोते कहा— "मैं बड़ी पापिन हूँ। मेरी ही कारण आपकी यह दशा हुई।"

प्रभात— "पाप केवल कल्पना है शकुन! तुम दुखी क्यों होती हो। संसार सता कर जितना सिखाता है उतना हँसा कर नहीं।"

गुण्डे— "नहीं, दोष आपका नहीं, दोष तो हम जैसे नीच गुण्डों का है।"

शकुन— "उठो प्रभात! चलो इस गाँव को छोड़ कर कहीं दूर चलें।"

प्रभात— "जीवन में जहाँ भी जायेंगे वहीं दुनिया है, दुनिया को छोड़ कर कहाँ जायेंगे? और मैं उठूँ कैसे! उठा ही नहीं जाता, जान पड़ता है शायद पैर की हड्डी टूट गई।"

गुण्डे— "हमें क्षमा कर दीजिये, आपके आँसुओं से हम ज़मीन में गड़े जा रहे हैं।"

प्रभात— "आप बिल्कुल न सोचें, आपने कुछ भी नहीं किया है, ये चोटें तो मास दो मास की हैं, ठीक हो ही जायेंगी। इस दुनिया में तो ऐसे पत्थर भी पड़े हैं जो दिल तोड़ देते हैं, जो मनुष्य से पाप कराते

हैं। तुमने चोट नहीं मारी, चोट का मरहम बताया है। हृदय में वे घाव भी होते हैं जिनका मरहम मालूम होते हुए भी नहीं मिलता।"

गुण्डे— "आप कितने भले हैं! आपने हमारे जीवन में परिवर्तन ला दिया। जो बात हम में छः छः वर्ष की कठोर जेल से नहीं आई वह आज आप से आ गई। अब हम ये पाशविक कार्य नहीं करेंगे। श्रम से जीवन का आनन्द भोगेंगे।"

प्रभात— "ईश्वर क्षमा नहीं करता, क्षमा के पथ की प्रेरणा देता है। आत्मा की सच्ची आवाज़ सत्य सिखा देता है।"

जो जितना बुरा होता है वह उतना अच्छा भी होता है। पाप की मार्मिक चोट चेतना देती है। तीनों आदमी आत्मग्लानि की आग में कुविचारों को जलाते हुए चल दिये।

प्रभात जाते हुए उन आदमियों को भावुकता से देखता रहा, और फिर आलोचना में उलझा हुआ बोला— "दुनिया में बुरे बुरे हैं या अच्छे बुरे हैं? बुरे बदल कर मनुष्य बन जाते हैं और अच्छे और बड़े बनने की इच्छा में सत्य को छिपाते हैं। ये बदल गये पर वे नहीं बदलेंगे।"

शकुन— "मैं तुम से दूर रह नहीं सकती और पास दुनिया नहीं रहने देती। फूँक दो उस समाज को जिसे न हँसना अच्छा लगता है न रोना। उस सम्मान की रक्षा भी किस काम की जो अपनी हत्या कर दे। समाज की कुत्सित भावनाओं में आग लगाकर आगे बढ़ना होगा, तभी दुनिया बदलेगी।"

प्रभात— "न जाने कितने बदलते बदलते मर गये, पर दुनिया तो बदली नहीं, शायद यह बदलेगी भी नहीं। अच्छा अब चलो, चोटें चीस रही हैं।"

Third rate book

घर आकर धन्नोमल ने सगाई के सामान की गाँठ बाँधी, और स्वयम् सगाई लेकर चल पड़े। लक्ष्मी अपने पति को सगाई ले जाते देख आँचल से आँसू पूँछती हुई मौन खड़ी रही तथा हँसते रहे सर पर सगाई की गठरी ले जाते हुए धन्नोमल को देख कर दुनिया वाले।

"बेटी का ब्याह! कितना कठोर है यह सत्य!" चलते हुए धन्नोमल ने लम्बी श्वास ले कर अपने आप से कहा।

पसीनों में तर धन्नोमल लगभग एक बजे सगाई लेकर सेवाग्राम पहुँचे। तपोधन तथा यशोधन ने उन्हें दूर ही से देख चिल्लाना शुरू किया, 'सगाई आ गई! सगाई आ गई!' खुशी में उछलते हुए दोनों अन्दर पहुँचे। देखते ही देखते धन्नोमल दर्वाज़े पर आ पहुँचे। धन्नोमल को सगाई की परात सर पर धरे देख बापू के आश्चर्य की सीमा न रही। बापू के घर सगाई में आये हुए लोग भिन्न भिन्न भावनाओं से देखने लगे। गुलाब ने लपककर सगाई की परात धन्नोमल के सिर से उतारी। धन्नोमल एक तरफ को दूसरे कमरे में जा बैठे। इसी कमरे में एक खाट पर प्रभात बीमार पड़ा था।

तरह तरह की शंकाओं में सगाई का काम सम्पन्न हो गया। समझदार बापू ने सब सकुशल ठीक कर लिया। किसी पर कोई सन्देहात्मक बात प्रकट नहीं हुई।

"सगाई बहुत अच्छी आई! बहुत दिया बेचारे ने!" कहते हुए दर्शकगण अपने अपने स्थान पर चले गये।

जब सगाई से निवृत्त हो गये तो बापू धन्नोमल के पास प्रभात वाले कमरे में आये। विकास भी वहीं आ बैठा।

"क्या हाल है प्रभात का?" धन्नोमल ने मन का वेग छिपा सहानुभूति के शब्दों में पूछा।

बापू— "बुखार तो अब है नहीं, पर उठा नहीं जाता प्रभात से। और आप तो सुनाइये, क्या बात है? आप को कष्ट क्यों उठाना पड़ा?"

धन्नोमल अब तक अपने वेग को ज़बरदस्ती रोक रहे थे पर अब वह न रुक सका। उनके आँसू निकल ही पड़े। रोते हुए उन्होंने कहा—"कुछ न पूछो बापू! रामपुर वालों ने हमारा जाति-बहिष्कार कर दिया क्योंकि मैंने विकास से प्रेरणा की बात तय कर दी। वे कहते हैं विकास अनाथ है, उसकी जाति का पता नहीं, वह दूसरों के टुकड़ों पर पलता है, तथा साथ ही कहते हैं विकास प्रेरणा के पास पहिले से आता जाता था।"

बापू— "कहने वालों को कहने दो, तुम अपना काम किये जाओ! दुनिया भौंका ही करती है, आप शान्ति रक्खें, किसी बात की चिन्ता न करें। बरात में हम केवल पाँच आदमी ही आयेंगे। किसी आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं, जाति-बहिष्कार करके समाज को अपनी नाक लम्बी कर लेने दो। समाज सिकुड़ता है तो सिकुड़ने दो, व्यक्ति में सिकुड़न नहीं आनी चाहिये। व्यक्ति किसी न किसी दिन समाज की दुर्गन्ध भस्म कर ही देगा।"

विकास— "वाह! तुमने वही कह दिया जो मैं कहना चाहता था। तुम जैसे मनुष्य ही तो देवता हैं बापू! न जाने मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार क्यों करता है?"

धन्नोमल— "मुझे आज्ञा हो तो मैं जाऊँ बापू!"

बापू— "हाँ, आप जायें। सुबह से भूखे प्यासे होंगे, इस गाँव का पानी तो अब आप पीते ही नहीं।"

धन्नोमल— "बेटी वाले के लिये तो बेटी का ब्याह ही पानी है।"

विकास— "पानी तो पी लेना चाहिये, अब तो यह सब ढकोसला अच्छा नहीं लगता।"

धन्नोमल— "जो प्रथा चल पड़ती है उसे छोड़ने में देर लगती है।"

कहते हुए धन्नोमल उठे, और बोझ उतार कर घर जाते हुए मज़दूर की तरह रामपुर की राह पर चल पड़े।

प्रभात पड़ा पड़ा यह सब सुन रहा था और लिख रहा था मन ही मन में अनेकों कहानियाँ। "दुनिया कैसी विचित्र है! कुछ समझ में नहीं आता। पाप की जड़ व्यक्ति है या समाज? निर्धन और कमज़ोर की तो दुनिया में कुछ ज़िन्दगी ही नहीं! ज़िन्दगी उसी की है जो संघर्षों में जूझता रहे।"

प्रभात प्रश्न और हल ढूँढ कर निकालता था पर हल फिर प्रश्नों में बदल जाते थे। वह उलझनें जितनी सुलझाता उतनी ही उलझनें उसे घेर लेती थीं। समस्याओं के बीच बीच में उसकी मानसिक स्मृति जागती और वह पीड़ा से कौंध उठता था। वह मानसिक बातों में इतना व्यस्त था कि दूसरा कोई अपरिचित यदि उससे बातें करे तो समझे कि या तो यह बहुत अहंकारी है या पागल!

सहसा विकास ने उसका पागलपन तोड़ा। अपनेपन का प्रभाव डालते हुए उसने कहा— "क्यों तुमने अपना जीवन भार बना लिया है? देखते नहीं, तुम्हारे कारण बापू का जीवन भी संकट में पड़ने को है। सारे गाँव में तुम्हारी और शकुन की चर्चा फैल गई है। ये सब ऊटपटाँग बातें छोड़ो, शीघ्र ही स्वस्थ होकर उठ खड़े होओ, और कर्मवीर की तरह आगे बढ़ो! क्या ये प्रेम प्रेम चिल्लाते रहते हो हर वक्त!"

प्रभात— "मुझे दुःख है कि तुम भी मुझे नहीं समझ सके। चौबीस घण्टों में जो स्वप्न या नींद के घण्टे होते हैं उनमें भी मैं जागता ही रहता हूँ। प्रेम को पागलपन कहकर उसका अपमान मत करो विकास!"

विकास— "पर प्रेम का अर्थ यह तो नहीं जो तुम्हारी भाषा में है। तुम्हारा केन्द्र करुणा थी, पर अब तुम शकुन के पीछे पागल हो। यह प्रेम है या वासना ?"

प्रभात— "करुणा को मैं भूला नहीं हूँ। मेरे जीवन का प्रत्येक पल उसकी स्मृति का आकार है। दुनिया मेरा रोना देख कर हँसती थी इस लिये अब मैं दुनिया को अपने आँसू नहीं दिखाता। पीड़ा अब अतल है, अतः वह दिखाई नहीं देती। पीड़ा कौंधती है और जग में जीना पड़ता है। यह विडम्बना विचित्रताओं से भरी हुई है। वासना तथा मोह क्या जीवन के सत्य में शामिल नहीं ? प्रेम निराकार का उपासक है, यह भी दार्शनिकों की भाषा मात्र ही है। और यह भी कल्पना ही है कि प्रेम प्रतिकार नहीं चाहता। जब तक जीवन है तब तक आकांक्षायें पीछा नहीं छोड़तीं। और जब हृदय में तड़प होती है, मनुष्य असहाय हो जाता है। वह कभी कभी दार्शनिक सत्य से भटक पाप के सत्य से शान्ति चाहता है। अतः जितना वह पापों की गहराई में घुसता है उतना ही उसे जीवन का सत्य मिलता है। पाप में मनुष्य खोता ही नहीं, पाता भी है।"

विकास— "तुम बहुत कुछ जानते हो प्रभात ! फिर भी बालक की तरह बहके बहके से क्यों रहते हो ?"

प्रभात— "क्योंकि उसमें खिलौने की चाह रहती है ! संसार में मनुष्य जो कुछ करता है वह भूल भी है और खिलौना भी।"

विकास— "क्या शकुन से तुम्हारा प्रेम भी खेल ही है ?"

प्रभात— "हाँ। यह ज़िन्दगी का खेल ही है। जीवन का अच्छा और बुरा हर खेल स्वाभाविक है। जो स्वाभाविक नहीं होता वह होता ही नहीं, अनुभूति तभी होती है जब मनुष्य स्वयम् उस स्थिति में आ जाये। मेरा

हृदय और आँखें शकुन की प्रतीक्षा में रहती हैं, क्यों ? यह मैं कुछ नहीं जानता। कल तीन बजे वह आने को थी, पर परिस्थितियों की विवशता ने उसे न आने दिया। ज्योति के हाथ जो उसने पत्र भेजा है उससे उसकी विपत्तियों का पता चलता है। यह सब जीवन को खिलाने के लिये ही तो हो रहा है।"

बातें हो ही रही थीं कि ज्योति कुछ परेशान सी आई। विकास को देख वह जितनी शीघ्र अपने मन की बात कहना चाहती थी, न कह सकी। विकास समझदार था। पर ज्योति के सौन्दर्य ने उसे जाने न दिया। वह कुछ देर बातों की लड़ी में रुका रहा। कुछ देर बाद वह एक प्रश्न सा चला गया।

जब विकास चला गया तो ज्योति ने प्रभात से कहा— "शकुन को नौकरी से जवाब मिल गया है। उसकी बदनामी इस सीमा तक कर दी गई है कि सरलता से कहीं नौकरी मिलनी सम्भव नहीं। उसका जो कुछ ज़ेवर कपड़ा था उस सब पर माँ बाप और सुसराल वालों ने अधिकार कर लिया है। चौधरी धूमसिंह ने माँ को बहका कर शकुन को हर सहारे से वंचित कर दिया है। आज हर एक की ज़बान पर तुम्हारे और शकुन के नाम की चर्चा है। शकुन अब तुमसे मिल भी नहीं सकती, वह समाज के कठोर तालों में बन्द है।"

प्रभात— "वे ताले तोड़ने ही होंगे, जिनमें निर्दोषों को बन्दी बनाया जाता है। मैं तुमसे एक भीख माँगता हूँ ज्योति ! बोलो !"

ज्योति— "कैसी बातें कर रहे हैं आप ! अरे आप तो रोने लगे। इतना मन छोटा करने से काम नहीं चलेगा। मैं चाहे किसी आपत्ति में फँसू पर आप दोनों की सेवा से मुँह नहीं मोड़ूँगी।"

प्रभात— "तो तुम शकुन का ध्यान रखना, उसे जहाँ तक हो कष्टों

से बचाना। मैं भी शकुन के लिये समाज से संघर्ष करने में शायद हार जाऊँ, क्योंकि मैं जीत जीत कर भी हारा हुआ हूँ।"

ज्योति— "अच्छा, मैं जाती हूँ। सगाई में आने के बहाने से आज तो आने में कुछ कठिनता नहीं हुई, पर रोज़ रोज़ आने में डर है। कुछ भी हो, मैं जान पर खेल कर भी आपकी मदद करूँगी। समाज का अर्थ सताना नहीं होता।"

कहती हुई ज्योति दर्वाज़े से बाहर निकली। जब तक वह आँखों से ओझल न हो गई, बाहर टहलता हुआ विकास उसे बराबर देखता रहा। मन ही मन में उसने कहा— "यह स्त्री है या शक्ति? कितनी फुर्ती है इसमें! कितनी सुन्दर है यह! कितनी भावुकता और पवित्रता है इसमें! कितनी मधुर है यह! दुखी के प्रति कितनी दया है इसमें, और कितनी सौम्यता भी!"

मन ही मन में ज्योति की प्रशंसा करता हुआ विकास प्रभात के पास आ पहुँचा। अपने मन के यथार्थ को आदर्श के कठोर सत्य में छिपा उसने कहा— "मेरा विवाह होगा अब तो, तुम जल्दी ठीक हो जाओ। क्या तुम मेरे आनन्द में शामिल नहीं होओगे?"

प्रभात ने सारी पीड़ा छिपा व्यवहारिक रीति से मुस्करा कर कहा— "क्यों नहीं शामिल होऊँगा? वाह! ऐसे अवसर पर क्या मैं चूकने वाला हूँ।" वह और भी कुछ कहना चाहता था पर भावुकता उमड़ आई, उसका कंठ रुँध गया।

विकास हृदय की स्थिति पहिचान गया। ज्योति ने क्या कहा, वह यह पूछना चाहता था, पर प्रभात को उस वातावरण में न लाने के लिये चर्चा नहीं छेड़ी। वह मौन ही रहा, पर मनुष्य मौन भी कुछ न कुछ सोचता ही रहता है।

'क्या शकुन सचमुच अपराधिनी है ? क्या अबला होना अपराध है ? हाँ अपराध है, इसलिये कि वह अत्याचार का मुक़ाबला नहीं कर सकती। अपनी शक्ति भर कौन यत्न करने में चूकता है, और फिर दोष भी तो सब दूसरे का ही देखते हैं। हर व्यक्ति दूसरे को आदर्श देखना चाहता है। समाज तपस्या की कल्पनायें करता है। वह अपने भाषणों में तपस्वी बनने के उपदेश देता है। पर क्या वस्तुतः यह यथार्थ भी है ? शकुन दुखी है, अकेली आँसू पूछती रहती है, उसे सम्बल चाहिये, और प्रभात ! वह भावुक है, प्रेम उसके जीवन का लक्ष्य है, आँसुओं की लड़ियों में बँधी हुई प्यार की दो मीठी बातें उसे बाँध लेती हैं, तो फिर इसमें बुरा क्या हुआ ! समाज का बिगड़ता क्या है !'

प्रभात के पास बैठा विकास मन ही मन में बातें कर रहा था, बापू ने आकर ध्यान बदल दिया, उसकी भावुकता गम्भीरता में बदल गई।

कुछ सँभल कर उसने कहा— "बापू ! प्रभात का जीवन भी कैसा अस्त व्यस्त हो रहा है, न खाता है न पहिनता है, पागल जैसी दशा बना ली है अपनी।"

बापू— "जब तक समाज की व्यवस्था ठीक नहीं होगी ये पाप होते ही रहेंगे। विचारों के विस्तार के इस युग में यदि हम संकुचित दुनिया में माला जपना चाहें तो व्यक्ति के पापों का बोझ समाज को ढोना पड़ेगा, क्योंकि वही व्यक्ति को अपने सत्य की परिभाषा में पाप के लिये विवश करता है।"

विकास— "विवशता नहीं, हार कहो बापू ! मैं विवशता को हार मानता हूँ। जीवन आदर्श की कठोरता में नहीं रहता, यथार्थ की स्वाभाविकता में रहता है। समाज यदि मनुष्य को भगवान बनाना चाहता है तो उसे दुनिया से दूर डेरा डालना चाहिये।"

बापू— "ये सब बातें विवाह के बाद विचारना, तुम्हारा ब्याह भी एक समस्या बन गया है विकास! मुझे बड़ी चिन्ता बनी रहती है। सारा गाँव हमारा विरोधी बन गया है। उधर लाला धन्नोमल का भी रामपुर वालों ने जाति बहिष्कार कर दिया। बात यहीं तक नहीं है, लोग दुश्मनी पर उतर आये हैं। गाँव में निकलना बड़ना दुर्भर हो गया है, जिधर देखो उधर हमारी ही चर्चा। गुलाब की माँ भी सुनते सुनते थक गई, वह हर वक्त मुझे बुरा भला कहती है, उसका इरादा तो यहाँ तक है कि विकास का विवाह धन्नोमल की लड़की प्रेरणा से न किया जाये, वह जाति से निकाल दिया गया इसलिये सगाई वापिस कर दी जाये।"

यह सुनते ही विकास की आँखें लाल हो गईं, वह काँपने लगा, प्रभात के सामने भी नयी तस्वीर हुंकार उठी। विकास ने काँपती हुई वाणी में कहा— "बापू! चाहे कुछ भी हो पर विवाह धन्नोमल की लड़की प्रेरणा से ही होगा। कल तक सब धन्नोमल के चरण चूमते थे, कल तक बापू बहुत अच्छे थे, आज वे बहुत बुरे हो गये। इसलिये कि उन्होंने विकास को अपना लिया, धन्नोमल का जाति बहिष्कार इसलिये हुआ कि उन्होंने विकास से अपनी प्रेरणा की बात पक्की कर दी। और अब विकास भी उनका बहिष्कार कर दे, क्या यह मनुष्यता है?"

प्रभात— "यह शादी होगी और निश्चित होगी, यदि विधाता भी अपने नियमों का खाता लेकर बीच में बाधा डालेगा तो भी हम दोनों की लाश पर ही उसकी विजय हो सकेगी। विश्वासघात अत्याचार है, कुछ भी हो पर मेरे पाप का फल आप या धन्नोमल नहीं भोग सकते। रामपुर वाले धन्नोमल की इज़्ज़त के छीछड़े बिखेर रहे हैं, हमारे कारण उन्हें यह दिन देखना पड़ा और अब हम ही उन पर धूल फेंकें! यह नहीं हो सकता! यह मनुष्यता नहीं है।"

बापू— "मनुष्यता नहीं है यह तो मैं भी मानता हूँ, पर जो तूफान उठ खड़े हुए हैं उन्हें कैसे दबायें?"

विकास— "हाथ जोड़ने से दुनिया नहीं मानती, वह शक्ति के सामने झुकती है। मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ बापू। वचन दो मान लोगे।"

बापू— "मैं तुम्हारे लिये अपनी जान भी दे सकता हूँ।"

विकास— "तो आप हमें अपने घर से चले जाने की आज्ञा दे दीजिये। हम हृदय से सदैव आपके आभारी रहेंगे, आपको कभी नहीं भूलेंगे बापू! आपने हमारी बड़ी सहायता की, अब गाँव में आपके सब शत्रु ही शत्रु हो गये हैं। हम चले जायेंगे तो आपका विरोध मिट जायेगा।"

बापू— "मिट नहीं जायेगा, कलंक का टीका और गहरा हो जायेगा। कलंक कलंक से कभी नहीं धुलता विकास! तुम्हें ऐसी स्थिति में घर से निकाल कर क्या मेरे बुढ़ापे पर अमिट कलंक नहीं लग जायेगा! किसी को सहारा न देना साधारण अपराध है लेकिन सहारा देकर छीनना अक्षम्य दोष। तुम्हारे लिये यह बूढ़ा बाप नहीं है क्या? तुम मुझे बापू कहते हो, बाप यदि समय पर बेटे का न रहे तो वह बाप ही क्या? ईश्वर इसीलिये परमपिता कहलाता है कि वह दुःख में अपने बालक की पुकार सुन नंगे पैरों दौड़कर सहायता करता है। नाता जोड़ कर तोड़ना मृत्यु की निर्ममता को ही शोभा देता है, मनुष्यता का सत्य इस कठोर कर्म के लिये नहीं है। सत्य और दया का ही दूसरा नाम ईश्वर है। मैं तुम्हारे साथ हूँ, चाहे मेरा बुढ़ापा दुनिया बिगाड़ ही क्यों न दे।"

गाँव भर में लोगों की ज़बान पर प्रभात, शकुन, बापू, विकास चढ़ से गये। जिधर जाओ उधर इनकी ही चर्चा। 'प्रभात को कल यहाँ

देखा, शकुन कल वहाँ थी, विकास की जाति का पता नहीं, हरिराम ने साँप पाल लिये हैं।' कहने वालों का मुँह कौन पकड़ सकता है?

तूफानों की लहरों में दिन घूमकर निकल गये और विवाह की तिथि आ पहुँची। हरिराम की पत्नी फूलवती आज उदास है। 'उसके धर्मपुत्र का ब्याह आज धूमधाम से नहीं होगा, बारात में सिर्फ पाँच आदमी जायेंगे। बाजा ताशा भी नहीं होगा। पर कुछ बात नहीं, जब उसके स्वामी बापू ने बात पक्की कर ली तो फिर बात झूठी नहीं हो सकती।'

मन ही मन में कहती हुई स्वाभिमान से वह गाँव वालों को धिक्कारने लगी। 'न जाओ बारात में नहीं जाते तो, मेरे बेटे का विवाह प्रेरणा से ही होगा और अवश्य होगा।'

हृदय में वह इस प्रकार विचारों की उधेड़बुन में थी पर प्रत्यक्ष में बापू से अकड़ी जाती थी। हरिराम को सामने देखते ही उसने अपनेपन से कहा— "क्यों जी! बहू को चढ़ाने का ज़ेवर कपड़ा तो सब रख लिया न?"

हरिराम— "अरी गुलाब की माँ! अपना ही जाना बबाल बन रहा है, ज़ेवर कपड़ा ले जाने का यह समय नहीं है। किसी तरह फेरे फिर जाने दे, बहू जब घर आ जाये तो तू सब अपने मन की निकाल लीजो।"

फूलवती— "यह नहीं हो सकता कि बेटी वाले के दर्वाज़े पर बहू को ज़ेवर न चढ़े। गुलाब की बहू का गुलीबन्द और हार अवश्य लेते जाओ, और वह नये फैशन की साड़ी जो मैंने दिल्ली से लाकर तपोधन की शादी के लिये रख छोड़ी थी, लेते जाओ। चारों तरफ की आफ़तों में कुछ हो ही नहीं सका।"

हरिराम— "अरी वहाँ दर्वाज़े पर देखने वाला ही कौन होगा। धन्नोमल और धन्नोमल की पत्नी, बस!"

फूलवती— "और दुलहन जो होगी, देखने का सबसे बड़ा चाव होगा तो उसी को होगा।"

बापू के मन में यह बात घर कर गई। उसने कुछ अच्छी अच्छी तियल और ज़ेवर सन्दूक में रक्खे और फिर गुलाब को आवाज़ देते हुए कहा— "गाड़ी जोत लो बेटा!"

"गाड़ी जुती खड़ी है बापू!" गुलाब ने चाव से कहा।

सन्दूक गाड़ी में रख गुलाब, तपोधन तथा यशोधन बारात की बैलगाड़ी में सवार हो गये। बैल यद्यपि उदास थे पर कामदार झूल से सजे हुए अभिमान से खड़े थे, मानो अपने स्वामी से कह रहे थे, 'घबराओ मत, हम तुम्हारे साथ हैं।'

गाड़ी के पास खड़े बापू ने देर होते देख, कुछ नाराज़ी से आवाज़ देते हुए कहा— "विकास! देर क्यों कर रहे हो?"

विकास— "आता हूँ बापू! यह प्रभात भी चलने की हठ कर रहा है। इसे इस समय चार नम्बर बुखार होगा, पर यह मानता नहीं।"

बापू— "नहीं मानता तो आने दो, देखने दो बारात इसे भी।"

विकास के सहारे प्रभात आ कर गाड़ी में सवार हो गया। सब के बैठने पर बापू भी गाड़ी में बैठ गये। दूल्हा दुलहन को लेने चल पड़ा।

"चलो भैया! राम का नाम लेकर" बापू ने कहा।

गुलाब ने गाड़ी हाँकनी शुरू कर दी। गाड़ी आगे बढ़ी, गाँववाले बारात की गाड़ी को देख कर हँसने लगे। वही बापू जिसने अपनी अथक सेवाओं से शूलों के गाँव को सेवाग्राम बनाया आज दुनिया की उङ्गली देखता हुआ निःस्वार्थ जा रहा है। सच है यह दुनिया किस पर उङ्गली नहीं उठाती!

दुनिया हँस रही थी, पर झूमते हुए बैल हँसने वालों को धिक्कारते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे झूमते बजाते और गाते हुए बारात में जा रहे हैं। तुम मनुष्य होकर मनुष्य पर भी दया नहीं करते और हम पशु होकर भी मनुष्य की सेवा करते हैं। तुम न जाओ बारात में, हम तो जायेंगे।

गाड़ी जब गाँव के बाहर निकली तो सहसा पेड़ की ओट से निकल कर शकुन ने आगा रोक लिया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। प्रभात उसे देखते ही गाड़ी से नीचे कूद पड़ा। इससे पहिले कि प्रभात कुछ कहे, शकुन आँसुओं की सुबकियों के बीच बोली— "मुझे किस पर छोड़ कर जाते हो प्रभात! जानते नहीं इस गाँव में जल्लाद रहते हैं। यहाँ मेरा कौन है?"

प्रभात— "तुम्हें अपने साहस का सहारा लेना होगा। जो दुनिया से डरता है, दुनिया उसे और चूट चूट कर खाती है। अपना दीपक आप बनो शकुन!"

बापू— "दुनिया का ध्यान भी रखना ही पड़ता है प्रभात! यदि किसी के हाथ की ओट न हो तो हवा दीपक बुझा देती है।"

प्रभात— "पर यह न्याय तो नहीं!"

बापू— "यह समय न्याय अन्याय के निर्णय का नहीं है, शीघ्र निश्चय करो क्या करना है।"

प्रभात— "करना क्या है, हम दोनों जाकर कुएँ में डूब मरें, यही अच्छा है।"

बापू— "यह तो मूर्खता की बात है। बेटी शकुन! तुम ज्योति के पास ठहरो।"

शकुन— "जब सब ज्योति को भी बुरी तरह तंग करने लगे तो मैं उससे बिना कहे उसके यहाँ से भी चली आई। वह बिचारी गाँव की आर्यसमाज में प्रधान थी, धूमसिंह तथा मेरी माँ ने वितण्डा फैला कर उसे समाज से निकलवा दिया। ज्योति की दशा आज मुझ से भी बदतर बनती जा रही है। पर वह सब सहती हुई भी मुँहतोड़ उत्तर दे देती है, इसी से कुछ उससे डरते भी हैं। वैसे तो लोग उसकी हत्या तक करने की बात कहते हैं।"

प्रभात— "तुम ज्योति के पास ही जाओ शकुन! वह भी तो अकेली ही है न! हम सब कल शाम तक लौट आयेंगे।"

प्रभात की ओर प्रतीक्षा की दृष्टि से देखती हुई शकुन गाँव की ओर और गाड़ी रामपुर की तरफ चल दी।

सात बजे होंगे जब बारात की गाड़ी बेटी वाले के दर्वाज़े पर पहुँची। दर्वाज़े पर लालटेन जल रही थी, धन्नोमल की पत्नी लक्ष्मी दर्वाज़े के किवाड़ों की ओट सी में भिंची सी उदास खड़ी थी। बाराती उतर कर दर्वाज़े में घुसे। लक्ष्मी उन्हें देखते ही फूट फूट कर रो पड़ी। उसने अपने आँचल का छोर ठूस ठूस कर रुदन रोकना चाहा, पर मन जब भर आता है तो लाख रोकने पर भी रोना नहीं रुकता।

उसे इस तरह रोते देख बापू ने कहा— "घबराने की क्या बात है बेटी! विकास! तू पूछ बेटा! लाला धन्नोमल कहाँ हैं?"

लक्ष्मी— "वे तो जिस दिन सगाई पहुँचाकर लौटे थे उसी दिन से बीमार हैं, इस समय भी कोई छः नम्बर बुखार है। प्रेरणा उनके सर पर बर्फ के पानी का कपड़ा रख रही है। बुखार की गर्मी में आज वे सबेरे ही से बहक भी रहे हैं, बार बार बावलों की तरह उठ बैठते हैं, और पूछते हैं बारात आई या नहीं। मैं पास बैठती हूँ तो बैठने नहीं देते, कहते हैं, तू दर्वाज़े पर जा, बारात आती होगी, दूल्हे की आरती उतारेगी न!"

बापू की आँखें भर आईं। विकास को दुःख और क्रोध ने घेर लिया। प्रभात जो सहते सहते पाषाण बनना चाहता था, समझाने के शब्द उच्चारने की कोशिश करने लगा। और फिर सहसा सब के मुँह से निकला— "घबराने की कोई बात नहीं, सब भगवान भला करेंगे। चलो अन्दर।"

बारात बीमार के सामने जा पहुँची। छः नम्बर बुखार में भी धन्नोमल एकदम उठकर खड़े हो गये और बारात का स्वागत किया।

दीपक बुझने से पहिले जैसे एक बार खिल उठता है ऐसे ही बारात को देख कर धन्नोमल भी खिल उठे। और फिर धड़ाम से खाट पर लेटते हुए उन्होंने कहा— "फेरे ग्यारह बजे के हैं, उस समय तक प्राण शरीर में ठहरेंगे भी या नहीं !"

हरिराम— "कैसी बात कर रहे हो लाला धन्नोमल ? इतने घबराने की क्या बात है ? बेटी प्रेरणा ! किसी को दिखाया भलाया भी !"

प्रेरणा— "इलाज तो वैद्य जी का है, पर हमारा बाइकाट जो कर दिया इसलिये वे भी ज़रा अकड़े अकड़े से इलाज करते हैं। मैं दवा लेने जाती हूँ तो डाट कर बोलते हैं, जब भी वैद्य जी की दूकान पर जाती हूँ तो वह समाज का ठेकेदार दुर्गादत्त वहाँ बैठा मिलता है, मुझे देख कर हँसता है।"

धन्नोमल— "बापू ! वह चाहता था कि प्रेरणा की शादी मैं उस के लड़के देवदत्त से कर दूँ। वह शादी मेरे माल से करना चाहता था, मेरी प्रेरणा से नहीं। शरीर में बड़ी पीड़ा हो रही है, दम खिंचा जा रहा है, क्या बजा है बापू !"

बापू— "आठ का समय है धन्नोमल !"

धन्नोमल— "आप जीम तो लीजिये ! प्रेरणा की भाभी ! ला, यहीं ले आ थालियाँ परोस कर।"

सारे दिन लगलिपट कर माँ बेटी ने बारात के लिये व्यंजन तैयार किये थे। थालियाँ तो बारात के सामने आईं, पर खाने में रुचि किसी की नहीं थी, तपोधन और यशोधन ने तो कुछ स्वाद से खाया, शेष सब तो थोड़ा घना खा कर उठ गये।

"क्या बजा है ?" धन्नोमल ने फिर पूछा।

बापू— "नौ बजे हैं।"

पाँच मिनिट बाद धन्नोमल ने फिर पूछा— "क्या बजा है, फेरों में कितनी देर है ?"

बापू— "अभी दो घण्टे बाकी हैं।"

अब धन्नोमल को रट लग गई, वे मिनट मिनट में पूछने लगे— 'क्या बजा है ? कितनी देर है ?'

उन के माथे पर पसीना आने लगा, श्वासों की गति तेज़ होने लगी, पुतलियाँ ठहर ठहर कर चलतीं पर उन्हें बराबर यही रट थी— "फेरों में कितनी देर है ?"

बापू ने धीरे से लक्ष्मी से कहा— "इन की हालत बहुत खराब होती जा रही है, फेरों में अभी आधा घण्टा बाकी है।"

लक्ष्मी ने उत्तर में कुछ न कहा। आँचल से अपने आँसू पूँछ लिये। तुतलाती वाणी में धन्नोमल ने पूछा— "कितनी देर है ?"

"घड़ी आगई धन्नोमल !" बापू उँगली से अपना आँसू पूँछते हुए बोले। और फिर अग्नि के सामने फेरों के लिये प्रेरणा और विकास को बिठा दिया।

"प्रेरणा का हाथ तो अपने हाथ से विकास को पकड़ा दो प्रेरणा के पिता !" रोती हुई लक्ष्मी ने कहा।

धन्नोमल की ज़बान बन्द थी, उनसे बोला नहीं जाता था, संकेत से उन्होंने प्रेरणा और विकास को अपने पास बुलाया।

प्रेरणा जब पिता के पास पहुँची तो धन्नोमल ने उसकी धोती की ओर संकेत किया। वे मौन भाषा में बोले— "सफ़ेद धोती दुलहन को नहीं विधवा को अच्छी लगती है। प्रेरणा को विवाह की साड़ी पहिना !"

सहसा फेरों के उस मण्डप में प्रेरणा की सहेली सुमति ने प्रवेश किया। उसके हाथ में एक रेशमी साड़ी थी। आते ही उसने कहा—

"यह मैं प्रेरणा को पहिनाने आई हूँ। मेरी बहुत इच्छा थी कि प्रेरणा जब दुलहन बनेगी तो मैं उसे सजाऊँगी। प्रेरणा के शृंगार के लिये मेरे मन में बड़े बड़े चाव थे। पर माँ ने मुझे आने नहीं दिया। अब मैं छत फाँद कर आई, प्रेरणा! तू समझी होगी कि सुमति नहीं आई, मैं मजबूर थी। क्षमा करना मुझे।"

प्रेरणा अपनी सखी से चिपट फूट फूट कर रोने लगी। सुमति ने भी रोते रोते कहा— "यह वक्त रोने का नहीं है सखी! उठ, मैं तेरा शृंगार करूँगी।"

बराबर के कमरे में ले जा कर सुमति ने प्रेरणा को अपनी लाई हुई साड़ी पहिनाई, और अपने गले से उतार हीरे मोतियों का वह सतलड़ा उसके गले में डाल दिया जो उसकी माँ ने उसके विवाह के लिये बनाया था। और फिर दोनों चिपट कर रो पड़ीं। रोते रोते सुमति ने कहा— "लड़कियों का झमेला यहीं तक तो होता है सखी!"

रुनझुन करती दुलहन को साथ ले सुमति फेरों के मण्डप में आई। प्रेरणा का आँचल विकास के पल्ले से बाँध दिया। गठजोड़े में बँधे हुए दूल्हा और दुलहन धन्नोमल की खाट के पास जा खड़े हुए। धन्नोमल ने पथराई सी आँखों से दोनों को देख आशीर्वाद दिया, और हवा में सात बार उँगलियाँ चलाईं।

सात फेरे लेने के बाद दुल्हा और दुलहन जैसे ही बैठे वैसे ही बापू ने कहा— "धन्नोमल तो गये!"

लक्ष्मी "हाय! मैं लुट गई" कहती हुई पति के शव पर पछाड़ खा कर गिर पड़ी।

प्रेरणा की बिछुओं की झनकार में से रुदन निकलने लगा। विवाह-वेला मृत्यु-वेला में बदल गई।

अपनी लम्बी आयु के अनुभवों की आग में तपे हुए बापू ने रोतों को शान्ति देने के लिये दुःख और धैर्य के शब्दों में कहा— "वाह!

धन्नोमल! खूब बात के धनी थे तुम! धैर्य रक्खो बेटी! रोने से कुछ नहीं होगा। यहाँ किसी का वश नहीं चलता। अब तुम्हारा नाता टूट चुका। लकीर पीटने में क्या रक्खा है ? ओह! दुःख पर दुःख, कैसी विचित्रता है ईश्वर! तेरी, जिसे दुःख देता है तो हाथ रोकता ही नहीं।"

बिचारे सारी रात रोते रहे, पर किसी पड़ौसी के कानों पर जूँ न रेंगी। सबेरा हो गया लेकिन कोई भी रामपुर वासी धन्नोमल के शव के साथ श्मशान तक जाने को नहीं आया। आते कैसे, उनका बाइकाट जो कर रक्खा था। "हा! कितनी कठोर है यह दुनिया! तभी तो सत्य इस से दूर रहता है।" प्रभात ने मृत्यु की पुस्तक पलटते हुए कहा।

सुमति जो सारी रात प्रेरणा और लक्ष्मी को धैर्य देती हुई दुलहन को और कठोर मृत्यु को देख रही थी, मन मन्थन करके बोली, "सत्य और असत्य कुछ नहीं, जो हो जाय वही सत्य है।"

बापू— "विकास! तुम गुलाब के साथ जाकर कपड़ा ले आओ, जो होना था वह हो चुका। शव श्मशान ले जाने में देर करने से क्या!"

प्रेरणा— "बाज़ार में हमारे हाथों कोई चीज़ न बेचे, रामपुर वालों ने यह तय कर दिया है। कफ़न कहाँ मिलेगा बापू!"

लक्ष्मी— "कफ़न घर में बहुत है, मेरे जितने कपड़े हैं वे सब कफ़न ही तो हैं।" कहती और रोती हुई लक्ष्मी उठी तथा अपने सन्दूक में से पति के लिये कफ़न ले आई।

दूल्हे सहित बिचारे पाँच बराती अर्थी उठा कर चल पड़े। रामपुर वाले जहाँ तहाँ उदास खड़े मन ही मन में धन्नोमल की खूबियाँ गिन रहे थे, पर बाहर की कठोरता उन्हें पत्थर बनाये हुए थी।

सारे दिन की थकान उतारने को चाय के लिये दूध लेने जाते हुए भंगी ने कहा— "आदमी तो बहुत भले थे सेठ जी! कभी तंग नहीं किया बिचारों ने। तीज त्यौहार पर खूब देते थे।"

रामपुर के उस बूढ़े अन्धे भिखारी ने 'राम नाम सत्य है' की आवाज़ सुनकर सड़क के किनारे दर्वाज़े पर खड़े लाला लक्खोमल से पूछा, "किन का सरगबास हो गया सेठ जी?"

लक्खोमल— "उसी धन्नोमल का जिसका सारे कसबे ने बाइकाट कर रक्खा था।"

भिखारी— "क्या धन्नोमल मर गये! हमारा तो सहारा ही छूट गया। कभी बिचारा खाली हाथ दर्वाज़े से नहीं जाने देता था। और यह दुनिया, लानत है इस पर।"

कहता हुआ भिखारी लाठी टेकता हुआ जल्दी जल्दी उधर ही चल पड़ा जिधर 'राम नाम सत्य है' कहते हुए बराती जा रहे थे।

भिखारी दौड़ कर शव के साथ हो लिया, पर पत्थर जहाँ के तहाँ खड़े रहे। अन्धे ने सत्य देखा, पर आँखों वाले अपने आपको भी न देख सके।

श्मशान में प्रभात ने अपनी अतल अनुभूतियों की गोद में पीड़ा सुलाते हुए कहा— "दुनिया जब पाषाण होती है तो हृदय भी पाषाण क्यों नहीं होता?"

विकास— "दुनिया का सत्य वही है और हृदय का सत्य यही।"

प्रभात— "तो जीवन का सत्य मृत्यु है या जीवन?"

विकास— "आज तो मरण ही सत्य जान पड़ता है, लेकिन कल फिर जीवन ही सत्य होगा। आज मुझे जीवन पहेली सा लगता है, उलझन में हूँ कि जीवन का सत्य विवाह है या मृत्यु। श्मशान के सत्य में आज सारे सत्य असत्य से लगते हैं।"

खूब है दुनिया भी।

———

४

"कहानी रह गई, याद किये जाओ और रोये जाओ ! धन्नोमल तो अब आते नहीं, धैर्य धरना ही पड़ेगा।" हरिराम बापू ने लक्ष्मी को समझाते हुए कहा।

प्रेरणा— "रोने से क्या होगा माँ ! अब उनके कानों में हमारे रोने की आवाज़ नहीं पहुँचेगी। बुरे समय में ईश्वर भी ऊँचा सुनने लगता है, न रोओ माँ !"

लक्ष्मी— "मैं मन को बहुत समझाती हूँ, सारी गीता पढ़ डाली इन तीन दिनों में, मृत्यु का इतिहास दौहरा डाला, पर उन की ओर से ध्यान नहीं हटता, रह रह कर बीती कहानी नयी हो रही है। सोचती हूँ कि क्या वे अपनी मौत ही मरे हैं या दुनिया ने उन्हें मार डाला। सामाजिक बहिष्कार का उनके हृदय पर गहरा धक्का लगा। जिस समाज के वे सदा काम आते रहे वही समाज उनका हत्यारा बन गया, यदि समाज उन पर अत्याचार न करता तो शायद वे अभी न मरते। उनकी इच्छा थी कि बेटी का ब्याह बड़ी शान से करूँ, पर बात के धनी की कामना तड़पती ही रही, और अन्त में न सह सकी, तड़पती हुई इस कठोर दुनिया से कहीं दूर चली गई।"

बापू— "इस काल्पनिक संसार में बड़ों बड़ों की इच्छा चिता पर तड़पती ही रहती है, कोई बोता है और कोई बो कर काटता है। यह तो संसार चक्र है, ऐसे ही चलता रहता है, बीती बात भुलानी ही पड़ती है।"

प्रेरणा— "भूलना सरल नहीं बापू !"

प्रभात— "भूलता कोई नहीं बापू ! हाँ, हृदय में छिपा कर ज़िन्दा अवश्य रहता है।"

बापू— "मरना जीना दुनिया में लगा ही रहता है, न जाने कितने मैंने अपने हाथों से फूँक दिये। बहुत रो चुके, अब अपने अपने काम में लगो। विकास ! अब तुम्हारा घर तो यही है, मैं सेवाग्राम जाता हूँ, और प्रभात ! तुम भी चाहो तो कुछ दिन अभी विकास के पास रहो।"

प्रभात— "नहीं, आज तो मैं गाँव चलूँगा, दो चार दिन में फिर यहाँ चला आऊँगा !"

बापू— "अच्छा बेटा विकास ! हम जायें, सब काम धन्धा सावधानी से करना !"

विकास— "आप का आशीर्वाद रहा तो भविष्य में नई दुनिया देखेंगे। विकास कुरीतियों से सताया जा कर रोना नहीं जानता। उसकी आँखों से उन पर आँसू नहीं बरसते, आग बरसती है। मैं समाज की ठोकरों पर आँसू नहीं, अंगारे उगलूँगा। धन्नोमल मरे नहीं, अमर हैं, भविष्य में नये समाज के प्रथम पृष्ठ पर उनका चित्र होगा। वे साहसी और विजयी जीवन का सत्य देकर गये हैं।"

बापू— "ईश्वर तुम्हें शक्ति दे ! सफलता का शिखर तुम्हारे चरण चापे ! तुम इतने ऊँचे उठो कि अगर मैं जीवन यात्रा पूरी कर दूसरे लोक में चला जाऊँ तो तुम्हारी ऊँचाई देख कर गर्व कर सकूँ।"

दूल्हा और दुलहन वहीं रह गये तथा बारात विदा हो गई। विकास रामपुर का अब एक धनाढ्य व्यापारी था, पर व्यापार की ओर उसका

मन बिलकुल न लगता था। इस उदासीन स्थिति में विकास हर समय सोचता रहता था।

लगभग एक पक्ष बाद एक दिन प्रेरणा अपने पति के पास आ प्यार से बोली— "क्या सोचते रहते हो स्वामी! जान पड़ता है कोई गहरी चिन्ता आपको हर समय सताती रहती है।"

विकास— "कुछ नहीं प्रेरणा! सोचता हूँ कि क्या चिन्ता ही जीवन का सत्य है।"

प्रेरणा— "आप चिन्ता में क्यों पड़ते हैं प्राण! क्या चिन्ता है आपको?"

विकास— "तुम्हारी मधुरता पल भर के लिये चिन्ता भुला देती है, पर मेरे मन में चिन्ता रहती है कि कैसे भी दुनिया नये शीशे में देखूँ। बोलो प्रेरणा! यदि मैं समाज को बदलने चलूँ तो तुम मेरे साथ चलोगी?"

प्रेरणा— "क्यों नहीं चलूँगी, क्या आप भूल गये, मैं उस बाप की बेटी हूँ जिसने अपने प्राण देकर नये समाज का आदर्श उपस्थित किया है।"

विकास— "सच प्रेरणा! तुम जितनी सुन्दर हो उससे अधिक हृदय का सौरभ तुम्हारी रसना से बरसता है। मैं बहुत सुखी हूँ क्योंकि तुम मुझे मिल गईं, न जाने किन पुण्यों के फलस्वरूप तुम मुझे मिली हो।"

प्रेरणा— "लज्जित न करो हृदयेश! मैं तो आपके चरणों की धूलि भी नहीं, मैंने जन्म जन्म में तपस्या की होगी तभी तो आप मुझे मिल गये।"

प्रेरणा की मधुरिमा से विकास प्रेमोन्मत्त हो गया। उसने प्रेरणा को हृदय से चिपटा लिया। दो हृदय भुजाओं में एक हो गये।

आलिंगन के बन्धन जब ढीले पड़े तो विकास ने प्यार से प्रेरणा को देखते हुए कहा— "जान पड़ता है जीवन सत्य का आलिंगन ही है। जितना आनन्द इस में है क्या उतना और भी कहीं है! भूल जाता है मनुष्य इस रस में सब कुछ।"

प्रेरणा— "सुख और दुःख के पलड़े ऊँचे नीचे नहीं होते मेरे देवता! दुःख का प्रतिकार सुख और सुख का प्रतिकार दुःख है। पाप पुण्य की और पुण्य पाप की आधारशिला पर टिका हुआ है। दुःख और पाप अगर कुछ छीनते हैं तो बहुत कुछ सिखाते भी हैं।"

विकास— "तुम तो प्रभात की बात कहने लगीं प्रेरणा! वह बात बात में यही कहा करता है।"

प्रेरणा— "प्रभात को यद्यपि मैंने एक ही बार देखा है पर मुझ पर उसका असाधारण प्रभाव पड़ा! उसने जीवन की अनुभूति बड़ी गहराई से की मालूम होती है।"

विकास— "वह पागल दुःखों और संघर्षों में फँसा ही रहता है।"

प्रेरणा— "दुःख और संघर्ष तो ज़िन्दगी के दीपक हैं स्वामी!"

विकास— "तुम भी प्रभात की तरह कविता करने लगीं प्रेरणा!"

प्रेरणा— "संसार का हर प्राणी कवि है, और हर कम्पन कविता।"

विकास— "अच्छा पहेलियाँ छोड़ो और मतलब की बात करो।"

प्रेरणा— "आपकी बात मतलब नहीं, अर्थ रखती है नाथ!"

विकास— "तुम तो मुझे पढ़ाने लगीं प्रेरणा!"

प्रेरणा— "क्योंकि हृदय और बुद्धि में विकास विराजमान है।"

विकास— "प्रेरणा! मैं समाज को रूढ़ियों से हटा यथार्थ आदर्शों पर ठहराना चाहता हूँ। तुम इस कार्य के लिये स्त्री समाज का संगठन करो।"

प्रेरणा— "घूँघट की दीवारों में बन्द नारी वर्ग जिस दिन जाग कर शंखध्वनि करेगा उस दिन कण कण से जागृति के गीत सुनाई देंगे। हमारा देश रूढ़ियों के घोर अन्धकार में छटपटा रहा है, उसे उससे निकालने के लिये बड़े बड़े बलिदान और संघर्ष की आवश्यकता है। मेरे जीवन का हर श्वास आपकी आज्ञा का दास है स्वामी! मैं समाज सेवा के लिये किसी भी व्यवधान से न रुकूँगी।"

विकास— "प्रेरणा! जान पड़ता है तुमसे कोई अज्ञात शक्ति ये शब्द कहला रही है।"

प्रेरणा— "अज्ञात शक्ति नहीं, प्रत्यक्ष शक्ति कहिये। जब से आप मुझे प्रत्यक्ष मिले हैं तब से मेरी सुप्त भावनायें जाग उठीं, मानो मैंने सब कुछ पढ़ लिया।"

विकास— "तुम में तो अमृत है प्रेरणा! कितना सुन्दर हो यदि घर घर में तुम जैसी दुलहन हों।"

प्रेरणा— "लज्जित न कीजिये नाथ! आप जैसे पति जहाँ होंगे वहाँ लोहा सोना बन ही जायेगा। घर घर में सुख शान्ति की चाह भरी आप की इच्छा कठोरता से जूझना चाहती है, परिणाम सोचने की आवश्यकता नहीं।"

विकास— "हार का दुःख यत्न की हार से होता है, हर सफलता बलिदान चाहती है। वे फल विषैले होते हैं जो बिना श्रम किये मिल जायें। समाज स्वभाव के दर्पण और आदर्शों की चक्की में चलता हुआ दिखाई दे रहा है। आदर्शों की कठोरता मनुष्य से पाप कराती है, मनुष्य जीवन में झूठे सत्य की आड़ लेता है। मैं 'सत्य समाज' का निर्माण करना चाहता हूँ, बोलो, साथ दोगी।"

प्रेरणा— "हर चरण आपके संकेत के सहारे आप की सुरक्षा के लिये उठेगा।"

विकास— "तो फिर मैं तुम्हारी यह सारी सम्पत्ति समाज के निर्माण में व्यय कर दूँ?"

प्रेरणा— "मैं और सम्पत्ति सब आपकी हैं, पर जब पैसा नहीं रहेगा तो जीवन कैसे चलेगा?"

विकास— "माया के मोह ने जीवन का संकट उपस्थित कर दिया न प्रेरणा!"

प्रेरणा— "नहीं नाथ! जीवन के संकट ने माया का मोह उपस्थित कर दिया है।"

विकास— "संकट और समस्याओं से डरने वालों के लिये दुनिया नहीं है। दुनिया जूझने के लिये है, शयन के लिये नहीं।"

प्रेरणा— "मैं शयन की बात नहीं सोचती स्वामी! दूरदर्शिता की कल्पना करती हूँ। भावुकता के आवेश में भयंकर भूल भी हो सकती है।"

बातचीत के बीच में सहसा एक उठती हुई जवानी के सौन्दर्य में मँझधार पड़ी तरणी सी अत्यन्त फैशनेबिल लड़की सामने आ कर खड़ी हो गई, जिसे देखते ही प्रेरणा ने आश्चर्य से कहा— "अरी मधुप! आज तुम कैसे आ गईं, और तुम्हें तुम्हारी माँ ने आने कैसे दिया? अरे यह क्या! तुम रो क्यों रही हो? क्या बात है मधुप? तुमने तो इस साल बी. ए. की परीक्षा दी थी न? मैं तो सोचती थी तुम मिठाई लेकर आओगी, पर तुम आँसू लिये आई हो। आखिर बात क्या है?"

मधुप— "मैं तुम से अकेले में कुछ बातें करना चाहती हूँ प्रेरणा!"

प्रेरणा— "हाँ हाँ, आओ!" कहती हुई प्रेरणा मधुप को साथ ले दूसरे कमरे में चली गई।

दूसरे कमरे में आते ही मधुप प्रेरणा से चिपट कर रोने लगी। उस के वे आँसू जो अब तक ज़बरदस्ती आँखों में क़ैद थे अब बाढ़ के वेग से बह चले। रोते ही रोते उसने कहा— "मेरी मदद करो बहिन!"

प्रेरणा— "बात क्या है, कुछ बोलो तो मधुप।"

मधुप— "कालिज में मेरा लक्ष्मण से प्रेम हो गया था और अब मैं ...."

प्रेरणा पहिले तो परेशान हो गई पर फिर सोच कर बोली— "तो तुम उससे शादी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

मधुप— "वह हरिजन है, मेरे माँ बाप कभी उससे मेरी शादी न करेंगे। वे तो मेरी शादी किसी बहुत मालदार से करने के मनसूबे बाँधे हुए हैं। मैं चाहती हूँ तुम अपने पति से कोई ऐसी दवाई मँगा दो जिससे ....! पर यह ध्यान रखना प्रेरणा! मेरी इज्ज़त इस समय तुम्हारे हाथ है, तुम मेरे लिये ईश्वर की जगह हो।"

प्रेरणा— "घबराओ मत! तुम तनिक यहीं बैठो, मैं अभी इस बारे में उनसे बातें करके आती हूँ।"

मधुप— "कहीं वे किसी से कह तो नहीं देंगे ?"

प्रेरणा— "विश्वास करना पड़ेगा।" कहती हुई प्रेरणा फिर विकास के पास आ गई।

प्रेरणा ने बड़ी गम्भीरता से वह कहानी विकास को सुनाई। विकास कुछ सोचते से बोले— "बहुत दुखी जान पड़ती है इस समय वह।"

प्रेरणा— "पर उसका यह दुःख यदि दुनिया देख लेगी तो पाप, घृणा और उपहास की बौछारें उस पर पत्थर बनकर बरसने लगेंगी।"

विकास— "तो फिर क्या किया जाये प्रेरणा!"

प्रेरणा— "जिससे दुखी का दुःख दूर हो सके।"

विकास— "वह तो लक्ष्मण से मधुप की शादी होने पर ही हो सकता है और मुझे यही सत्य शिवं लगता है।"

प्रेरणा— "पर सेठ घनश्यामदास कभी इस बात के लिये तैयार न होंगे। वे अपनी बेटी का ब्याह एक हरिजन से कभी नहीं करेंगे।"

विकास— "अभी उन्हें यह सब जानकारी भी है या नहीं !"

प्रेरणा— "जानकारी अभी नहीं जान पड़ती, अगर जानकारी हो जाती तो वे मधुप को घर में क़ैद कर लेते, वह यहाँ तक आ भी न पाती ।"

विकास— "मैं मधुप से बातें करना चाहता हूँ ।"

प्रेरणा— "चलिये !"

दोनों उसी कमरे में आ गये जिसमें मधुप उदास बैठी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी आँखें वासना के सत्य से झुकी हुई थीं, उसके हृदय में प्रेम और लोक लाज का द्वन्द छिड़ा हुआ था। जीवन के सत्य का एक हाथ दया की भीख के लिये फैला हुआ था और दूसरा प्रेमी के कण्ठ की ओर लपक रहा था ।

मौन भंग कर विकास ने कहा— "क्या तुम इसके लिये दृढ़ हो कि लक्ष्मण से शादी कर लो ?"

मधुप— "चाहती तो हूँ, पर यह होता नहीं दीखता। पिताजी कभी इसके लिये तैयार नहीं होंगे, और यदि मैंने लक्ष्मण से विवाह नहीं किया तो वह अपनी जान दे देगा ।"

विकास— "जान देना इतना सरल नहीं है जितना भावुकता में कहना सरल होता है। तो फिर अब तुम चाहती क्या हो ?"

मधुप— "मौत या औषधि ।"

विकास— "अर्थात् ?"

मधुप— "एक ओर लोक-लाज और दूसरी तरफ प्रेम, एक ओर धन और मद में चूर मेरे परिवार वाले तथा दूसरी तरफ समाज की कठोरता में शूद्र कहलाने वाला सहृदय लक्ष्मण ! एक तरफ मेरा मन बढ़ता है और दूसरी ओर शरीर को खींचा जा रहा है। अब आप ही बताइये मेरे लिये मौत के अतिरिक्त और क्या उपाय है ।"

विकास— "प्रेम पथ के किसी व्यवधान की सुनता नहीं, वह परिणाम और लोक लाज को नहीं देखता, प्रेम जैसी पवित्र वस्तु लोक लज्जा के कायर को छूनी भी नहीं चाहिये। तुम्हें यदि लक्ष्मण से प्रेम है तो उसे प्राप्त करो, तुम्हें माता पिता से स्पष्ट कह देना चाहिये कि मैं लक्ष्मण से ही शादी करूँगी। अभी तक तुमने भूल नहीं की, जो कुछ हुआ है वह प्राकृतिक है, पर मृत्यु या लोक लाज के आँचल में जीवन के सत्य को छिपाकर अब तुम पाप कर बैठोगी।"

मधुप— "यह पाप क्या व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है ? अनिच्छा होते हुए भी दुनिया मनुष्य को विवश कर देती है। आप मुझे विष या औषधि दोनों में से कुछ ला सकें तो ला दें!"

विकास— "विष कहो या औषधि, दोनों ही से मृत्यु होगी। विष खा कर तुम जीवन से हार कर मरोगी, तथा औषधि से तुम जीवन के हर श्वास में मरती रहोगी। तुम जिसे छिपाना चाहती हो उसके प्रकट होने में ही तुम्हारा भला है, तुम लक्ष्मण की बनी हो तो लक्ष्मण की ही रहो, उसी से विवाह करो। इसी में तुम्हें शान्ति मिल सकती है।"

मधुप— "आप कैसी भोली बातें करते हैं, यह दुनिया बड़ी कठोर है, किसी तरह भी इसे संतोष नहीं। यदि मैं लक्ष्मण से शादी करने की बात पर साफ़ साफ़ अड़ जाऊँ तो तूफान खड़े हो जायेंगे।"

विकास— "तूफान में जब कूद पड़ी हो तो उससे डरती क्यों हो ? जो स्वयं डरता है उसे दुनिया और डराती है।"

मधुप— "दूसरे को समझाना जितना सरल है क्या उतना उसके लिये करना भी सरल होता है ?"

विकास— "तुम बुद्धि के सहारे से हृदय की बात मानो मधुप ! अपना या दूसरे का दिल दुखाना ही तो पाप है।"

मधुप— "तो जो कुछ आप कहते हैं और मेरा मन चाहता है वही करती हूँ, पर परिणाम की कल्पना मुझे देखकर हँस रही है, उस हँसी में धधकती हुई चिता से भी भयंकर शोले दिखाई दे रहे हैं।"

विकास— "प्रेम करने वाले आग और पानी से नहीं रुका करते।"

मधुप— "तो फिर मैं दृढ़ता से अपने पथ पर पैर बढ़ाऊँ? सब से अपने प्रेम की बात साफ साफ कह दूँ?"

विकास— "अवश्य, तुम जिस पथ पर पैर बढ़ा चुकी हो उससे लौटने से प्रेम के माथे पर कलंक लग जायेगा?"

मधुप— "और प्रकट होने से ज़िन्दगी कलंक के नाम से पुकारी जा सकती है। यही नहीं, और भी कुछ भयंकर हो सकता है। पर शायद मनुष्य प्यार की भाषा समझ जाये, इसलिये मैं अभी जा कर माँ से अपना निश्चय कह दूँगी, क्योंकि पिता जी मेरे विवाह की बातचीत लाला किरोड़ीमल के लड़के से लगभग तय कर चुके हैं। पता नहीं क्या हो!"

भय और भावुकता के आवेश में मधुप दौड़ी हुई घर पहुँची। जाते ही जोश में उसने माँ को पास बुलाया और अपनी कहानी एक ही श्वास में कह डाली। प्रकृति का सत्य पाप बन कर अपराधी की तरह माँ के न्यायालय में लज्जा का दामन चीर कर कहानी कह रहा था और माँ के पैरों के नीचे की ज़मीन खिसकी जा रही थी।

माँ की आँखें लाल हो गईं, उनसे आँसू निकल पड़े, उसने घृणा से बेटी को देखते हुए कहा— "लंकनी! कलंकनी! पापिन! चुड़ैल! अपना काला मुँह लेकर कुएँ में न डूब मरी! सामने आते हुए तुझे लज्जा न आई!"

कहती हुई माँ मधुप के पिता घनश्यामदास के कमरे में दौड़ी हुई गई। मधुप का भाई कैलाश भी उसी कमरे में था। बेटी की बात सुनकर

माँ की दशा पागल सी हो गई थी, पर बेटी के प्रति प्राकृतिक प्रेम की भावना ने इस कमरे में उसकी वाणी कुछ गम्भीर कर दी।

वह कहानी उन कानों में भी पहुँची। घनश्यामदास और कैलाश की आँखें अङ्गारा हो गईं। कैलाश ने क्रोध से काँपती हुई वाणी में कहा—"मैं लक्ष्मण को जान से मार डालूँगा। उसका खून पी जाऊँगा।"

घनश्यामदास— "जो बात बिगड़ चुकी है उसका प्रतिशोध सँभल कर करना चाहिये। मधुप को अभी ताले में बन्द कर दो, वह घर से बाहर क़दम न धरने पाये। और फिर लक्ष्मण को कैसे भी मरवाना चाहिये। इसके बाद किसी डॉक्टर को रुपये देकर ········ मधुप की शादी किरोड़ीमल के लड़के से कर देंगे, बात दबी रह जायेगी।"

कैलाश— "मेरा जी चाहता है कि मधुप को अभी ज़िन्दा जला दूँ।"

घनश्यामदास— "गुस्से में बात को और मत बिगाड़ो। देखो तुम लक्ष्मण को आज अपने घर बुलाओ, और उसे निचले तहख़ाने में ले जा कर नूरे क़साई से टुकड़े करवा डालो।"

मधुप को ताले में बन्द कर कैलाश और घनश्यामदास लक्ष्मण को क़त्ल करने के कुचक्र में लगे। उन्होंने नूरे क़साई को पाँच हज़ार रुपये के लालच में फँसा इस नृशंस कार्य के लिये तैयार कर लिया। घनश्यामदास का दिवाली जैसा घर आज भयंकर काले सर्प की तरह कुंडली मारे फन ऊपर उठाये आदमी डसने की बाट में बैठा था। लोक लज्जा आज डायन की तरह घर को घूर रही थी।

रात के लगभग नौ बजे होंगे जब लक्ष्मण ने कैलाश के साथ उस घर में प्रवेश किया। कैलाश अपनी एक बगल में लक्ष्मण और एक बगल में छुरी लिये हँसता और काँपता हुआ घर आया।

दो चार मिनट इधर उधर की बातों के बाद लक्ष्मण ने कहा—"मधुप कहाँ है?"

कैलाश— "वह आज कुछ अस्वस्थ है, हवा से बचने के ख्याल से कमरा बन्द करके सो गई है। चलो तो तुम्हें आज हम अपने घर का वह तहखाना दिखायें जो तुमने अब तक नहीं देखा, उसे बनाने में बनाने वाले ने कमाल किया है।"

'चलो!' कहता हुआ लक्ष्मण कैलाश के साथ चल दिया। अन्दर की कोठरी में घुस ये उस काल कोठरी में जा पहुँचे। कोठरी में मन्दी मन्दी एक लालटेन जल रही थी, और कोने में बिछी हुई थी एक खाट! कैलाश ने उस खाट पर बैठते हुए कहा— "बैठो लक्ष्मण! तुम से एकान्त में कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।"

कैलाश की बातों में कुछ विचित्रता सी आ गई, लक्ष्मण समझ गया कि मेरे और मधुप के प्रेम की बात खुल गई है, उसे दाल में कुछ काला लगने लगा, भयभीत वाणी में बोला— "बाहर चलो कैलाश! वहीं बातें करेंगे, यहाँ तो बड़ा घोट है।"

कैलाश— "घोट हमें खा नहीं जायेगा लक्ष्मण! तुमने हमारे घर की जो बर्बादी की है उसका परिणाम जानते हो?"

बातें चल ही रही थीं कि घनश्यामदास और नूरे भी लाल लाल आँखें किये वहाँ आ धमके।

लक्ष्मण समझ गया कि तू खतरे में है, पर उसने साहस करके कहा— "हम दोनों ने प्रेम किया है, पाप नहीं।"

घनश्यामदास— "पाप और पुण्य का पता अभी चल जायेगा! चमार होते हुए तू ऊँची जाति की इज्ज़त पर डाका डालने का साहस कर बैठा!"

लक्ष्मण— "जो भूल आप मेरी बताते हैं वह बड़े बड़े देवताओं से भी होती है। और फिर हम दोनों शादी कर लेंगे। मैं हरिजन हूँ, पर हूँ तो पढ़ा लिखा। मेरे पास धन नहीं है, पर हृदय तो है। मैं आप से भीख माँगता हूँ, मधुप मुझे दे दो। यदि मधुप मुझे न मिली तो मैं आजन्म अविवाहित रहूँगा।"

करुणा और वीभत्स के इस भयङ्कर दृश्य में मधुप की माँ भी आ पहुँची। लक्ष्मण के निरन्तर बहते हुए आँसुओं से उसका हृदय उमड़ आया! वह रुद्ध कण्ठ से बोली— "तूने मेरी बेटी की ज़िन्दगी बर्बाद कर दी, तुझ पर दया करना पाप है।"

लक्ष्मण— "मुझ पर दया मत करो, पर अपनी बेटी मधुप पर तो दया करो, वह मेरे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकती।"

कैलाश— "जब तू नहीं रहेगा तो उसे सब समझा लेंगे। दुनिया अगर सुने कि कैलाश की क्वारी बहिन को लक्ष्मण चमार का [illegible] है तो हमारी ही नहीं, सारी जाति की नाक कट जायेगी। नूरे! काट डाल इसकी बोटी बोटी।"

कैलाश ने लक्ष्मण के हाथ पकड़े, घनश्यामदास ने पैर और नूरे का छुरे वाला हाथ उस पर उठा। लक्ष्मण के मुँह से निकला— "मधुप!" और फिर सदा के लिये मौन हो गया।

खून में लथपथ लाश बोरी में भर कैलाश ने अपनी कार में रक्खी और रात्रि के बारह बजे के सन्नाटे में रेल की पटरियों के किनारे किनारे दस कोस चलने के बाद पटरियों पर लाश डाल दी। खून में लाल खाली बोरी लेकर वह घर लौटा।

"बोरी को जला दो!" घनश्यामदास ने कैलाश से कहा।

"पर माथे पर जो खून लग चुका है वह तो चिता की आग में भी

नहीं जल सकता।" प्रतिध्वनि में हत्या के पाप से कम्पित घर की दीवारों ने कहा।

बोरी जला डाली। ज़मीन पर लगे हुए रक्त के धब्बे रगड़ रगड़ कर धो दिये। और फिर सवेरे लेडी डॉक्टर देवकारानी के घर घनश्यामदास जा पहुँचे। देवकारानी अभी अविवाहित थी, उसकी आयु अभी लगभग चौबीस वर्ष की होगी। शिक्षित और सुन्दर देखकर अनुमान था कि यह सौम्य भी इतनी ही होगी।

"मुझे आप से एकान्त में कुछ बातें करनी है" घनश्यामदास ने देवकारानी से कहा।

देवकारानी घनश्यामदास के साथ अपने दूसरे कमरे में चली आई। गद्देदार कुर्सी पर बैठती हुई डॉक्टर ने कहा— "कहिये!"

घनश्यामदास— "मेरी लड़की अभी अविवाहित है और वह ...."

देवकारानी— "यह बात तो आजकल सभ्यता में शामिल हो चुकी है। परेशान क्यों होते हो? सेठ जी! उसी लड़के से शादी कर दीजिये।"

घनश्यामदास— "मेरी इज़्ज़त धूल में मिल जायेगी!"

देवकारानी— "और इस तरह लड़की की ज़िन्दगी धूल में मिल जायेगी।"

घनश्यामदास— "नहीं डॉक्टर! मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, जैसे भी हो मेरी इज़्ज़त बचा लीजिये! जितना रुपया भी ज़रूरत हो मैं खर्चने को तैयार हूँ।"

रुपए का नाम सुनते ही देवकारानी उपदेशिका से व्यवहारिका में बदल गईं। उन्होंने बातचीत का ढंग बदलते हुए कहा— "मैं यह काम करती तो नहीं हूँ, और कोई दूसरा होता तो अभी पुलिस को

टेलीफोन कर देती। लेकिन खैर, आप कहते हैं तो कर दूँगी। इसका उपाय ऑपरेशन के अलावा कुछ नहीं है। आपको पाँच हज़ार रुपये देने होंगे। रुपये जमा कर दीजिये। मंगल को ऑपरेशन कर दूँगी।"

घनश्यामदास— "ऑपरेशन कहाँ करेंगी? किसी को मालूम तो नहीं होगा!"

देवकारानी— "आप चिन्ता न करिये! मंगल को दोपहर में दो बजे आप लड़की को ले आयें। मैं अपने प्राइवेट कमरे में ऑपरेशन कर दूँगी। क्लोरोफार्म देने के लिये किसी डॉक्टर को तो बुलाना ही पड़ेगा। शाम को आप लड़की को घर ले जायें।"

घनश्यामदास— "जैसे आप ठीक समझें। ये लीजिये पाँच हज़ार रुपए और मंगल को दोपहर में दो बजे!"

मंगल को दोपहर के दो बजे मधुप को ऑपरेशन की मेज़ पर लिटा दिया। कैलाश और घनश्याम बाहर टहलते रहे। भय तथा भय दूर होने की भावना में उनके हृदय काँप रहे थे। वे बार बार ऑपरेशन रूम के दर्वाज़े तक जाते और भावुकता की दौड़ धूप कर फिर अपने स्थान पर आ खड़े होते। लगभग बीस मिनट बाद देवकारानी घबराई सी ऑपरेशन रूम से बाहर निकली। दूसरे कमरे में जा शीघ्र ही उसने दवाइयों की आलमारी खोली, कोई इंजेक्शन निकाला और फिर ऑपरेशन रूम की तरफ चली। जाती हुई डॉक्टर से कैलाश ने पूछा— "क्या ऑपरेशन हो गया?"

"हाँ" कहती हुई डॉक्टर ऑपरेशन रूम में घुस गई।

थोड़ी देर बाद डॉक्टर देवकारानी थकी हुई सी बाहर आई। कैलाश और घनश्यामदास उत्सुकता से पास आ खड़े हुए— "क्या हाल है?" दोनों ने एक साथ ही कहा।

डॉक्टर— "ऑपरेशन तो हो गया है। पर इनके रात भर पैनिसिलिन के इंजेक्शन लगेंगे।"

डॉक्टर के शब्दों में संकोच सा था। घनश्यामदास ने घबराते हुए पूछा— "कुछ ख़तरा तो नहीं है?"

डॉक्टर— "अभी तो कुछ लगता नहीं, आप कार में लड़की को घर ले जाइये।"

कार में डाल कर मधुप को घर ले आये। रात भर उसके इंजेक्शन लगते रहे और वह तड़पती रही। सबेरे पाँच बजे मधुप की माँ जब ग्लूकोज़ का पानी बेटी को दे रही थी, भाई और बाप जब गहरी चिन्ता में पड़े अपने पाप पर पछता रहे थे, तो मधुप ने निराशा का तूफान उड़ेलते हुए कहा— "मैं अब बचूँगी नहीं। आप सब मुझे क्षमा करना! लक्ष्मण कहाँ है? मेरे बाद कहीं उसकी ज़िन्दगी बिरान न हो जाय! विकास! देख लिया तुमने सत्य का परिणाम। प्रेम पाप बन कर मुझे धिक्कार रहा है। माँ! अब मैं नहीं बचूँगी। पिता जी! आपकी इज़्ज़त अब बची रहेगी।"

कहते कहते मधुप बहकने लगी। "देखो आग जल रही है, मैं जलती भट्टी में जली जा रही हूँ। मुझे बाहर ले चलो! ठण्डी ठण्डी हवा में घुमा दो! लक्ष्मण! विकास! माँ! मेरे कपड़े लाओ, मैं पहनूँगी।"

घनश्यामदास— "कैलाश! डॉक्टर को फिर जल्दी बुलाओ, इसकी हालत तो ख़राब होती जा रही है।"

माँ— "अब डॉक्टर को बुलाकर क्या करोगे? यह तो दस पाँच मिनट की मेहमान है। पुतलियाँ ठहरने लगी हैं। हा! मेरी बेटी! ज़बान तुतलाने लगी! अब इसमें क्या रक्खा है!"

तीन हिचकियाँ आईं और हंस उड़ गया। माँ पागल सी हो गई, "तुमने खाया है इसे, तुमने! बाप भाई होकर उसे डस गये!"

बाप और भाई मौन खड़े सोच रहे थे कि इससे तो मधुप की लक्ष्मण से शादी ही हो जाती। हे ईश्वर! यह हमने क्या कर डाला!

क्षण भर में रोना पीटना मच गया और घर में भीड़ भर गई। विकास के कानों में भी मधुप की मृत्यु की खबर पहुँची। वह दुःख से कराह उठा— "यह क्या हुआ? मधुप! मैंने ही तुम पर अत्याचार किया है। मैं तुम्हें सत्य का सन्देश न देता तो शायद तुम न मरतीं! प्रेम और वासना को अलग अलग देखने वाले हत्यारे होते हैं। प्रेम और प्रणय में अन्तर और सामंजस्य खोजना विलीनता है। तुम कितनी सुन्दर थीं मधुप और कितनी भोली! आह! संसार का सत्य भी खून का कितना प्यासा होता है। प्रेरणा! क्या कर रही हो? सुनो यहाँ आओ! तुम्हारी मधुप अब दुनिया में नहीं रही।"

प्रेरणा घबराई हुई कमरे से बाहर निकल कर बोली— "क्या कहते हो? क्या सच! कहीं उसने आत्महत्या तो नहीं कर ली?"

विकास— "मुझे ऐसा लगता है कि उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मौत एक रहस्य जान पड़ती है। आज लक्ष्मण ग्लानि से मरा जा रहा होगा।"

प्रेरणा की आँखों से आँसू बरस पड़े। "मधुप! तू कितनी अच्छी थी! कौन जानता था कि दो ही दिन में तू दुनिया से चली जायेगी। चलो नाथ! उसकी मिट्टी में शामिल होने चलें।"

विकास— "नहीं प्रेरणा! हमारा वहाँ जाना ठीक नहीं। क्या तुम भावुकता में यह भूल गईं कि हम समाज की आँखों में अछूत हैं।"

प्रेरणा— "कैलाश और घनश्याम इस समय घोर दुःख में होंगे। और जब कोई दुःख में होता है तो वह किसी से घृणा नहीं करता। जब किसी की मृत्यु होती है तो सबके सामने सत्य ही रहता है। ऐसे समय में अछूतपन का असत्य किसके सामने होगा?"

विकास— "यह संसार है प्रेरणा ! जहाँ कुछ भी असम्भव नहीं, जहाँ लाश के ऊपर नृत्य के बिछुवों की झनकार झूमती है। तुम समझती हो शव के समय सबके सामने सत्य रहता है, पर दुनिया में वे भी हैं जो लाश के सामने दुःखों से छटपटाते हुए सगों को ठोकरों से मारते हैं और मारते हैं मृतक आत्मा की भावनाओं पर चोट ! कौन सा ऐसा पाप है जो मनुष्य नहीं करता !"

प्रेरणा— "पर पाप मनुष्य को सत्य दिखा देता है। सत्य से ऊबा हुआ प्राणी जब पाप की शरण लेता है तो पाप उसे भटक कर पुण्य के पास पहुँचाता है। पाप भी सत्य तक पहुँचने का एक साधन है। पुण्य का सत्य पाप की सीढ़ियों पर चढ़कर दिखाई देता है। पाप ही पापी के लिये प्रकाश है।"

विकास— "तुम ठीक कहती हो प्रेरणा ! पाप भी अपने आप में कितना पूर्ण होता है ! जब मनुष्य को पुण्य का आदर्श बोझल हो जाता है तो पाप की शरण में ही उसे शान्ति मिलती है।"

विकास और प्रेरणा मन्थन से पाप और पुण्य का सत्य निचोड़ रहे थे कि मधुप की अर्थी उनके घर के सामने से निकली। प्रेरणा ने दुःख से कराहते हुए कहा— "हम सोचते ही रहे और अर्थी चल भी दी। वाह री दुलहन !"

विकास— "पता नहीं कितने सोचते ही सोचते रह जाते हैं और अर्थी चल भी देती है !"

प्रेरणा— "पर बड़ी जल्दी ले गये लाश को !"

विकास— "लाश तो जल्दी लेजाकर जला दी जाती है, पर स्मृति कभी नहीं जलती। पाप की पीड़ा का दाग़ चिता में नहीं जलता। हृदय के दाग़ से जलता रहता है जीवन !"

प्रेरणा— "तो फिर किस समय चलोगे मधुप के घर !"

विकास— "अब मधुप का घर कहाँ पगली! लोक प्रथा और मनुष्यता के नाते कैलाश के घर चलना अवश्य चाहिये। शाम को लगभग सात बजे चलेंगे, आशा है उस समय वहाँ और लोग नहीं होंगे। मैं मधुप की मृत्यु का रहस्य जानना चाहता हूँ, और यह एकान्त में ही सम्भव है।"

"लो अखबार आ गया प्रेरणा! अब अखबार पढ़कर ही नहायेंगे।" अखबार वाले के हाथ से अखबार लेते हुए विकास ने कहा, और फिर फ़क पड़ गया उसका मुँह! शीर्षक पढ़ते ही उसने परेशान होकर 'प्रेरणा! प्रेरणा!!' कहते हुए दुबारा ज़ोर ज़ोर से शीर्षक पढ़ना शुरू किया।

"एम॰ ए॰ के होनहार हरिजन विद्यार्थी लक्ष्मण ने रेल के नीचे दबकर आत्महत्या कर ली।" "मृत्यु में प्रणय का अद्भुत रहस्य! प्रेमिका पहिले मरी या प्रेमी!"

'लक्ष्मण की लाश रेल की पटरियों के बराबर कटी फटी आज रात ग्यारह बजे पुलिस को मिली।'

इतना अंश पढ़ते ही विकास ने कहा— "कहीं दोनों ने आत्महत्या ही तो नहीं कर ली प्रेरणा!"

"कुछ कहा नहीं जा सकता।" प्रेरणा ने आगे अखबार पढ़ते हुए कहा।

विकास— "बड़ा अनर्थ हो गया! शाम को कैलाश के घर चलेंगे, शायद कुछ रहस्य खुले।"

शाम को विकास और प्रेरणा कैलाश के घर पहुँचे। कैलाश तथा घनश्यामदास सर झुकाये रो रहे थे। पास ही बैठी माँ पागल की तरह प्रलाप कर रही थी। आस पास बैठे पड़ौसी एवं कुछ हमदर्दी ज्ञानोपदेश कर रहे थे, और साथ ही कर रहे थे मधुप की प्रशंसा।

प्रेरणा ने अपने मन में कहा— 'मरने के बाद ही किसी की खूबियों का पता चलता है।' विकास ने सोचा— 'क्या वास्तव में संसार की सुन्दरता मृत्यु ही है?'

सोचते और विचारते हुए प्रेरणा तथा विकास भी मूक बैठे सहानुभूति प्रकट करते रहे। लगभग नौ बजे तक मृत्यु की चर्चा एवं मधुप की प्रशंसा होती रही, और फिर चल दिये हमदर्द अपने अपने घर, वहाँ केवल प्रेरणा और विकास रह गये।

जब सब चले गये तो विकास ने भी कहा— "अच्छा अब चलें!"

कैलाश और घनश्यामदास की आँखों से आँसू निकल पड़े। उन्होंने रोते हुए कहा — "विकास! तुम हमें क्षमा करो, हमने तुम्हारे साथ बहुत बुराइयाँ की हैं। हमारे ही पापों से लाला धन्नोमल मरे, हमने ही तुम्हारा जाति बहिष्कार किया, और हम ही अब अपनी बेटी को खा गये।"

कहते कहते वे और फूट फूट कर रोने लगे। रुदन देखकर प्रेरणा के भी आँसू निकल पड़े। विकास ने गम्भीरता से कहा — "धीरज रक्खो! धैर्य धरने से ही काम चलेगा। यहाँ किसी का बस नहीं चलता, सब्र ही करना पड़ता है।"

घनश्यामदास— "हम अपने पाप-कर्मों से फुके जा रहे हैं। जी चाहता है सर फोड़ फोड़ कर मर जायें।"

'लेकिन मरना इतना सरल नहीं। भयङ्कर दुःखों में भी मनुष्य जीने की इच्छा रखता है। भावावेश में आत्महत्या करना भी किसी बिरले ही का काम है!' विकास ने मन ही मन में कहा और फिर व्यवहारिक भाषा में बोला— "जो होना था सो हो लिया अब सब्र ही रखने से काम चलेगा।"

घनश्यामदास— "मरा मुझ से जा नहीं रहा और जीना मरने से बदतर हो रहा है। मुझे इस दुनिया का विधान चिता की ज्वाला से भी

भयंकर लगता है। लोक लज्जा की हत्यारी आकांक्षा आज मुझे ज़िन्दा जला रही है। हम ऐसा भयंकर पाप कर बैठे हैं जिसका कोई प्रायश्चित नहीं दीखता। मैं सबेरे से तुम्हें बुलाने की सोच रहा था विकास! और चाहता था कि तुम से सब सच सच कह दूँ और फिर ढोल पीट पीट कर कह दूँ सारे संसार से। सुनो विकास! हमने ही लक्ष्मण की हत्या की है, और हमारे ही हाथों मधुप मारी गई। मैं यह बात चीख चीख कर कहना चाहता हूँ।"

सुनते ही विकास और प्रेरणा सुन्न हो गये। उनके हृदय में घनश्यामदास और कैलाश के प्रति घोर घृणा जाग उठी, पर साथ ही वे उनके दुःख से पिघले भी। समय और परिणाम को देखते हुए प्रेरणा ने कहा— "मेरी राय है जो हो चुका उसे चुपचाप पी जाओ, दुनिया में रहना है, ज़बान पर ताले लगालो!"

कैलाश— "पर दुनिया की ज़बान पर ताले कोई नहीं लगा सकता। सच्चाई छिपती नहीं। दुनिया चाहे हमारे सामने कहती नहीं, पर समझती सब है। यह बात भी पंख लगा कर उड़ चुकी है कि हमने पुलिस को दस हज़ार रुपये देकर आज जान बचाई। मैं आज आत्मग्लानि से मरा जा रहा हूँ। मुझे आज स्वयम् से घृणा हो रही है। मैं अब सत्य ही बोलूँगा, जीवन भर सन्यासी रहूँगा, मैंने घोर पाप किया है।"

विकास— "देखो प्रेरणा! संसार में कोई किसी से प्रतिशोध लेने का षड्यन्त्र व्यर्थ ही करता है! ये अपने किये पर आज जितना भोग रहे हैं क्या उससे अधिक प्रतिशोध कोई ले सकता है? ये जितने दुखी हैं क्या उस से अधिक दुःख कोई है? आत्मग्लानि सब से बड़ा सत्य और दुःख है।"

प्रेरणा— "संसार में दुखी और दुःख का अन्त नहीं नाथ! इन्हें किसी तरह शान्ति मिलनी चाहिये।"

सहसा प्रभात ने वहाँ प्रवेश करते हुए कहा— "इन्हें शान्ति सत्य से नहीं मिलेगी, पाप में मिलेगी। संसार में पाप ही सत्य है और पुण्य झूठ। ये पापी हैं इसमें भी मुझे सन्देह है। पाप तो उस समाज का है जो इन्हें जीने न देता।"

प्रभात को देखते ही विकास चौंक कर खड़ा हो गया, आश्चर्य करते हुए उसने कहा— "अरे प्रभात! तुम, क्या अभी आ रहे हो गाँव से?"

प्रभात— "लगभग घण्टा भर हो गया, शकुन भी मेरे साथ आई है। घर पर प्रेरणा की माता जी से मैंने मधुप की सारी कहानी सुन ली। बहुत ही अच्छा हुआ जो दोनों इस पापी संसार से चले गये, यह दुनिया उनके रहने के लिये नहीं बनी, यह स्वार्थी, हत्यारों और धनवानों के लिये है। दुनिया में मृत्यु का साम्राज्य है, प्रेम का नहीं। प्रेम करने वालों को मृत्यु के आगे जीवन की भेंट चढ़ानी पड़ती है!"

विकास— "धनवानों, हत्यारों और स्वार्थियों को ही क्या दुनिया में शान्ति मिलती है? घनश्यामदास ने ये तीनों कर्म भोगे हैं। पर देखते हो इनकी दशा, इन्हें अपने से ग्लानि हो रही है।"

प्रभात— "ग्लानि में गलने वाले कायर होते हैं, और भोगते हैं दुःख। किसी भी पाप का भागी व्यक्ति स्वयम् नहीं होता। इनके पाप का उत्तरदायित्व भी समाज पर है, अगर इन्हें समाज का डर न होता तो क्या ये आज हाथ मल मल कर रोते!"

घनश्यामदास— "हमने निश्चय कर लिया है कि अब हम दुनिया से छिपा कर कुछ काम नहीं करेंगे।"

विकास— "यह सब भावुकता है। आज का निश्चय आज ही स्थिर नहीं रहता, कल की तो बात ही क्या है!"

प्रभात— "पाप का सत्य मिटाने वाले ईश्वरीय-सिन्धु की छाती पर पाप सदैव तैरता रहा है और तैरता रहेगा।"

घनश्यामदास— "जीवन कितना भंगुर होता है! फिर भी न जाने कौन सी प्रेरणा पाप की ओर पकड़ कर खींचती है। मैं तो मधुप की मृत्यु से जीवन का सत्य पा गया हूँ, अब कभी कोई पाप नहीं करूँगा।"

कैलाश— "और मैं भी जीवन भर सच के रास्ते पर चलूँगा, ब्रह्मचारी रह कर ईश्वर के नाम की माला जपूँगा। यह सारी सम्पत्ति दीन दुखियों की सेवा में लगा दूँगा!"

विकास— "तुम पश्चाताप के शोक में पागल हो रहे हो। दुनिया में दुनियावालों की तरह रहो।"

कैलाश— "यह पागलपन नहीं, हृदय से उठती हुई आवाज़ है। मैं एक ऐसा समाज बनाऊँगा जिसमें दुखी के आँसुओं को अवलम्ब होगा।"

प्रभात— "जैसी स्थिति में तुम हो ऐसी स्थिति में न जाने कितने युगों से यही कहते चले आये हैं! पर सत्य का यह स्वप्न पल भर भी नहीं टिकता। अब आप शान्ति और धैर्य से सोचिये, नहीं तो दुनिया तुम्हारे शोक का उपहास करेगी। पाप की पीड़ा जब प्रलाप बन कर बिखरती है तो दुनिया अट्टहास की फुलझड़ियों पर चिनगारियों से खेलती है।"

और फिर प्रेरणा की तरफ देखते हुए कहा— "चलो भाभी! घर चलें, बहुत सी नयी समस्यायें खड़ी हो गई हैं।"

प्रेरणा— "जीवन में एक समस्या सुलझती नहीं कि दूसरी खड़ी हो जाती है। समस्या ही तो संसार है!"

प्रभात— "नहीं भाभी! समस्या संसार नहीं, ईश्वर है जो आज तक ऋषि मुनियों के पृष्ठों पर भी स्पष्ट न हो सका।"

विकास— "अच्छा अब चलें, आप धैर्य रक्खें, हम आते रहेंगे! अपना दुःख मन में दबाये रखना, ओठों तक न आये।"

सान्त्वना के शब्द छोड़ प्रेरणा, विकास और प्रभात उदास मुद्रा में बातें करते हुए चल पड़े।

प्रेरणा— "पाप तो कर बैठे, पर अब बहुत दुःख में हैं बिचारे!"

प्रभात— "पाप भी उन्होंने नहीं किया, समाज के पाप की स्याही उन के सर चढ़ी हुई है। यदि उन्हें समाज का भय न होता तो क्या वे आज हत्यारे होते? हमें इस समाज को बदलना होगा। और इस समाज को बदलने के लिये बहुत से बलिदान होंगे। न जाने कितने इसी प्रकार भेंट चढ़ चुके हैं! समाज का खूनी रूप देखना है तो कवियों की तड़पती हुई लेखनी के उन विषयों में देखो जो श्मशान में आँसुओं की बाढ़ पर जल रहे हैं। समाज का अर्थ सुख है, पर रूढ़ि की रीतियों एवं स्वभाव के सत्य की ऊँचाई ने उसे दुःख बना दिया है।"

विकास— "सुख से दुःख और दुःख से सुख यह तो संसार का क्रम है। पर देखना तो यह है कि समाज का सत्य कभी असत्य होता भी है या नहीं, या हम अपने स्वभाव से समाज को देखते हैं।"

प्रभात— "हाँ, हम अपने स्वभाव से समाज को देखते हैं, लेकिन प्रश्न तो यह है कि स्वभाव का सत्य समाज से स्थायी है, और स्वभाव के अनुसार जो व्यक्ति का पाप होता है वह समाज के स्वप्निल सत्य का ही दोष होता है। अतः समाज को स्वभाव की सीढ़ियों पर चढ़ा कर सत्य दिखाना होगा।"

विकास— "सत्य स्वयम् भी देखेंगे और समाज को भी दिखायेंगे। अब यह बताओ कि क्या समस्यायें खड़ी हो गई हैं।"

प्रभात— "बापू भयंकर आपत्तियों में हैं, गाँव में तूफ़ान उठ खड़े हुए। धूमसिंह ने चारों तरफ आग लगा रक्खी है। उसने शकुन की माँ रामप्यारी को भड़का कर अपना सहयोगी बना लिया है। वे आजकल

गाँव में ही रहती हैं, उनके पति पद्म प्रकाश अब गाँव में अपनी ज़मीन आप ही बुवाने लगे हैं। उनकी सरकारी नौकरी की अवधि पूरी हो चुकी। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ चुकी कि बापू को आते जाते लोग गालियाँ तक देते हैं। सारा गाँव उन के विरुद्ध हो गया है। उन पर इस सारी आपत्ति का कारण मेरा और शकुन का प्रेम है। हर संस्था में हम बदनाम हो चुके हैं, सिर्फ ज्योति और हमारी बुद्धि ही हमारी अपनी हैं। जब कोई चारा न चला तो मैं और शकुन घर छोड़ यहाँ चले आये।"

विकास— "यह तुमने अच्छा नहीं किया। तुम यहाँ चले आये और वहाँ सब बापू के पीछे पड़े हुए होंगे! जिस बापू की गाँव वाले पूजा करते थे आज हमारे ही कारण वे बुढ़ापे में घृणा सह रहे हैं। जिसने गाँव को स्वर्ग बनाया आज वही गाँव उनके लिये आग बन गया। हमें गाँव चल कर कैसे न कैसे यह आग बुझानी ही चाहिये। क्यों प्रेरणा!"

प्रेरणा— "मेरा तो गाँव में रहने का बहुत दिनों से मन है, और फिर इसलिये चलना तो धर्म हो जाता है।"

प्रभात— "पर जो आग बुझाने आप चलना चाहते हैं वह बुझाने से और अधिक दहकेगी। मैं न जाने कितने आँसू धधकती आग पर बरसाता रहा, पर वह न बुझी। तर्क से समझा समझा कर हार गया पर दुःख समझने के लिये कोई तैयार ही नहीं हुआ।"

प्रेरणा— "दुःख कोई तब तक नहीं समझता जब तक स्वयम् पर नहीं बीतती।"

विकास— "मनुष्य को यदि प्रेम से समझाया जाये तो वह मान जाता है। पर समझाने वाला सच्चा होना चाहिये। कहीं तुम्हारे हृदय में किसी असत्य का वास तो नहीं है प्रभात!"

प्रभात— "करनी में नहीं, किन्तु कथन में है, और कथन में भी इसलिये कि दुनिया झूठ सुनना चाहती है।"

विकास— "दुनिया असत्य सुनने की आदी नहीं होती, मनुष्य अपनी दुर्बलतावश झूठ बोलता है।"

प्रभात— "मनुष्य झूठ तभी बोलता है जब सत्य से भी हत्या का पाप होने लगता है।"

विकास— "यह केवल तुम्हारे मन का सत्य हो सकता है, क्योंकि तुम कवि हो।"

प्रभात— "मैं कवि हूँ, यही तो विडम्बना है। असीमित आकांक्षाओं ने मुझे बन्दी बना रक्खा है। महत्त्वाकांक्षाओं की ओर दौड़ता हुआ मैं स्वप्नों को सत्य करना चाहता हूँ। पाप के अन्दर घुस कर लालसा में छटपटाता हुआ सत्यों को खोज कर लाता हूँ, तिरस्कार और निर्धनता को स्वाभिमान में छिपाये प्यार के फूल लिये फिरता हूँ, पर नोच डालते हैं उन्हें क्रूर हाथ। मैं अपने आपको बहुत बड़ा समझता हूँ, किन्तु स्वयं को बहकाने के अतिरिक्त मुझे मिलता ही क्या है! शून्य में आँसुओं का महल बना कर मैं स्वप्नों की प्रतीक्षा करता हूँ, पर क्या कभी वे पूरे होते हैं! एक दीपशिखा हर वक्त हृदय में जलती रहती है। संसार की धींगामस्ती में कवि कितना तुच्छ है यह मैं ही समझता हूँ। कभी कभी तो जी चाहता है कि काव्य से सन्यास ले लूँ!"

विकास— "तुम्हारी कहानी रहस्य ही बनी रहेगी। संसार के लिये कवि का सत्य कड़वा अमृत है। क्यों पागल बन कर प्यार करने को भटकते हो? इस भंगुर संसार में कौन है जिसे प्यार भेंट किया जाये।"

प्रभात— "तुम्हें यह कहना अच्छा लगता है, क्योंकि तुम्हारे जीवन में प्यार का अभाव नहीं।"

विकास— "उपालम्भ न दो प्रभात! प्रेरणा तुमसे भी उतना ही स्नेह करती है जितना कि मुझसे।"

प्रभात— "पर प्रणय की एक बूँद भी यदि वह मुझे देने लगी तो तुम मुझे शत्रु समझने लगोगे।"

विकास— "मैं यह भी सहन कर सकता हूँ किन्तु तुम्हारी तृप्ति तब भी न होगी।"

प्रेरणा— "यह तर्क छोड़िये स्वामी! प्रभात बहुत भावुक है। वह इतना अतृप्त है कि संसार से उसकी तृप्ति नहीं हो सकती। सबेरे गाँव चलना है न! अब कुछ खा पीकर सो जाइये।"

"आओ प्रभात! कुछ खा लें" विकास कहते हुए खाने के कमरे में प्रभात को लेकर आये। कुछ खा पीकर सोचते सोचते सब सो गये। और फिर प्रातः पाँच बजे उठ कर प्रेरणा, प्रभात, शकुन और विकास ने गाँव की राह पकड़ ली।

* * *

जब ये सेवागाँव पहुँचे तो देखा कि बापू का घर जला पड़ा है और बापू एक जर्जर खाट पर पड़े घर के अतीत को राख के ढेर में टटोल रहे हैं। गुलाब और बच्चे मकान के अधजले कोठे में इधर से उधर टहलते हुए गहरी चिन्ता में हैं। विकास, प्रेरणा और प्रभात दौड़ कर बापू के पास पहुँच एक ही साथ बोले— "यह क्या हुआ बापू!"

बापू— "कोई नयी बात नहीं हुई बेटा! निर्माण और नाश यही तो सृष्टि का क्रम है! हमारे सुख के दिनों की आयु बीत चुकी। घर जलने का मुझे दुःख नहीं, दुःख बुढ़ापे की लाठी का है, तेरी माँ की हड्डियाँ भी इसी आग में जल कर राख हो चुकी हैं।"

सब के मुँह से एक ही साथ निकला— "क्या! माँ भी अब इस दुनिया में नहीं हैं! माँ! तुम कितनी अच्छी थीं माँ! यह क्या हो गया बापू! माँ के मरने से तो जीवन की रोशनी ही बुझ गई।" कहते कहते

प्रभात और विकास फूट फूट कर रोने लगे। रोते हुए दोनों के मुँह से निकला— "क्या मरण ही सत्य है! कितने चाव थे माँ के मन में! कितने संकल्प थे उसके! और हम क्या क्या करना चाहते थे माँ के प्रति! आज सब बातों की धूल हो गई।"

बापू— "धूल का खिलौना था जो धूल में मिल गया बेटा!"

विकास— "आखिर यह सब हुआ कैसे?"

बापू— "क्रोध की आग से। दुनिया दूसरे का घर जलता देखकर खुश होती है न! मेरा घर जलाकर आज गाँव वालों को शान्ति मिली होगी! प्रेम का पाप प्रकट होकर आज मुझे शान्ति दे रहा है। देखो, यह है दुनिया का तमाशा।"

प्रभात— "गुलाब! तुम ही साफ साफ बताओ कि हुआ कैसे?"

गुलाब— "यह तो पता नहीं कि आग किसने लगाई, पर अनुमान यह है कि सब धूमसिंह की करतूत है।"

प्रभात— "वह बड़ा ही नीच है, ऐसे आदमी को तो चौराहे पर फाँसी दे देनी चाहिये।"

बापू— "फाँसी देना मेरे और तुम्हारे हाथ में नहीं है। कहते हैं कर्मों का फल मिलता है। उस समय की प्रतीक्षा करो बेटा! पर फाँसी से भी बड़ा दण्ड दोषी के लिये आत्मग्लानि है। यदि तुम कर सको तो उसका हृदय परिवर्तन कर दो, इससे तुम्हें भी शान्ति मिलेगी और उसे भी।"

प्रेरणा— "बापू ठीक कहते हैं, हमें यथार्थ के लिये यत्न करना चाहिये। दोषी को दुतकारने से उसमें दोष और बढ़ते हैं। पर यदि प्यार और सहिष्णुता से समझाया जाये तो किसी दिन वह समझ भी सकता है।"

विकास— "समझाने के लिये सत्य के साथ ही साथ शक्ति की भी आवश्यक है।"

प्रेरणा— "सत्य के साथ अतुल शक्ति रहती है।"

प्रभात— "पर प्रयोग में सत्य केवल प्रदर्शन ही के लिये होता है। यह दुनिया बड़ी विचित्र है। उसे सत्य में शान्ति है, न असत्य में; यहाँ केवल स्वार्थ-पूर्त्ति ही सत्य है। फूक दो आदर्शों की कहानियाँ, मैं इनसे ऊब चुका हूँ। दुनिया की आँखों में धूल झोंको और मूछें पैनाते रहो, यही संसार का सत्य है। जीवन में जब भी मैं सत्य के सहारे रहने का यत्न करता हूँ, तभी मुझे जीवन का उपहास सहना पड़ता है। सत्य सन्यासियों की समाधियों का विषय हो सकता है, दुनिया के जीवन का नहीं। देखते हो सत्य के शोलों से जला बापू का घर! मुझे क्रोध आ रहा है विकास! आह निकल कर कहती है कि नाश हुंकार उठे। तुम ही बताओ कि क्या उस दुनिया के साथ भलाई की जाये जो भलाई करने वाले पर भी गोली चलादे! यह ऐसी ही दुनिया है।"

बापू— "भावुकता में भूलो मत प्रभात! भलाई भलाई ही है और बुराई बुराई ही है।"

प्रभात— "पर भलाई को लोग भूल जाते हैं और बुराई को भूलते नहीं।"

बापू— "भलाई करके भूल जाना ही गौरव है। और बुराई तो करने वाले को ही जलाती है। इसलिये भलाई करो और भूलो!"

बातें हो ही रही थीं कि गाँव की पंचायत के चपरासी ने आकर कहा— "शकुन की माँ रामप्यारी ने प्रभात और बापू के विरुद्ध शकुन को ज़ेवर सहित लेकर भगाने का अभियोग लगाया है। पंचायत में मुक़दमा कल दोपहर को दो बजे होगा। आप अपने प्रमाणों सहित आयें।"

कह कर चपरासी चला गया और ये सब कुछ पल मौन रह फिर बातें करने लगे। लेकिन अब इनकी बातों का विषय पंचायत में मुक़दमा बन गया। विकास ने कुछ परेशान होकर कहा— "प्यार जो जीवन का सत्य है उसे पाप मान पंचायत मुक़दमा करेगी। और यह जो घर जलाया है, माँ की हत्या की है, इसका मुक़दमा कौन करेगा ?"

प्रेरणा— "ईश्वर।"

विकास— "जब मनुष्य हार जाता है तो वह या तो 'हाय हाय !' करता है या 'ईश्वर ईश्वर !' और फिर या वह यह कह कर सन्तोष कर लेता है कि होनी ही ऐसी थी। अपनी पराजय को होनी कह कर शान्ति मानना कायरों का काम है। हमें हर बात का शक्ति से सुधार करना चाहिये।"

प्रेरणा— "क्या सत्य से बड़ी भी कोई शक्ति है स्वामी !

विकास— "पर सत्य क्या है यह भी बार बार सोचना पड़ता है।"

प्रेरणा— "सत्य में सन्देह उसे होता है जो असत्यों से हार मान लेता है।"

बापू— "इन बातों को फिर किसी समय करना, अब तो पहिले पंचायत की बात सोचो !"

प्रभात— "पंचायत की चिन्ता आप बिल्कुल न करिये ! मैंने सब सोच लिया है। आपने मेरे लिये सब कुछ सहा है, अब आगे मैं स्वयम् सँभाल लूँगा।"

बापू— "क्या सोचा है ? क्या सँभाल लोगे बेटा !"

प्रभात— "यही कि पंचायत में मैं अकेला जाऊँगा।"

विकास— "तुम पागल हो प्रभात !"

प्रभात— "पागल क्या कभी किसी दूसरे की बुद्धि से सोचता है!"

अब शकुन मौन न रह सकी, उसके आँसू निकले और क्रोध आया! काँपती हुई साहस से बोली— "मैं आपके साथ पंचायत में अवश्य चलूँगी। और मैं कहूँगी कि मैं स्वतन्त्र हूँ, अपनी इच्छा से इनके साथ हूँ। आज माँ मुझ पर दया करने आई हैं और जब एक एक रोटी पर ताना देती थीं तब पंचायत ने मुक़दमा नहीं सुना।"

प्रभात— "मौन रहो शकुन! मैं तुम्हारे मुँह से माँ के लिये एक भी शब्द नहीं सुनना चाहता। माँ कभी बुरी नहीं होती, उसे बुरी बनाया जाता है। माता पिता के ऋण से औलाद कभी उऋण नहीं होती, मैं तुम्हारी माँ का बहुत सम्मान करता हूँ, इसलिये कि हृदय यदि कहीं है तो माँ के ही पास।"

शकुन का प्रेम प्रभात के प्रति और बढ़ गया। वह मौन हो गई। अपनों से आत्मा और रक्त का नाता होता है।

एक तरफ पंचायत का तूफान और दूसरी तरफ जला हुआ घर, एक ओर स्नेह और दूसरी ओर ज्वाला। आग बुझायें, राख इकट्ठी करें या बीती बातें याद करके रोयें!

गुलाब और बालकों ने मिलकर अधजले कमरे साफ़ किये। धूप तेज़ हो गई थी, सब उन तपे कमरों में ज़मीन पर पड़ गये। रात तक बिचारे गाँव के भंगी, चमार, किसान आदि बापू के पास सहानुभूति प्रकट करने आते रहे। पर समाज के धुरन्धर बड़ी बड़ी मूछों वालों में से कोई भी नहीं आया। रात भर रोते और चर्चा करते करते प्रातः सबकी आँखें लग गई। सबेरे जब सूर्य की किरणों ने उन्हें जगाया तो देखते क्या हैं कि ज्योति उनके सामने टोकरी में खाना लिये खड़ी है। शकुन ज्योति को देखते ही उससे चिपट कर रो पड़ी। ज्योति की आँखों से भी आँसू बह चले। आँसू पूँछ शकुन को हृदय से लगाते हुए उसने कहा— "आँसू

बहाने से नहीं, शक्ति से काम चलेगा बहिन! मैंने एक हरिजन बालिका पाठशाला खोल ली है, आज ही से तुम्हें भी उसी में पढ़ाना है।"

शकुन— "क्या मुझ से लड़कियाँ पढ़ेंगी, मैं तो समाज की दृष्टि में पतिता हूँ।"

विकास— "यह दुर्बलता छोड़ो, यदि चरण बढ़ा दिया है तो साहस से इतनी ऊँची उठो कि नीचाई तुम्हें छू भी न सके।"

प्रेरणा— "यदि आज्ञा हो तो मैं भी हरिजन बालिका विद्यालय में सेवा करूँ स्वामी!"

विकास— "यह तो तुमने मेरे मन की बात कही है प्रेरणा!"

ज्योति— "तब तो हमारा विद्यालय एक दिन निश्चित विश्व-विद्यालय बन जायेगा।"

विकास— "यदि भावना होगी तो भगवान भी मिलेंगे ही।"

ज्योति— "अब आप स्नानादि कर कुछ खा लीजिये, मैं आपके लिये लौकी का साग और पूरियाँ बना लाई हूँ। उठो बापू! खड़े होओ प्रभात!"

ज्योति के आग्रह से नहा धो कर सबने कुछ खाया। और फिर चिन्ताग्रस्त जीवन की उलझन सुलझाने लगे! ज्योति ने कहा— "तो तुम मेरे साथ उसी मन्दिर वाली 'हरिजन पाठशाला' में पढ़ाने चलो शकुन!"

विकास— "प्रेरणा! तुम भी जाओ! जो छोटा सा बीज ज्योति ने बोया है वह एक दिन खिलकर संसार को सुगन्ध दे यह मैं तुम से चाहता हूँ प्रेरणा!"

शकुन— "पर मैं तो आज दो बजे पंचायत में जाऊँगी।"

प्रभात— "पंचायत में मेरे अतिरिक्त कोई नहीं जायेगा।"

प्रेरणा और शकुन ज्योति के साथ पाठशाला चली गईं और दोपहर को दो बजे प्रभात पंचायत में पहुँचे। पंचायत पण्डित राधाकृष्ण के मकान पर थी। चौक में बड़े बड़े शानदार मूढ़े पड़े थे, और बीच में बिछी हुई थी एक बड़ी मेज़। एक मूढ़ा जो ऊपर की तरफ बिछा हुआ था उस पर पधारे हुए थे सरपंच श्री शंकर राव देव। और उनके बराबर में बैठे थे पंच चौधरी धूमसिंह। इन्हें देखिये ये महात्मा देवव्रत जी हैं, और ये हैं देवसुमन ब्रह्मचारी। ये जो बाईं ओर बैठे हैं ये महेश्वरी प्रसाद जी रईस हैं।

ये हैं शकुन की माँ रामप्यारी जिनके माथे पर सलवटें पड़ी हुई हैं और आँखें सुर्ख हैं, जो धूमसिंह के पीछे अकड़ी बैठी हैं, जिनके आस पास वे सब नामधारी बैठे हैं जिनके पैरों में शनि है तथा बिल्कुल सटी हुई अकड़ रही हैं समाज की मठाधीश महिलायें।

प्रभात अपराधी की तरह पंचायत में जाकर खड़ा हो गया। उसने सब की आँखों में अपने प्रति घृणा देखी। उस मौन के साथ केवल उस का हृदय ही साक्षी था और प्रेम ही बल।

सरपंच ने अकड़ते हुए कहा— "तुम्हारे विरुद्ध श्रीमती रामप्यारी का अभियोग है कि तुम उनकी लड़की शकुन को ज़ेवर कपड़े सहित ले कर भागे हो। उनके अभियोग पत्र पर समाज की महिलाओं के हस्ताक्षर हैं।"

प्रभात— "शकुन कोई बालक नहीं है जिसे बहकाया जा सके, वह अपना अच्छा बुरा खूब समझती है। ज़ेवर की चाह से मैंने चोरी का पाप नहीं किया, ज़ेवर क्या, हमारे पास तो तुम्हारी एक धोती भी नहीं है, हमें प्रेम चाहिये ज़ेवर नहीं।"

धूमसिंह— "यह कोई उत्तर नहीं है। ठीक ठीक उत्तर दो!"

प्रभात— "मुझे कोई उत्तर नहीं देना, आप जो चाहें वह दण्ड दे सकते हैं।"

रामप्यारी जो अब तक न जाने कैसे चुप बैठी थी, बलबला कर गालियाँ देती हुई बोली— "मैं तेरे टुकड़े करवाकर रहूँगी। तुझे ज़िन्दा जलवाऊँगी। तुझे कहीं खड़ा होने योग्य नहीं रहने दूँगी।"

प्रभात— "क्रोध क्यों करती हो माँ! तुम अपना भला बुरा भी नहीं सोचतीं!"

प्रभात यह कह ही रहा था कि सब एक साथ उसे सुनाने लगे। प्रभात को कुछ न सूझा, वह पागल सा खड़ा हुआ रो पड़ा। उसने रोते हुए ही कहा— "क्या यही पंचायत है, और यही न्याय है! तुम मुझे इस लिये सताते हो कि मैं प्रेम करता हूँ। तुम उस प्रेम को पाप कहते हो जो मरुभूमि में कलनादनी की तरह है। माँ! मैं तुम से शकुन को भीख में माँगता हूँ!"

सहसा पंचायत में विकास ने प्रवेश करते हुए कहा— "इस दुनिया में भीख माँगने वाले दुतकारे जाते हैं। दुनिया में जो कुछ मिलता है वह शक्ति से। रोते रोते तुमने आँखें फोड़ लीं, लेकिन ये पंचायत के पत्थर न पिंघले, और न पिंघली तुम्हारे आँसुओं से यह माँ! गिड़गिड़ाना बन्द करो और बल से काम लो। ये सब देवता बैठे हैं न जिनके सामने तुम रो रहे हो!"

"देवता तो तू आया है चल कर जो इस बदमाश की वकालत कर रहा है। छोटू! इसको पाँच जूत तो लगा अभी" धूमसिंह ने मूछें पैनाते हुए कहा।

धूमसिंह ने कहा और छोटू जूता उठा कर लपका, लेकिन प्रभात विकास के आगे आ गया। पहिला एक जूता प्रभात के मुँह पर लगा ही

था कि विकास ने खींचकर एक तमाचा जूता मारने वाले के जमा दिया। तमाचा लगते ही जूता मारने वाले का दूसरा जूता न उठा।

और फिर विकास ने समय देख कर अपना आवेश रोका, वह गम्भीर और धीमी आवाज़ में बोला— "आज आप चाहे भी जो कर सकते हैं, क्योंकि हम आपकी पंचायत में फँस गये हैं। आप अपने मन की निकाल लीजिये!"

धूमसिंह— आग तो तब बुझेगी जब उस बूढ़े बापू को कुत्तों से नुचवा दूँगा जिसने तुम जैसे साँपों को पाला है।"

मन में दुःख और आत्मा में विश्वास लिये प्रभात और विकास बापू के पास वापिस आये। बापू को देखते ही उनकी आँखों में समुद्र उमड़ आया। बापू की आँखें भी भर आईं, वे आह भर कर बोले— "कितना जल्लाद होता है यह जग!"

और साथ ही प्रभात के मन ने कहा— "कितना पापी होता है मनुष्य का मन, लेकिन कितना सत्य है इसमें! कोई सत्य आज तक इसे मिटा नहीं सका।"

शकुन और प्रेरणा ने पाठशाला से आते ही जो अस्त व्यस्त दशा में प्रभात और विकास को देखा तो पैरों के नीचे की ज़मीन निकल गई। दौड़कर पास आने पर जब प्रभात के मुँह पर खून देखा तो शकुन ने कहा— "कितनी अभागी हूँ मैं कि मेरे कारण आपको क्या क्या सहना पड़ रहा है।" और यह कहते ही कहते उसे दौरा आ गया।

प्रभात ने शकुन को उठा जली हुई कोठरी की उस जर्जर खाट पर लिटा दिया, जो घर जलने पर निशानी के रूप में बची रह गई थी।

दस पन्द्रह मिनट हवा करने और चम्मच से पानी मुँह में डालने के बाद शकुन को चेतना आई। उसने उठ कर आँचल से प्रभात का

मुँह पूछते हुए कहा— "क्या दशा बनाली है आपने अपनी, मैंने कहा था न कि मेरे साथ बहुत काँटे हैं।"

दुःख में सहानुभूति और प्रेम के ये शब्द सुनते ही प्रभात की हिचकियाँ बँध गईं! फूट फूट कर रोते हुए उसने कहा— "तुम्हारी माँ बहुत ही निर्मम है देवि! मैं बहुत बार उन्हें समझा चुका, साफ साफ कह चुका, हाथ जोड़ लिये, पर वे नहीं मानतीं। आज इस घर में तो कल उस घर में, आज इस संस्था में तो कल उस समाज में, हमारी चर्चा लेकर ऊधम मचा रक्खा है, कोई कण ऐसा नहीं जहाँ उन्होंने तूफ़ान खड़ा न किया हो। मैं उन्हें जितना मानता हूँ वे मुझे उतना ही शत्रु समझती हैं। हमें बदनाम करने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी, बर्बाद करने पर तुली हुई हैं।"

शकुन— "उन्हें तो उसी दिन शान्ति मिलेगी जिस दिन मेरी अर्थी निकलेगी।"

प्रभात— "नहीं, उस दिन जिस दिन मैं और तुम दोनों मर जायेंगे। मैंने तुम्हें इसलिये साथ लिया था कि तुम्हारे जीवन में हरियाली बनूँगा। तुम ऊँची उठोगी, इतिहास के पृष्ठों पर अमर रहोगी। पर माँ ने प्रगति के हर दर्वाज़े पर दीवार खड़ी कर दी है। जी चाहता है तुम्हें कोई दुःख न होने दूँ, पर यह मनुष्य के वश की बात नहीं। केवल कलम के अतिरिक्त और कोई बल नहीं रहा मेरे पास, और कलम शून्य का सन्तोष मात्र देती है। मेरे साथ आकर भी तुम्हें दुःख ही देखने पड़े हैं।"

कहते कहते प्रभात की आँखें डबडबा आईं। शकुन भी रो पड़ी। दोनों ने रोते हुए एक साथ ही कहा— "हमारा भाग्य बड़ा खराब है।" और फिर दूसरे ही पल प्रभात ने कहा— "शायद इस दुनिया में सभी के भाग्य खराब होते हैं। मैंने जिसे देखा वही दुःख में हँसता मिला।

चिता की राख मुट्ठी में लिये न जाने प्राणी कब से हँसता चला आ रहा है !"

शकुन— "रोना और हँसना अपने वश की बात नहीं। लहरों की तरह भाव हृदय में आते हैं और बरस पड़ते हैं हँसी या दुःख के फव्वारे ! पर किसी किसी की तकदीर में तो परमात्मा शायद सुख लिखना भूल ही जाता है। परमात्मा की प्रकृति का कुछ पता नहीं चलता।"

प्रभात— "उसका भेद आज तक किसी को नहीं मिला, विचित्र रहस्य है उस कलाकार की कृति में !"

दूध का गिलास हाथ में लिये प्रेरणा ने कमरे में प्रवेश किया। "दूध पीलो भैया!" कहती हुई वह खड़ी हुई। शकुन ने प्रेरणा के हाथ से दूध का गिलास लिया और पीड़ा के अपार समुद्र प्रभात को प्यार की लहरों से पिला दिया।

प्यार की किरण पाकर घोर दुःख में भी मनुष्य मुस्करा उठता है। प्रभात मुस्कराया पर तुरन्त ही रो पड़ा। अतीत की स्मृतियों ने उसकी मुस्कान को आँसुओं में बदल दिया। रोते हुए उसने कहा— "अपने ही शत्रु बन गये। माँ सुख की श्वास नहीं लेने देती। शकुन ! यदि हम तुम में से कोई पहले मर गया, तो क्या होगा ?"

शकुन— "कैसी बातें करते हैं आप ! मुझे मौत आसानी से थोड़ी आने वाली है ! और आपके सामने मरने से बड़ा सौभाग्य मेरे लिये क्या हो सकता है !"

प्रेरणा— "अरे, छोड़ो ये मरने जीने की बातें। शकुन ! तुम अपनी माँ से मिलकर उन्हें समझाओ तो सही !"

शकुन— "क्या पूछती हो बहिन ! मैं बहुत समझा चुकी। न जाने कितनी बार मैंने उन सब से बुरी बुरी गालियाँ सुनी हैं, न जाने कितनी

बार उनसे लड़ लड़ कर आई हूँ, पर कुछ परिणाम नहीं निकला। वे ही ढाक के तीन पात !"

प्रेरणा— "तो फिर छोड़ो कहना सुनना और किये जाओ अपना काम! कर्म करते रहो, और प्रसन्न रहो !"

प्रभात— "प्रत्येक प्राणी प्रसन्न रहना चाहता है पर रह नहीं पाता। यह उसकी विवशता है या दुर्बलता!"

प्रेरणा— "दोनों का एक ही अर्थ है। परिणाम दोनों का हार ही है।"

शकुन— "मैं तो दुनिया की 'हाय! हाय!' से तंग आगई हूँ। जी चाहता है फाँसी लगाकर मर जाऊँ।"

प्रेरणा— "तुम अपने जीवन की भेंट चढ़ाना चाहती हो न ?"

शकुन— "जी तो यही चाहता है।"

प्रेरणा— "तो आज से यह जीवन तुम्हारा नहीं, हरिजन विद्यालय का है। तुम अपना तन मन धन विद्यालय के अर्पण कर दो !"

शकुन— "सेवा भी तभी होती है जब चित्त में शान्ति हो। मेरी शुरू से ही समाज और जीवन के लिये कर्मठ भावना रही है, पर परिस्थितियों ने हर बार मेरे पैर पकड़े।"

प्रेरणा— "परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए चलना ही जीवन है। ज्योति को नहीं देखती, कितनी आग है उसके जीवन में, किन्तु प्रकाश देती रहती है। बापू को देखो, सहते सहते बूढ़े हो गये पर हार कर नहीं बैठे। ज़िन्दगी में हार न मानना ही सत्य है।"

विकास ने आते हुए प्रेरणा का अन्तिम वाक्य सुन लिया। प्रसन्नता से जगमगाता हुआ वह बोला— "प्रेरणा ! तुम पत्नी के रूप में मुझे ज़िन्दगी मिली हो।"

प्रेरणा— "और आप पति के रूप में मुझे विकास मिले हैं। विकास ही तो जीवन है स्वामी !"

विकास— "तो विकास के पथ पर चलो, जीवन के तूफानों से लड़ते हुए चलो! ज्योति में बड़ा जीवन है उसी के प्रकाश से मुझे पथ दिखाई देता है। उस जलती हुई लौ में बिजली सी तड़प है, किन्तु उसमें वह शक्ति है जिसकी विकास को आवश्यकता है। हम अपने जीवन की उलझनें नहीं सुलझा पाते और वह समाज की उलझन सुलझाने में लगी हुई है। आज शाम को सात बजे उसने विद्यालय के विकासार्थ कुछ व्यक्तियों की बैठक बुलाई है; लेकिन उस बैठक में नाम के ऊँचे नहीं होंगे, काम के ऊँचे होंगे। बैठक में घण्टा भर शेष है। ज्योति ने सन्देश भेजा है कि मैं तुम्हें और बापू को लेकर आजाऊँ। बापू छप्पर के नीचे खाट पर लेट रहे हैं, चलो उन्हें साथ लेकर चलें।"

सब उठकर छप्पर के नीचे बापू के पास आकर खड़े हो गये। विकास ने विनम्रता से कहा— "बापू! ज्योति ने प्रार्थना की है कि आप आज आशीर्वाद देने के लिये विद्यालय की बैठक में पधारें।"

बापू— "यह ज्योति भी बड़ा काम करती है बिचारी! अब मुझे विश्वास होता जा रहा है कि एक दिन मेरा यह सेवाग्राम इसी मर्त्यभूमि पर सच्चा स्वर्ग होगा। चलो बेटा!"

कहते हुए बापू लठिया का सहारा लेकर उठे और उस खंडहर मन्दिर की ओर चल पड़े जिसमें अब ज्योति ने विद्यालय स्थापित कर दिया था। आगे आगे बापू और पीछे पीछे साथियों सहित विकास चाँदनी की चादर पर चरण बढ़ाते चले।

Shamji Misri
B.Sc. Medical
S.P. college

५

न जाने कितने प्राचीन उस टूटे फूटे मन्दिर में ज्योति आँचल की ओट में दीपक लिये खंडहरों में निर्माण खोज रही है। उसके मुख पर हृदय की अनेकों भावनायें चित्रित हैं। कभी वह मन्दिर की टूटी हुई दीवारों की रिसती हुई ईंटों को देखती और कभी आकाश के तारे देखने लगती। कभी वह उस चबूतरे पर जाती जहाँ बैठक होने वाली है और कभी फिर समस्याओं को सोचती हुई आगन्तुकों के स्वागतार्थ मन्दिर के दर्वाज़े पर आ खड़ी होती।

ज्योति के मन में चिन्ता है, वह चाहती है उसकी आयोजित बैठक बहुत सफल हो। धीरे धीरे उसका उत्साह बढ़ने लगा, क्योंकि आमन्त्रित आने शुरू हो गये। ये चौधरी रामप्रसाद हरिजन हैं, बड़ा उत्साह है इनमें काम करने का! और ये हैं मानसिंह बाल्मीकि! आह! अब तो सामने से आते हुए बापू के भी दर्शन होने लगे, बड़ी प्रतीक्षा थी विचारी ज्योति को। धीरे धीरे वे सभी आगये जिनको ज्योति ने निमन्त्रित किया था।

ज्योति ने अँधेरी रात में हाथ के दीपक से सब को पथ दिखाया, और बैठाया उस स्थान पर जहाँ वह पहिले ही बुहारी दे, दरी बिछा, दीपक जला आई थी।

"समय लगभग आठ बजे का हो गया, अब बैठक प्रारम्भ करें !" ज्योति ने सब की ओर संकेत करते हुए कहा।

एक साथ ही सब के मुँह से निकला, "जी हाँ, शुरू करिये ! काफी समय हो गया।"

ज्योति— "तो आज की बैठक के प्रधान पद के लिये मैं भाई मानसिंह वाल्मीकि का नाम उपस्थित करती हूँ।"

प्रेरणा— "मैं ज्योति बहिन के प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ।"

वाल्मीकि जी अपने ऊँचे रुपट्टे से गम्भीरता और मुखाकृति से विनम्रता बरसाते हुए आसन पर आ पधारे। ज्योति ने संक्षिप्त भूमिका बाँधते हुए कहा— "अब भाई विकास आपके समक्ष वह योजना रखेंगे जिस उद्देश्य से आपको कष्ट दिया है।"

विकास खड़े हुए और कहना आरम्भ किया— "प्यारे भाइयो ! हम सब आज इसलिये इकट्ठे हुए हैं कि दुनिया में मनुष्यों की तरह जियें और विकास करें, हम सब संगठन शक्ति, सत्य और प्रेम से जीवन के पथ पर चल आगे बढ़ें। यदि हम एकता, सचाई और शान्ति से प्रगति के लिये संघर्ष पथ पर न चले तो हमारी ही हानि नहीं सारे राष्ट्र की हानि होगी। आज सत्य काली चादर की ओट में बन्द है। जीवन के सारे सुख कुछ मठाधीशों की मुट्ठी में हैं। आज जो सबसे अधिक सेवा करें वे सबसे बड़े नीच माने जाते हैं। आज जिनके पास अर्थ है उनके पास सारे सत्य हैं। और इस घोर अन्धकार का कारण है— अशिक्षा। हमें चाहिये कि हम हीन मनोवृत्तियों को छोड़ उन्नति करें। बहिन ज्योति ने जो जाग्रति की ज्योति जलाई है उसमें हमारा सुनहरी

भविष्य झलक रहा है, जिस ज्योति के प्रकाश में हमारी सामाजिक, साहित्यिक, मानसिक एवं नैतिक उन्नति है। शिक्षा में सारे सुख एवं सारे सत्य हैं। अतः हमारी आकांक्षा है कि आज बीज रूप में स्थापित यह हरिजन-विद्यालय एक दिन विश्वविद्यालय हो। हमारे विद्यालय का मुख्य उद्देश्य दलित वर्ग को शिक्षित बनाना है, रूढ़ि के कठोर नियमों को कुचलना है।

"भाइयो! जो उद्देश्य हमारे सामने हैं वे सरल नहीं हैं। हमें उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भगीरथ प्रयत्न करने होंगे, बलिदान करने होंगे एवं चबाने होंगे लोहे के चने। तो मैं आप के सामने प्रस्ताव रखता हूँ कि हरिजन विद्यालय की एक कार्यकारिणी समिति बना दी जाये, जिस समिति में मन्त्री और प्रधान के अतिरिक्त नौ सदस्य हों। आशा और विश्वास है कि आप मेरे प्रस्ताव पर स्वीकृति की छाप लगा इस कर्मयोग में तन मन धन से शामिल होंगे।"

विकास वक्तव्य समाप्त कर बैठ गये। ज्योति ने उठकर कहा— "अब प्यारी बहिन प्रेरणा प्रस्ताव का समर्थन करेंगी।"

प्रेरणा उठीं और कहना शुरू किया— "श्रद्धेय प्रधान जी, बहिनो और भाइयो! मैं प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करती हूँ, किन्तु आपसे यह कहना आवश्यक समझती हूँ कि लक्ष्य के लिये आपको अपना सब कुछ देना और सहना पड़ेगा, यही कि कार्यपूर्ति के लिये प्राणों का मोह भी हमारे मन में न रहे! बस इतना ही कहकर मैं बैठती हूँ।"

ज्योति— "आप कुछ कहिये प्रभात जी!"

प्रभात— "मेरी शुभ कामनायें और सहयोग आपकी सेवा के लिये प्रस्तुत हैं। पर मेरी स्थिति ही क्या है! मैं समाज की दृष्टि में पापी, कलियुग के समालोचकों की दृष्टि में कलंक! और अपनी कलम की दृष्टि

में आत्माभिमानी दया का पात्र हूँ! मैं वह हूँ आँसू भी जिसका साथ छोड़ कर चले जाते हैं। मैं आप से क्या कह सकता हूँ?"

ज्योति— "यह क्या कहते हो कवि! तुम्हारे शब्द ही तो जीवन देते हैं। तुम्हारी वाणी ही हमारी शक्ति बन कर कौंधेगी। विकास तुम्हारे शब्दों के सहारे होगा।"

प्रभात— "अपना मन कैसे भी समझाया जा सकता है। पर सत्य मेरे हृदय का सत्य है यह केवल मैं ही तो समझता हूँ।"

विकास— "यह समय जीवन की आलोचना का नहीं है। आप विद्यालय की समिति के लिये नाम रखिये!"

ज्योति— "मैं नाम उपस्थित करती हूँ। यदि उचित समझें तो स्वीकृति दें। प्रधान के लिये मैं आज की बैठक के प्रधान भाई मानसिंह बाल्मीकि का नाम रखती हूँ।"

विकास— "मैं आपके प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।"

ज्योति— "मन्त्री पद के लिये मैं श्री विकास का नाम पेश करती हूँ।"

प्रेरणा— "मैं इस प्रस्ताव का विरोध करती हूँ, और आग्रह करती हूँ अपनी बहिन ज्योति से कि मन्त्री पद को वे ही ज्योतिर्मय करें। काँटों के बीच में फूल ही हँसता हुआ सुगन्ध देता है, वायु रूपी विकास तो उस सुगन्ध को चारों ओर फैलाने में ही समर्थ हो सकता है।"

प्रभात— "मैं मन्त्री पद के लिये उपस्थित ज्योति के नाम का समर्थन करता हूँ।"

सब के मुँह से एक साथ निकला— "ठीक है, बिल्कुल ठीक है।" ज्योति ने मुस्करा कर स्वीकृति देते हुए कहा— "तो फिर विद्यालय के

लिये एक कोषाध्यक्ष की भी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिये मैं प्रेरणा का नाम प्रस्तुत करती हूँ।"

प्रभात— "आप का यह प्रस्ताव हमें स्वीकार है।"

ज्योति— "कार्यकारिणी के शेष आठ सदस्य आपके सामने इस प्रकार उपस्थित कर रही हूँ। पूज्य हरिराम बापू, विकास, प्रभात, चौधरी रामप्रसाद हरिजन, श्री शकुन, श्री गुलाब, कन्हैयालाल जनसेवक और पूनो देवी महतरानी।"

विकास— "मैं समझता हूँ कि हमें कार्यकारिणी में व्यापकता की दृष्टि से कुछ प्रभावशाली बाहर के व्यक्ति भी रखने चाहियें।"

ज्योति— "ये बड़े बड़े कुछ करते तो हैं नहीं और नाम चाहते हैं, बाकी जैसे आप ठीक समझें।"

विकास— "मेरा ख्याल है कि देवसुमन ब्रह्मचारी और महेश्वरी प्रसाद रईस का नाम इसमें अवश्य होना चाहिये। वे गाँव में प्रभावशाली व्यक्ति हैं।"

ज्योति— "मैंने आज की बैठक में उन्हें निमन्त्रण दिया था, आये तक तो हैं नहीं।"

विकास— "वे नहीं आये, पर हमें उन्हें अपने अनुकूल बनाना है।"

ज्योति— "तो फिर किन दो नामों के स्थान पर इन्हें रक्खूँ!"

बापू— "एक तो मेरे स्थान पर। मैं हर तरह से आपकी सेवा करूँगा पर सदस्य न रह कर। क्योंकि पृथक् रह कर मैं अधिक सेवा कर सकता हूँ। और दूसरा नाम गुलाब का न रक्खा जाय। वह सीधा सादा किसान केवल श्रम करना जानता है, योजनाओं के गणित से उसका क्या सम्पर्क!"

ज्योति— "आपकी छाया के बिना तो हम कुछ भी नहीं कर सकते बापू !"

बापू— "मैं तो तुम्हारे साथ हूँ ही।"

ज्योति— "तो फिर कार्यकारिणी इस प्रकार रही— प्रधान श्री मानसिंह बाल्मीकि, मन्त्री ज्योति, कोषाध्यक्षा श्री प्रेरणा, सदस्य विकास, प्रभात, चौधरी रामप्रसाद हरिजन, शकुन, कन्हैयालाल जन-सेवक, पूनो देवी मेहतरानी, देवसुमन ब्रह्मचारी और महेश्वरी प्रसाद रईस।"

विकास— "अब बापू आशीर्वाद स्वरूप कुछ शब्द कहें, यह हम सबकी इच्छा है।"

बापू— "ईश्वर हमारी सहायता करे! हम सब सच्चाई से सेवा करें! हम कर्मठ और एक रहें! हम करनी और कथन में सम रहें। यह मेरी प्रार्थना है।"

इतना कह कर बापू बैठ गये और ज्योति ने उठकर प्रसन्नता से कहा— "मैं अत्यन्त हर्षपूर्वक आपको शुभ सूचना देती हूँ कि भाई विकास और प्रेरणा ने अपनी सारी सम्पत्ति और जीवन विद्यालय को दान कर दिया है। लगभग पचास हज़ार की सम्पत्ति है यह!"

ज्योति की इस सूचना से बैठक में उत्साह का सिन्धु उमड़ आया। भावावेश में प्रधान मानसिंह बाल्मीकि उठे और उछलते हुए हृदय से बोले— "मैं भी अपनी ज़िन्दगी विद्यालय को देता हूँ, और अपना वह मकान जो मैंने इसी साल पाँच सौ रुपए जोड़कर बनवाया है विद्यालय के सुपुर्द करता हूँ। आप हमें रास्ता दिखाइये, हम हर सेवा के लिये तैयार हैं। मैं गाँव के भंगियों का चौधरी हूँ, जो आप कहेंगे वही सब करेंगे।"

रामप्रसाद हरिजन से भी न रहा गया, वह जोश में हाथ उठाता हुआ बोला— "ये जितने भी बड़े बड़े मन्दिर और विद्यालय हैं वे सब हमारे ही पसीने से बने हैं और हम ही उनमें से दुतकारे जाते हैं। हमारी सेवा का पुरस्कार हमें अछूत कह कर दिया जाता है। हम आज तक इसलिये कुचले जाते रहे कि हमें ज़बरदस्ती पढ़ने नहीं दिया गया। आप हमें प्रकाश दिखाइये, हम आकाश के तारे तक तोड़ लायेंगे।"

विकास— "तो मैं इस मन्दिर को विद्यालय के रूप में नये सिरे से बनाना चाहता हूँ। कल मैं फावड़ा ले मज़दूर बन कर काम करूँगा। मैं चाहता हूँ कि कल से आप भी हमारे साथ विद्यालय की चिनाई में लगें।"

वाल्मीकि और हरिजन ने एक ही साथ साहस से कहा— "कल सबेरे हर भंगी और हर चमार विद्यालय की ईंटें चिनता दिखाई देगा।"

ज्योति— "तो अब आप आराम करें और सबेरे छः बजे मन्दिर में अधिक से अधिक मज़दूर दिखाई दें!"

ज्योति, शकुन, प्रेरणा, बापू, विकास, प्रभात वहीं मन्दिर के चबूतरे पर बिछी दरी पर लेट गये, और शेष सब अपने अपने स्थान पर चले गये।

विद्यालय के कर्णधार चबूतरे पर लेट तो गये, पर नींद नहीं आई। सारी रात योजना को सफल करने के बारे में सोचते रहे। बहुत सी बातें करते रहे आपस में। और उधर प्रभात लिखते रहे रात भर जीवन के गीत।

सबेरे चार बजे के लगभग विकास ने ज्योति से कहा— "कार्य शुरू तो कर दिया है पर अन्त तक निर्वाह विषपान से भी कड़वा है। भयंकर विरोध खड़े होंगे। भलाई करते करते लोग बुरा कहेंगे, और हमें चाहिये सबका सहयोग एवं सद्भावनायें।"

ज्योति— "सहयोग एवं सद्भावनायें मांगने से नहीं मिला करतीं। चाहे कितना भी अच्छा काम क्यों न करो, दुनियां बुराई ही देती है। संसार शक्ति के सामने झुकता है। जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मंज़िल के हर चरण पर तूफान खड़े होते हैं। किन्तु व्यवधानों को वश में कर आगे बढ़ना ही जीवन है।"

विकास— "यदि हम ऊँचे उद्देश्यों से, प्रेमपूर्ण व्यवहारों से श्रम करते रहे तो विश्वास है कि किसी दिन सब हमारे होंगे, और सफलता हमारी आरती उतारेगी।"

प्रभात— "न जाने कितने तुम्हारी तरह सोचते और यत्न करते करते स्वप्नभंग हो गये, पर न हुए संकल्प पूरे, अधूरे ही रहे उनके चित्र।"

विकास— "मेरे कान निराशा भरे शब्द सुनने के अभ्यासी नहीं हैं। वह सैनिक क्या लड़ेगा जो युद्ध की कल्पना से ही हथियार छोड़ बैठा हो। जो जीवन की हारों से नहीं हारता मृत्यु पर उसी का चरण स्थिर है। आशा और आनन्द के संसार में निराशा के आँसू अच्छे नहीं लगते। छोड़ दो ये दुर्बल विचार। कवि की वाणी से निराशा नहीं, जीवन चाहिये।"

प्रभात— "कवि की निराशा ही वह जीवन है जिसमें पराजय शब्द नहीं होता।"

ज्योति— "छोड़ो ये बातें। देखो, सूर्य देव पृथ्वी को जगमगाते हुए चले आ रहे हैं, और उनके साथ ही बाल्मीकि जी, जनसेवक पन्द्रह बीस साथियों सहित फावड़े और टोकरी लिये चले आ रहे हैं। बातों की दुनिया से काम की दुनिया में जीवन और अमरत्व होता है। उठो, तथा फावड़े उठाओ, काम करो। कहने वाले कहते ही रह जाते हैं और करने वाले कर डालते हैं।"

"राम राम महाशय जी !" बाल्मीकि और जनसेवक सहित सब श्रमिकों ने मन्दिर में प्रवेश करते हुए कहा।

"राम राम भाइयो !" उत्तर में चबूतरे से खड़े होते हुए हाथ जोड़ कर विद्यालय के कर्णधारों ने कहा।

और फिर उत्साह से माथे का पसीना पूछते हुए बाल्मीकि बोले— "देखिये, ये बीस भंगी और चमार नौजवान मौजूद हैं। अभी चौधरी राम प्रसाद सबको बटोर रहे हैं। करीब नौ बजे तक वे पचास मज़दूर और ले आयेंगे। कल तक देखना, सैकड़ों मज़दूर इस मन्दिर में काम करते दिखाई देंगे।"

विकास— "वाह! बाल्मीकि जी वाह! तब तो महीनों में ही हमारा विद्यालय नये सिरे से बनकर खड़ा हो जायेगा।"

जनसेवक— "आप ज़रा देखते रहिये, बात की बात में विद्यालय बना डालेंगे।"

बाल्मीकि— "तो आज्ञा दीजिये हम क्या करें ?"

ज्योति— "आज आप लोग पहिले वह जो कुएँ के बराबर में दालान है, उसे साफ करके सफेदी से पोत दो, जिससे कि बच्चे वहाँ बैठ कर पढ़ सकें। कल से ये सब टीले साफ़ कर नये सिरे से मन्दिर चिनना शुरू कर देना।"

"चलो, अब पहिले बरामदा साफ़ करने चलें," कहते हुए बुहारी उठा ज्योति दालान की तरफ चल पड़ी, और पीछे पीछे चल पड़े सब उत्साह में कूदते हुए।

दालान में पहुँच ज्योति ने कहा, "इसमें तो कूड़ा,जम जम कर टीला बन गया है, फावड़े से खोदना पड़ेगा। ज़रा फावड़ा तो दो बाल्मीकि भाई !"

"आप हटाइये, मैं साफ़ करता हूँ" बाल्मीकि ने ज्योति को हटाते और हठ करते हुए कहा।

किन्तु वे हठ करते ही रह गये और मज़दूरों की टोली दालान में घुस भी गई, फावड़ा चलने लगा, बात की बात में टीला साफ हो गया, और फर्श की लाल लाल ईंट चमक उठीं।

लाल लाल ईंटों को मज़दूरों के पसीने भरे मैले पैर चूमते देख ज्योति जगमगा उठी। उसने उत्साह की हिलोरों में झूमते हुए कहा— "मज़दूर दुनिया में क्या नहीं कर सकते! श्रम ही जीवन का सत्य है। श्रम से मिट्टी बोलने लगती है।"

"अपने स्थान पर जो है वह सत्य ही है। न जाने अब तक कितने सत्यासत्य देखे। वह सत्य देखती हो!" सामने पेड़ के नीचे बैठे प्रभात और शकुन की ओर संकेत करते हुए विकास ने कहा।

ज्योति— "वह प्रेम की प्यास है। कितना अतृप्त होता है प्रेम!"

विकास— "इस प्रेम का प्राण काव्य है।"

ज्योति— "काव्य का तो संसार में कुछ अर्थ है, किन्तु कवि तो नियति का निरर्थक निर्माण है। कुछ भी तो नहीं होता कवि के जीवन में।"

विकास— "बहुत उम्मीदें होती हैं ज्योति!"

ज्योति— "किन्तु पूरी तो एक भी नहीं होती।"

विकास— "अपनी असीमित आकांक्षाओं और अतृप्तियों में ही तो वह गाता है।"

ज्योति— "देखते हो प्रभात को, कितनी किताबें लिखीं इसने किन्तु क्या मिला इसे? गालियों की बौछारों का पुरस्कार!"

विकास— "गालियाँ भंगुर होती हैं ज्योति! तुम यह देखो कि प्रभात की रचनाओं में सत्य कितना है। कविता ही तो दूसरे शब्दों में विद्या है।"

ज्योति— "बहुत चाहता है प्रभात शकुन को।"

विकास— "यह तो है ही, तभी तो वह अपनी हर पुस्तक शकुन को अर्पण करता है। यह इसकी चाह है या मृत्यु का उपहास कर रहा है।"

ज्योति— "शकुन भी अब बहुत अच्छा लिखने लगी है।"

विकास— "लेकिन मैं उसकी अधिक रुचि समाज सेवा और अध्यापन की ओर देखता हूँ। बच्चे उससे बहुत प्रसन्न रहते हैं। बहुत अच्छा पढ़ाती है शकुन।"

ज्योति ने देखा कि बच्चे पढ़ने आगये। उसने आवाज़ दी— "शकुन! लो ये बच्चे पढ़ने आगये। अब छोड़ो कविता।"

शकुन उठकर ज्योति और विकास के पास चली आई। जब वह बिल्कुल पास आगई तो ज्योति ने कहा— "अभी अभी विकास तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे। कहते थे बहुत अच्छा पढ़ाती हैं।"

शकुन ने कुछ प्रसन्नता और लज्जा की मुद्रा में कहा— "सब इनके प्रभात की कृपा है। यदि आपकी कृपा रही तो इच्छा तो बहुत कुछ करने की है। अच्छा, अब चली पढ़ाने।"

कहती हुई शकुन बच्चों को पढ़ाने चली गई।

ज्योति ने जो घूमकर दालान को देखा तो प्रसन्नता सूचक शब्दों में बोली— "बड़ी जल्दी साफ़ कर डाला!"

जनसेवक— "काम जब तक शुरू नहीं करते तभी तक पड़ा दिखाई देता है। लो देखो, चौधरी रामप्रसाद भी गाँव का गाँव साथ लिये चले आ रहे हैं।"

ज्योति— "यदि इन्हीं भावनाओं और उत्साह से काम करते रहे तो वह दिन बहुत दूर नहीं जब हमारा हरिजन विद्यालय विश्व की सब से बड़ी सम्पत्ति होगी। आओ भाई रामप्रसाद! आप जैसे कर्मठों के बल पर ही हमारे विद्यालय का भविष्य है।"

रामप्रसाद— "हम जैसे चौधरी तो नाम के होते हैं ज्योति देवी! सच्ची सेवा तो इन भाइयों की है जो अपने पसीने से इसी धरती पर स्वर्ग खड़ा कर दिखाते हैं, जो केवल करना जानते हैं, बातें करना नहीं जानते। आज्ञा दीजिये इन्हें।"

ज्योति— "इनमें से आधे भाइयों से मन्दिर के चारों ओर दूर दूर तक जो ज़मीन बेकार पड़ी है उसे खेती के योग्य कराओ, जिससे इस भूमि का उपयोग हो सके, और अन्न कपास आदि बो हम अपने विद्यालय के विद्यार्थियों एवं कार्यकर्त्ताओं के लिये अन्न कपड़ा पैदा कर सकें। हम चाहते हैं कि हम स्वावलम्बी हों, हमें अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों का मुँह न ताकना पड़े। हमारे यहाँ से जो विद्यार्थी शिक्षा पाकर निकले वह बापू के आदर्शों का प्रतीक हो।

"और शेष आधे भाइयों को विद्यालय के निर्माण में लगाओ। देखो वह जो धूप के रुख की तिदरी टूटी पड़ी है, उसे इस योग्य बना लो कि वहाँ बैठकर विद्यार्थी उद्योग-धन्धों में लग सकें। हमारे इस गाँव में सन कास कुसा आदि बहुत पैदा होती है, गाँववाले उसे जलाने के काम में लाते हैं, हम उनके कालीन, रस्सी, आसन, चटाइयाँ आदि तैयार करेंगे।

"इनको काम में लगाकर तुम देवसुमन ब्रह्मचारी और महेश्वरी प्रसाद रईस के यहाँ जाओ! उन्हें अपनी योजना बताकर कहना कि आप विद्यालय

समिति के सम्मानित सदस्य निर्वाचित हुए हैं। परसों सारे गाँव का एक जलसा मन्दिर में होगा। आप अवश्य उपस्थित हों। आपके सहयोग पर ही विद्यालय का भविष्य निर्भर है।"

अपने साथ लाये हरिजन भाइयों को काम पर लगा, रामप्रसाद ज्योति का सन्देश ले देवसुमन ब्रह्मचारी और महेश्वरी प्रसाद रईस के यहाँ चल पड़े। लगभग आध घंटे में रामप्रसाद उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ सेठ महेश्वरी प्रसाद मूढ़े पर बैठे मूँछें मरोड़ रहे थे। रामप्रसाद जी के सौभाग्य से देवसुमन ब्रह्मचारी भी वहीं बैठे मिल गये। रामप्रसाद ने पहिले तो आशा और उत्साह से दोनों से राम राम की, तदनन्तर ज्योति का पत्र उनके हाथ में पकड़ाते हुए कहा— "आपके भरोसे पर हमने यह बड़ा काम उठा लिया है। अब आपका हर प्रकार से हमें सहयोग मिलना चाहिये।"

इससे पहिले कि महेश्वरी प्रसाद कुछ उत्तर दें, देवसुमन ब्रह्मचारी अकड़ कर बोले— "हम सब देख रहे हैं, गाँव में जो ऊधम मचा रक्खा है। तुम लोग मन्दिर को भ्रष्ट करने पर उतारू हो गये हो। तुम्हें क्या हक़ था हिन्दुओं के मन्दिर में भंगी चमारों को घुसाने का।"

रामप्रसाद— "और जब वहाँ हर वक्त कुत्ते मूतते थे तब तो भगवान बहुत प्रसन्न होते होंगे आप से। जिस मन्दिर को तुमने कुत्तों का पेशाब-घर बना रक्खा था हमने उसमें विद्यालय स्थापित कर पाप तो नहीं किया ब्रह्मचारी जी! आज आप उस मन्दिर के मालिक बनते हैं क्योंकि आज हम जो आपकी सदा सेवा करते रहे वहाँ अर्घ्य चढ़ाने जा पहुँचे। हम तो आप से सहयोग की आशा लेकर आये थे लेकिन हम नहीं जानते थे कि ऊँचे ऊँचे महलों में रहने वालों के हृदय होता ही नहीं।"

ब्रह्मचारी— "यदि हम मन्दिर में बदमाशों का अड्डा बना लेने दें तो हमारे हृदय है! बापू की सारी हरकतें हमारे सामने हैं। हिन्दुओं का

सत्यानाश करने का बीड़ा उठा लिया है उसने। वह विद्यालय नहीं, प्रभात, विकास, ज्योति और शकुन की बदमाशियों का अड्डा खुल रहा है। हमारे रहते मन्दिर में यह भ्रष्टता हरगिज़ नहीं हो सकती।"

रामप्रसाद— "वाणी पर संयम रख कर बोलो ब्रह्मचारी जी! आपके चन्दन और रामनाम के दुपट्टे की आड़ में आपका जीवन छिपा रह सकता है, पर हमारी आँखों से नहीं। भूल गये वह दिन जब तुमने अपने घर में पूनो भंगन की लड़की का हाथ पकड़ा था।"

यह बात ब्रह्मचारी से सहन नहीं हुई। "बदमाश कहीं के! तेरी यह हिम्मत!" कहते हुये उन्होंने एक तमाचा खींच कर रामप्रसाद के गाल पर मारा।

रामप्रसाद की आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने रोते हुए कहा— "आज आप चाँटा मार सकते हैं, उस दिन आपके हाथ चाँटा मारने को नहीं उठे जिस दिन आप हाथ जोड़ कर मुझसे कहते थे, मेरी इज्ज़त बचा ले।"

ब्रह्मचारी जी मन में अतीत की कोई घटना देख रहे थे, और बाहर उनका क्रोध उफना आ रहा था। लाल लाल आँखें निकाल दाँत पीसते हुए उन्होंने कहा— "वहाँ विद्यालय नहीं बन सकता। आज शाम को सात बजे तक अपना तामझाम वहाँ से उठा लेना, नहीं तो आग लगा दी जायेगी।"

रामप्रसाद— "विद्यालय बनेगा और वहीं बनेगा। हमारी लाशें बिछ सकती हैं, लेकिन हमारा विद्यालय वहाँ से नहीं उठ सकता।"

"ज़बान चलाये ही जायगा बदमाश!" कहते हुए ब्रह्मचारी महेश्वरी प्रसाद के कमरे में टँगी दुनाली उठाने लपके। भीषण काण्ड की सम्भावना कर महेश्वरी प्रसाद यह कहते हुए ब्रह्मचारी के पीछे

दौड़े— "भयंकर भूल न करो ब्रह्मचारी! शान्ति से काम लो।" और फिर पास पहुँच उन्होंने ब्रह्मचारी से बन्दूक छीन ली।

"रामप्रसाद! तुम जाओ और अपने साथियों से शान्ति से कहना कि झगड़ा अच्छा नहीं। मन्दिर में विद्यालय ना ही खोलें तो ठीक है। भाई! मुझे खून खराबे से डर लगता है। इधर मैं इन धर्म के रक्षकों को भी समझाऊँगा।" महेश्वरी प्रसाद ने गम्भीरता से कहा।

रामप्रसाद— "हम तो आपके सेवक हैं सेठ जी! हम वहाँ विद्यालय खोल कर कुछ बुरा तो नहीं कर रहे! हम तो चाहते हैं कि नाम आप का रहे और काम हम करें।"

महेश्वरी प्रसाद— "जो काम करे नाम भी उसी का होना चाहिये। अच्छा, अब तुम जाओ।"

"राम राम सेठ जी!" कहता हुआ रामप्रसाद चल दिया।

रामप्रसाद के चले जाने के बाद लगभग पाँच मिनट तक तो महेश्वरी प्रसाद के यहाँ मौन का राज्य रहा, और फिर हृदय के उद्वेग ने वहाँ का मौन तोड़ दिया। गम्भीरता से सोचते हुए महेश्वरीप्रसाद ने कहा— "अपने विरोधियों की संख्या बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं ब्रह्मचारी जी! जीवन में वही सफल नीतिज्ञ है जो विरोध उठने से पहिले ही विरोध का अस्तित्व तक मिटा दे। मैं देख रहा हूँ हमारा विरोध हर पल बढ़ता जा रहा है। गाँव की छोटी जातियाँ हम पर अविश्वास करने लगी हैं। हम पंच अवश्य हैं, पर हम पर लोगों की श्रद्धा अब नहीं है। और उधर हरिराम बापू का प्रभाव पल पल बढ़ता जा रहा है। विकास, प्रभात और ज्योति की सेवा से सब के हृदय में उनके प्रति भक्ति हो गई है।"

ब्रह्मचारी— "पर इस सब से तो हमारी हत्या हो जायेगी सेठ जी! यदि इनका प्रभाव गाँव में बढ़ गया तो फिर हमें गाँव में कौन पूछेगा?

चौधरी धूमसिंह मुझसे कहते थे कि इन साँपों के जल्दी से जल्दी टुकड़े करो, नहीं तो हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। मेरी राय में तो बापू और विकास को रात में कत्ल करा देना चाहिये, फिर सब झगड़ा आप शांत हो जायेगा।"

महेश्वरी प्रसाद— "धूमसिंह और तुम दोनों पागल हो। हम प्रेम से सबको अपना बना सकते हैं, अत्याचारों से नहीं। हमें पहिले स्वयम् को बदलना होगा, तब कहीं दूसरों को अपना बना सकेंगे। धूमसिंह के कुकर्मों ने तो हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा। गाँव की हर जवान लड़की पर उसकी नज़र रहती है।"

ब्रह्मचारी— "हमें किसी के व्यक्तिगत जीवन से क्या लेना, देखना तो यह है कि समाज के लिये उसकी क्या सेवायें हैं। समाज के सब कामों में वह सबसे आगे रहता है। बड़े बड़े आदमियों से उसका मेल है।"

महेश्वरी प्रसाद— "उसका बड़े बड़े आदमियों से मेल इसलिये है कि वह चोर बाज़ार से रुपया पैदा कर चन्दे में उसका कुछ भाग देता रहता है। समाज में अगुआ वह इसलिये है कि कृत्रिम लीडरी की आड़ में उसके पाप छिपे रहते हैं। समाज में नामी होने से ही कोई बड़ा नहीं होता ब्रह्मचारी जी! बड़प्पन का आदर्श चरित्र है। समाज में उसी का प्रभाव स्थायी रहता है जो करनी और कथनी में समान हो। यह लो धूमसिंह भी आ ही गये। उम्र तो बहुत बड़ी है इनकी। पर आज तो बहुत गुस्से से में आ रहे हैं, और साथ में शकुन की माँ रामप्यारी भी है। मामला कुछ संगीन जान पड़ता है।"

"आइये धूमसिंह जी!" महेश्वरी प्रसाद और ब्रह्मचारी जी ने उठ कर उनका स्वागत करते हुए कहा।

धूमसिंह— "क्या आयें और क्या न आयें! इन बदमाशों ने नाक में दम कर रक्खा है। एक वह लुच्चा प्रभात इनकी लड़की को लिये फिरता ही था, अब इन बदमाशों ने मिल कर एक दल बना लिया है। यदि आप सब इसी तरह आँखें मींचे बैठे रहे तो एक दिन ये हमारे सर पर सरे आम जूते लगायेंगे।"

महेश्वरी प्रसाद— "जूता तो उन्होंने तुम्हारे मुँह पर लगा दिया। चमड़े का जूता ही जूता नहीं होता, मानने वाले के लिये बात का जूता बहुत बड़ा होता है और तुम समझते हो कि तुम शकुन की माँ रामप्यारी के साथ भलाई कर रहे हो! उसकी इज़्ज़त को बर्बाद करने वाले तुम हो। और बेवकूफ तो ये हैं जो तुम जैसों के साथ दर्वाज़े दर्वाज़े अपनी बेटी की बुराई करती फिरती हैं। शकुन कोई बालक नहीं है। पचीस साल की पढ़ी लिखी स्त्री है। वह अपना भला बुरा समझने लायक़ है। यदि वह प्रभात के साथ रह कर सुख अनुभव करती है तो समाज बीच में रोड़ा क्यों बनता है। क्या समाज कभी उसके आँसू पूछने पहुँचा था, जो उसके सुख में शूल बनकर जा खड़ा हुआ। हमारे समाज में विधवाओं की दशा क्या किसी से छिपी है?"

रामप्यारी— "तो मैं तो अब यही चाहती हूँ कि वे दोनों आपस में शादी कर लें।"

महेश्वरी प्रसाद— "समाज को न इस तरह शान्ति है, न उस तरह शान्ति होगी। तुम ही तो कहती थीं कि प्रभात विवाह के लिये तैयार हो गया था। फिर कौन तैयार नहीं हुआ? समाज तैयार नहीं हुआ। आदमी पाप इसलिये करता है कि दुनिया उसे किसी तरह भी चैन नहीं लेने देती। मैंने प्रभात से बातें की हैं, पर मैंने कभी उसे तुम्हारे विरुद्ध नहीं पाया। वह कभी तुम्हारी बुराई नहीं करता। वह तुम्हारा बड़ा सम्मान करता है, शायद शकुन से अधिक। मेरी राय में तुम्हें शान्ति

से बैठना चाहिये। माँ को चाहिये कि दोषों पर पर्दा डाले, न कि उनका ढिंढोरा पीटे। माँ की छाया ही संतान के लिये हर ताप में छाया है।"

रामप्यारी— "जब आग लगती है तो कहना ही पड़ता है। मैंने तो बहुत रोका पर जब वे ही नहीं रुके तो मैं क्या करूँ?"

महेश्वरी प्रसाद— "शान्ति करो! जो होना होता है उसमें मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। अच्छा धूमसिंह जी! फिर क्या सोचा?"

धूमसिंह— "सोचा क्या! यह जो धुँवा उठ रहा है, यदि इसे न रोका गया तो सारे गाँव में आग लग जायेगी।"

महेश्वरी प्रसाद— "आग तो इतनी धधक चुकी है कि बुझाने के सारे प्रयत्न व्यर्थ दीखते हैं। अब गाँव के उन भोले भाले मूर्खों को जागरण की ज्योति मिल गई है। विकास और प्रेरणा का प्रभात उनके पास है। फिर भी यदि तुम्हें उन से अधिक भलाई का कोई उपाय सूझता हो तो बताओ!"

धूमसिंह— "अब धींगा-मस्ती की तो चलती नहीं। मेरी राय में इन बदमाशों पर अभियोग चला दिया जाये। वह शंकर भगवान् का मन्दिर हमारे बाप दादाओं का है। वहाँ हरिजन विद्यालय नहीं खुल सकता।"

महेश्वरी प्रसाद— "निर्णय क्या होगा यह तो भविष्य जानता है। लेकिन झगड़े से झगड़ा नहीं निबटा करता, प्रेम से सुलझ जाता है। अच्छा तो यह है कि उनसे प्रेम बढ़ाया जाये और उन्हें सहयोग दिया जाये। वहाँ विद्यालय खोलना कोई बुरा काम तो है नहीं।"

ब्रह्मचारी— "तो फिर होने दीजिये सब भ्रष्ट, भंगी और चमारों को अपनी बेटियाँ और ब्याह दीजिये!"

महेश्वरी प्रसाद— "नाराज़ क्यों होते हो भाई! करो जो तुम्हारे जी में आये! भले की कहो बुरी लगती है।"

धूमसिंह— "तो फिर सुनिये, हमने मन्दिर का ट्रस्ट क़ायम कर लिया है। ये पाँच आदमी हैं उसमें— पण्डित राधाकृष्ण, देवसुमन ब्रह्मचारी, महात्मा देवव्रत, आप और मैं। अब कल इन पर मुक़दमा दायर कर दिया जायेगा।"

महेश्वरी प्रसाद— "मुझे तो रहने ही दो तो अच्छा है। मैं बूढ़ा आदमी कुछ आपकी मदद तो कर नहीं सकता।"

ब्रह्मचारी— "आपके नाम का उपयोग ही हमारे लिये सब कुछ है।"

महेश्वरी प्रसाद— "जो कुछ आप करने जा रहे हैं उसमें मेरे नाम के उपयोग को मेरी अन्तरात्मा नहीं कहती।"

धूमसिंह— "आप कुछ मत करिये, हम केवल यह चाहते हैं कि सब यह समझें कि आप हमारे साथी हैं।"

महेश्वरी प्रसाद आँखों की लिहाज़ के कारण चुप हो गये। धूमसिंह और ब्रह्मचारी भी कुछ देर तो मौन बैठे रहे और फिर यह कहते हुए चल दिये— "आप देखते रहिये हम इन्हें मज़ा चखा देंगे।"

दूसरे दिन से सारे गाँव में भयानक हलचल पैदा हो गई। हरिजनों और धर्म के ठेकेदारों के अलग अलग दो थोक बन गये। व्यक्तिगत विरोध ने आज सामूहिक रूप ले लिया। हरिराम बापू को इस वातावरण से गहरी चिन्ता हो गई। यद्यपि वे बुढ़ापे की गम्भीरता से बिल्कुल शान्त थे लेकिन गाँव के विनाश की चिन्ता ने उनका हृदय हिला दिया। आज वे कुछ तिलमिला से रहे हैं। देखते नहीं, कभी खाट पर लेटते हैं और कभी बैठ जाते हैं। कभी उनके हृदय में बिजली सी कौंधती है तो कभी एकदम खड़े होकर घूमने लगते हैं।

बापू के हृदय में बिजली सी दौड़ी, वे उठकर खड़े हुए और अपने आप से आप ही बोले— "कैसे पागल हो रहे हैं! अपना भला बुरा भी

नहीं सोचते। गाँव में आग लगाने पर उतारू हो गये। आपस ही में सर फोड़ने पर तुल गये। फूट जहाँ प्रवेश करती है, वहाँ चीज तक नहीं बचता। आदमी आदमी से घृणा करता है। अछूत कहकर अपने ही अंग को काट कर अलग करते हैं। जान पड़ता है बुद्धि और मनुष्यता ने मनुष्य का साथ छोड़ दिया। किन्तु कुछ भी हो मैं अपने रहते मनुष्य को पागल बनने से रोकता ही रहूँगा।"

कहते हुए बापू उठे और लकड़ी उठा मन्दिर की ओर चल पड़े। पाले की चहकती हुई रात में जर्जर बल हरिराम विनाश के पंख नोचने भावना के वायुयान पर चल पड़े। वे मध्य तक पहुँचे होंगे कि उधर से विकास, प्रभात, ज्योति और प्रेरणा आदि आते दिखाई दिये।

दूर ही से बापू को जल्दी जल्दी अपनी ओर आते देख विकास ने साथियों की ओर संकेत करते हुए कहा— "आज तो बापू के पैरों में बिजली की तड़प जान पड़ती है। गम्भीरता से इतनी तेज़ आ रहे हैं कि मानो दूसरा चरण सृष्टि के दूसरे सिरे पर ही जा कर रुकेगा।"

इतने में बापू पास आगये और सबने हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया। उत्तर में आशीर्वाद का हाथ उठाते हुए बापू ने कहा— "जो नाश के बादल घिर आये हैं उनके लिये क्या सोचा ?"

विकास— "यही तो आप से पूँछने जा रहे थे कि क्या करें।"

बापू— "मन्दिर वापिस चलो, वहीं बैठ कर बातें होंगी।"

बापू के साथ बातें करते हुए सब मन्दिर वापिस आगये। मानसिंह बाल्मीकि और रामप्रसाद मन्दिर में जलते हुए एक छोटे से दीपक के प्रकाश में बैठे बातें कर रहे थे। अपने नेताओं को देख वे उत्साह से हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बापू का संकेत पा फिर सब उसी दीपक के सामने बैठ बातें करने लगे।

ज्योति— "तो क्या करें बापू !"

बापू— "सत्य, प्रेम, संगठन और सेवा के सहारे निर्भय रहो! सब के भले में अपना भला समझते हुए निष्काम कर्म करो, फल शुभ होगा। जो अत्याचार सहने के अभ्यासी होते हैं विजय उनसे घृणा करती है। बुद्धिमानों ने समाज की व्यवस्था अपने सुख के लिये तुम्हारी ज़िन्दा लाशों पर की है। हरिजन सेवा गौरव है, किन्तु हरिजनों से घृणा करना समाज का कलंक है। मन्दिर को अपनी बपौती मानने वाले हरिजनों का निषेध नहीं करते अपितु अपने हाथ पैरों से घृणा करते हैं।"

विकास— "पर बापू! दावा कर दिया है। वे कहते हैं कि तुम हमारे मन्दिर में हरिजन विद्यालय नहीं खोल सकते। तो क्या जब तक मुक़दमा तय हो हम विद्यालय का सारा काम बन्द रक्खें?"

बापू— "यह प्राचीन मन्दिर पता नहीं कब और किसने बनाया था। मैं तो बचपन से इसे वीरान देख रहा हूँ। बचपन में जब कभी मैं अपने बाबा के साथ इधर टहलता हुआ आया करता था तो वे मुझसे कहा करते थे कि यह मन्दिर सत्युग के समय का है। हम अपने बाबा पड़बाबा से सुनते चले आ रहे हैं। न जाने कितने बाबा पड़दादा यही वाक्य दोहराते दोहराते चले गये किन्तु पता नहीं मन्दिर के इस टीले के गर्भ में क्या छिपा है। कुछ भी हो तुम इस मन्दिर का जीर्णोद्धार ही नहीं मानवता का जीर्णोद्धार कर रहे हो। शुद्ध हृदय से जो कर रहे हो करते रहो, पर यह न भूलना कि बलिदान की वेदी ही मन्दिर है।"

रामप्रसाद— "हम बलिदान से हटने वाले नहीं हैं बापू! हम अपने रक्त की अन्तिम बूँद भी अर्घ्य मान कर मन्दिर पर चढ़ा देंगे।"

विकास— "वैसे तो हमारा हर साथी विद्यालय के लिये तन, मन, धन से लगा हुआ है पर बापू अब रुपया नहीं रहा। जो कुछ हम सबके पास था वह तो सब विद्यालय में लग चुका, अब आगे काम कैसे चलायें यह चिन्ता है। तूफ़ान खड़े हो गये, अर्थ का अभाव है, विद्यालय के

अभी चार कमरे भी नहीं बने। जो रुपया था वह सब मन्दिर के तीन टीले साफ कराने में ही समाप्त हो गया। बड़ी कठिनता है बापू! आगे का रास्ता दिखाई नहीं देता।"

बापू— "चलते रहो, रास्ता स्वयं बनता चला जायेगा। अच्छे उद्देश्यों के लिये अर्थ का अभाव नहीं रहता! झोलियाँ लेकर माँगने निकलो, हृदय पिघलेंगे। जनता तन, मन, धन से तुम्हारे साथ होगी।"

रामप्रसाद— "यह दुनिया है बापू! यहाँ माँगने से नहीं मिलता, छीनने से मिलता है। बिना दबे गन्ना रस नहीं देता। जब तक इन धनवानों की छाती पर पिस्तौलें नहीं रक्खी जायेंगी तब तक वे दमड़ी भी उगलने वाले नहीं हैं।"

बापू— "यह तुम भूलते हो भाई! हृदय परिवर्तन से बड़ा उपाय और कोई नहीं, कल्याण इसमें है कि धनवानों को अपना कोषाध्यक्ष बना लो। निस्पृह रह कर सेवा करो, संसार तुम्हारे साथ आयेगा।"

ज्योति— "चाहे कितना भी अच्छा काम करो, संसार उसे देख कर आँखें बन्द कर लेता है। यह दुनिया है दुनिया! जो भलाई में भी बुराई देखती है।"

बापू— "दुनिया अपना काम करती है और भले आदमियों को अपना काम करते रहना चाहिये। संसार का सत्य स्वप्न और जागृति दोनों ही हैं।"

प्रभात— "मेरी प्रार्थना है बापू! कि जब तक विद्यालय तैयार हो, तब तक आप अपना आसन इसी मन्दिर में रक्खें।"

बापू— "विद्यालय तैयार मेरे यहाँ केवल आसन लगाने से नहीं होगा। इसके लिये त्याग, बलिदान, श्रम और सचाई चाहिये। मैं यहाँ

आसन लगा कर नहीं बैठूँगा, तुम सवेरे मेरे साथ झोलियाँ लेकर धन इकट्ठा करने चलो !"

ज्योति— "क्या आप चलेंगे ! नहीं बापू! आप इतने बूढ़े हैं कि हम आपको कष्ट देते हुए अच्छे नहीं लगेंगे।"

बापू— "शायद मेरा बुढ़ापा देख कर सिद्धि तुम्हारे साथ हो जाय। बुढ़ापा खाट पर पड़ने के लिये नहीं आता, वह जीवन और दुनिया को कुछ देने के लिये आता है।"

विकास— "तो फिर सवेरे कहाँ चलेंगे ! यदि दो दिन तक कहीं से पैसे का प्रबन्ध नहीं हुआ तो जो कुछ अब तक किया है वह सब मिट्टी में मिल जायेगा।"

प्रभात— "अर्थ भी कितना आवश्यक है संसार में !"

प्रेरणा— "आप सवेरे रामपुर चलिये। सेठ घनश्यामदास लाखों रुपए के आदमी हैं। उनके हृदय में एक चोट भी है। वे अवश्य इस भले काम में सहायक होंगे। उस दिन जब मधुप के मरने पर हम उनके घर गये थे तो सेठ जी का लड़का कैलाश कैसा साधू दीखता था !"

विकास— "तुम ठीक कहती हो प्रेरणा ! वे अवश्य इस अच्छे काम में मदद करेंगे।"

प्रातः पाँच बजे बाल्मीकि और रामप्रसाद को काम समझा विकास, ज्योति और प्रेरणा बापू के साथ रामपुर चलने को खड़े हुए। खड़े होकर एक बार मन्दिर को सब ने चारों ओर से देखा और फिर प्रभात की तरफ़ देखते हुए बापू ने कहा— "हम जा रहे हैं, जब तक हम आयें तब तक विद्यालय का पूर्ण उत्तरदायित्व तुम पर है। शान्ति और सावधानी से रहना। यह धूमसिंह बड़ा ज़ालिम है।"

प्रभात— "परमात्मा भी बड़ा रक्षक है बापू !"

प्रभात की ओर विश्वास से देखते हुए बापू ने अपने चरण बढ़ाये। आगे आगे बापू और पीछे पीछे विकास, प्रेरणा और ज्योति सूर्य की किरणों के साथ साथ चले। सूरज जब पूरी तरह निकल आया तो ये रामपुर पहुँच लिये। नगर में प्रवेश कर बापू ने कहा— "पहिले धन्नोमल के यहाँ चलेंगे।"

प्रेरणा जो अब तब चुपके चुपके रो रही थी बापू की बात सुनते ही हिचकियाँ भरने लगी। ज़ोर की हिचकी लेते हुए उसने कहा— "बड़े अच्छे थे हमारे पिता जी।"

बापू— "मौत न अच्छे को छोड़ती है न बुरे को।"

इतने में घर आगया। प्रेरणा दौड़ कर अपनी माँ से चिपट गई। माँ और बेटी की आँखों से सावन बरसने लगा। बेटी को छाती से लगा माँ लक्ष्मी ने रोते हुए कहा— "तेरे पिताजी कहाँ गये बेटी! मैं तो बिरान हो गई। मुझे तो साग लाना भी नहीं आता।"

सब की आँखें भर आईं, आँचल से आँसू पूछते हुए ज्योति ने कहा— "मैं भी तुम्हारी ही तरह हूँ। धैर्य से काम लो माँ! स्वयम् को सँभालो! तुम्हारी प्रेरणा तुम्हारे लिये सब कुछ है।"

लक्ष्मी— "बेटी तो पराया धन है, दो दिन को आगई तो घर में उजाला हो गया।"

विकास— "शान्ति रक्खो माँ!"

लक्ष्मी— "शान्ति तो है ही बेटा! अच्छा आप आराम से नहाओ धोओ, मैं खाना तैयार करती हूँ तुम्हारे लिये।"

लगभग ग्यारह बजे सब स्नान भोजनादि से निवृत्त हुए। प्रेरणा ने आज अपनी माँ के साथ खाना खाया। प्रेरणा के आने की खबर सुनते

ही उसकी कुछ सहेलियाँ मिलने आगईं। वह दूसरे कमरे में उनसे बात करती हुई चली गई।

"अच्छी तो है ललिता ! क्या हाल है माधुरी ! और तू कब आई सुनीता ! सुसराल से ? सुनाओ सुमति का क्या हाल चाल है ?" प्रेरणा ने प्रेम और शिष्टाचार के आवेग में एक साथ ही कहा।

उत्तर भी उसे एक साथ ही मिले। अन्तिम प्रश्न के उत्तर में गम्भीरता छा गई। सुनीता ने अपनी सखी का हृदय अपने हृदय में लाकर कहा— "सुमति की शादी सेठ घनश्यामदास के पुत्र कैलाश से हो गई है, पर बहुत दुखी है बिचारी। कैलाश बुरी तरह शराब पीने लगा है। नित्यप्रति एक नयी लड़की नयी कार में बिठाकर लाता है। बदनी में इस साल उसे दो करोड़ रुपये मिले हैं। पानी की तरह रुपया बिखेर रहा है। दिल्ली की मशहूर वेश्या हुस्नआरा पर उसने लाखों रुपए खर्च डाले। रहता भी अब एक शानदार बँगले में है।"

सुनीता कह ही रही थी कि ज्योति ने आकर कहा— "चलो प्रेरणा ! सेठ जी के यहाँ चलना है।"

"अभी आई बहिन जी !" उत्तर सुन कर ज्योति चली गई, और प्रेरणा सोच में पड़ गई। कुछ देर के लिये वहाँ नीरवता छागई।

मौन भंग करते हुए सुनीता ने कहा— "तुम अब उनके साथ जाओगी, हम चलें।"

प्रेरणा— "और सुनाओ, तुम तो सुसराल में अच्छी तरह हो ?"

"बहुत अच्छी तरह, बड़े अच्छे हैं वे" कहती हुई पहले सुनीता और पीछे सब सखियाँ चली गईं।

प्रेरणा पुनः उसी कमरे में आगई जिसमें ज्योति, विकास और बापू बैठे थे। उसे देखते ही विकास ने उठते हुए कहा— "चलो, चलें।"

"चलिये !" प्रेरणा ने चिन्ता और चाह के संगम में तैरते हुए कहा ।

नगर से बाहर लगभग एक कोस पर सेठ कैलाश प्रकाश का बँगला था । बारह बजे होंगे जब ये कोठी पर पहुँचे । दर्वाज़े पर चौकीदार बैठा मूछों पर अलबेट दे रहा था । प्रेरणा ने आगे बढ़ कर पूछा—"सेठजी हैं ?"

चौकीदार— "जी हाँ, कहाँ से आये हैं आप ?"

"कहीं से नहीं," कहती हुई प्रेरणा अन्दर घुसी और पीछे पीछे घुसे विकास, बापू और ज्योति । द्वारपाल यह कहता ही रह गया "ठहरिये, मैं सेठ जी को ख़बर करता हूँ" और ये सेठ जी के कमरे में पहुँच भी लिये ।

कैलाश प्रकाश एक सजे हुए कमरे में शानदार पलँग पर फूल सी रेशमी रज़ाई पैरों पर डाले पड़े थे, और पास ही बैठी थी एक बहुत ही ख़ूबसूरत नौजवान लड़की । वह जितनी सुन्दर थी उतनी ही फ़ैशनेबिल भी । यद्यपि वह इस समय अस्तव्यस्त थी तथापि उसकी हर कम्पन में शृंगार था । उस रति सी रमणी की हर अदा निराली थी । बालों की बनावट, ललाट की लालिमा, फूल बरसाती हुई अधरों की न मुस्काते हुए भी मुस्कान एक बार तो योगियों को भी परास्त करने में समर्थ थी। उसका चेहरा, उसका वक्ष, उसकी अँगड़ाइयाँ आँखें चौंधिया देती थीं । चमत्कार था उस सुन्दरी में । विकास कैलाश को देखना भूल गये और देखते रह गये अद्भुत कलाकार की उस कृति को । वे मन ही मन में सोचने लगे, "कहीं यही तो जीवन का सत्य नहीं है।"

प्रेरणा कैलाश के मन की बात परख गई । कैलाश इन्हें देखते ही सटपटा गया । उसे क्रोध भी आया और लज्जा भी । किन्तु मुँह

देखी शर्म में उसने चिढ़ते हुए लेटे ही लेटे कहा— "कहिये, कैसे आये ?"

प्रेरणा— "तुम्हें तुम्हारी बहिन मधुप की याद दिलाने आई हूँ, इतनी जल्दी भूल गये उसे!"

इस बात में कुछ ऐसी चोट थी कि सहसा कैलाश की आँखें भर आईं। उसने उस सुन्दरी की ओर देखते हुए कहा— "तुम दूसरे कमरे में चलो कामिनी! मुझे इनसे कुछ बातें करनी हैं।"

सुनते ही सुन्दरी चली गई और कैलाश उठकर बैठे हो गये। उसकी आँखों में आँसू और अपनी बहिन मधुप की तस्वीर थी। वह फिर उसी स्थिति में आ गया जिस स्थिति में पहली बार प्रेरणा और विकास से मिला था। रोते ही रोते उसने कहा— "मेरे जीवन में शान्ति नहीं है, अतीत की याद दिलाकर मेरी ज़िन्दगी को बोझ बनाने तुम क्यों चली आईं।"

प्रेरणा— "मैं तुम्हें शान्ति दूँगी।"

कैलाश— "नहीं, तुम मुझे शान्ति न दे सकोगी। सोने चांदी की झनकार मुझे शान्ति न दे सकी। शराब की बोतलों में मुझे शान्ति नहीं मिली। रूप और जवानी से मेरे आँसू नहीं पुछे। कलाओं की तानों में मेरे लिये तृप्ति नहीं। संसार जिन्हें पाप कहता है वे मेरे जीने के साधन-मात्र हैं। मैं बस्ती से बाहर बस कर जीना चाहता हूँ। तुम मुझे यहाँ भी नहीं जीने देना चाहते!"

प्रेरणा— "दुनिया तो किसी को भी नहीं जीने देती। लेकिन तुम जिस तरह जीना चाहते हो वह जीवन मरण है। तुम जहाँ तृप्ति टटोलते हो वहाँ तुम्हें अतृप्ति ही मिलेगी। पीते पीते थक जाओगे, पर ओठ प्यासे ही रहेंगे। तुम जिस प्याली में अमृत समझे हो उसमें विष है। छोड़ दो यह अतृप्ति का पथ और चलो हमारे साथ।"

कैलाश— "कहाँ?"

प्रेरणा— "वहाँ जहाँ बच्चे भूख से बिलख रहे हैं, ठंड से ठिठर रहे हैं। वहाँ जहाँ आँसुओं को आधार चाहिये। वहाँ जहाँ अशिक्षा का अँधेरा पड़ा हुआ है। वहाँ जहाँ समाज पथ भूला हुआ पड़ा है। वहाँ जहाँ 'त्राहि त्राहि!' की विदारक ध्वनि से धरा कांप रही है। वहाँ जहाँ मानवता पर दस्युता की रङ्गरलियाँ हैं। चलो, वहाँ तुम्हें तृप्ति मिलेगी। और साथ ले चलो सुमति को भी।"

सुमति का नाम सुनते ही कैलाश फिर रोने लगा। धधकते हुए हृदय से उसने कहा— "दबी हुई आग को धधकाने का यत्न मत करो प्रेरणा! सुमति यदि मेरे कहने पर चलती तो मेरी आज यह दुर्दशा नहीं होती। जब मुझे वहाँ शान्ति नहीं मिली तो मैं चारों तरफ शान्ति के लिये भटकने लगा।"

प्रेरणा— "सुमति है कहाँ? ज़रा बुलाओ तो उसे, मेरी तो वह सहेली है!"

सहसा सुमति ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा— "लो मैं आ गई! क्या करोगी मुझ से मिलकर, ये जो कहते हैं सत्य है।" कहते कहते सुमति रो पड़ी। प्रेरणा ने उसे हृदय से लगाते हुए उठाया और बाहर ले गई। अपने आँचल से उसके आँसू पूछती हुई बोली— "धैर्य रक्खो!"

सुमति— "सच तो यह है कि मैंने इनका कोई कहना नहीं माना। ये चाहते थे कि मैं नये ज़माने की नई लड़की की तरह इनके साथ रहूँ, पर मैंने इनकी एक न सुनी। और परिणाम आज आपके सामने है। मैं दुखी हूँ, पर वे मुझसे अधिक दुखी।"

प्रेरणा— "जो बात बीत गई उससे आगे का रास्ता देखो। कैलाश से क्षमा मांगो और चलो उनके कहने पर। वे जो कुछ चाहें तुम उसमें

साथी बनो, पत्थर नहीं। अपने प्रति किसी के निरन्तर त्याग को देखकर वज्र से वज्र दुर्भावना भी बदल जाती है। चलो मेरे साथ और पकड़ लो उनके चरण।"

सुमति प्रेरणा पाकर चली और अपने पति के चरणों में गिर पड़ी। कैलाश की आँखों के आँसुओं ने उसका सर भिगो दिया और सुमति की आँखों के आँसुओं ने पति के चरण। करुणा और प्रेम के इस अध्याय के पास खड़े बापू, ज्योति, प्रेरणा और विकास भी रो पड़े।

"तो क्या मुझे फिर बाज़ार में आकर बैठना होगा" करुणा और प्रेम के बीच कामिनी ने प्रवेश करते हुए कहा।

"कैलाश के हृदय में बैठी हुई कामिनी अब बाज़ार में नहीं, प्रेम की पवित्र ऊँचाई पर बैठेगी।" सुमति के सर पर हाथ रख कामिनी को पकड़ पास बैठाते हुए कैलाश ने कहा।

६

"क्या आप समझते हैं कि कैलाश आकाश से पृथ्वी पर आजायेंगे ? क्या मदिरा की रिमझिम और रुनझुन सुनने वाले कान पीड़ा की पुकार सुनने को तैयार होंगे ?" कैलाश-कुञ्ज में टहलते हुए विकास ने हरिराम से कहा।

हरिराम— "जिसने अंधेरा नहीं देखा उसे उजाला पहिचानने में देर लगती है, किन्तु तमिस्रा में दीपक के बिना किसे दिखाई देता है ? उजाला देखते ही उसकी आँखें खुल जायेंगी।"

विकास— "नृत्य की झनकार के उपासक को सुधार से क्या मतलब बापू !"

हरिराम— "उपासक यदि कोई है तो वह हमारे ध्येय को भी उपास्य चुन सकता है।"

विकास— "तो फिर कैलाश से बातें कर लेनी चाहियें। हमें हर हाल में आज गाँव पहुँचना है। वहाँ उत्पात का भारी भय है। हम कल कह कर आये थे कि कल अवश्य आ लेंगे।"

बापू— "लो वे आ गये कैलाश।"

कैलाश कार से उतर कुछ मुस्कराते हुए बापू और विकास के पास आकर खड़े हो गये। विकास ने आशा से आदर करते हुए कहा— "बड़ा सुन्दर है आपका यह सब!"

कैलाश— "ईश्वर की कृपा है।"

बापू— "अब आप बैठिये चल कर, हमें आप से कुछ बातें करनी हैं।"

"आइये न!" कहता हुआ कैलाश आगे बढ़ा और साथ ही बढ़े विकास और बापू। बँगले के बड़े कमरे में प्रवेश करते हुए कैलाश ने देखा कि एक भयंकर सर्प सामने से आ रहा है। "बचिये!" कहते हुए उसने नौकरों को आवाज़ दी। पर जब तक नौकर आये तब तक तो साँप ज़मीन की एक दरार में घुस न जाने किधर चला गया।

"खोद कर देखो ज़मीन!" कैलाश की आज्ञा सुनते ही खुदाली से ज़मीन खुदने लगी। लगभग दो ढाई हाथ ज़मीन खोदने के बाद नौकरों ने साँप को एक घड़े से अलग होकर ज़मीन की गहराई की ओर जाते देखा। सब ने एकदम चिल्ला कर कहा— "वह जा रहा।" पर दूसरी कुछ बात मुँह से निकले इससे पहिले ही साँप लापता हो गया।

"इस घड़े में कहीं साँप ही तो नहीं है।" नौकरों ने डरते हुए कहा।

"जो कुछ होगा सामने आ जायेगा, डरते क्यों हो। फोड़ो घड़े को।" कैलाश ने कुछ परेशानी की दशा में कहा, पर किसी का हाथ घड़ा फोड़ने को न बढ़ा। कैलाश को गुस्सा आया, उसने एक नौकर के हाथ से खुदाली ली और घड़े पर मारी।

'छन छन छन' की आवाज़ के साथ गिन्नियाँ बिखर पड़ीं। भाग्य जब देता है तो ज़मीन फाड़ कर। आहिस्ता आहिस्ता अशरफियाँ निकाल

रामप्रसाद— "पुलिस मुझे उस दिन पकड़ सकेगी जिस दिन इस गाँव में एक भी अत्याचारी नहीं रहेगा। मेरे जीवन का सबसे पहला सत्य अत्याचारियों को मारना है। देखती हो यह पिस्तौल! यह थानेदार का खून पी चुकी, अब धूमसिंह और ब्रह्मचारी का लहू पियेगी।"

प्रेरणा— "पर इससे तो हम लक्ष्य से भटक जायेंगे भैया! हम मारना नहीं चाहते, परिवर्त्तन चाहते हैं।"

रामप्रसाद— "परिवर्त्तन आतंक से होता है, गिड़गिड़ाने से नहीं। क्रान्ति के लिये पिस्तौल है, कोयल का मीठा गीत नहीं। जब तक छातियों पर पिस्तौलें नहीं रक्खी जायेंगी तब तक मनुष्य दूसरे के दुःख पर नाचता ही रहेगा। अब तुम यहाँ से हट जाओ, नहीं तो पुलिस आकर तुम्हें पकड़ लेगी।"

प्रेरणा— "क्या मौत और जेलखाने के भय से उद्देश्य छोड़ दें! तुमने ध्येय को छोड़कर भूल की भैया!"

रामप्रसाद— "मैंने भूल नहीं की, भूल सुधारी है। सीधी उँगलियों से घी नहीं निकला करता, अतः मुझे उँगलियाँ टेढ़ी करनी पड़ीं। यदि भावनाओं को साकार देखना चाहती हो तो भावुकता छोड़ो। देखो, वह कार आ रही है, शायद पुलिस ही हो, हटो यहाँ से, छिप जाओ बराबर के घने खेतों में।"

प्रेरणा— "छिपने की चाह असत्य को होती है, सत्य को नहीं।"

"लो फिर मैं तो चला" कहता हुआ रामप्रसाद मन्दिर के पीछे जा कहीं ग़ायब हो गया, और आ पहुँची कार मन्दिर के दर्वाज़े पर। धूमसिंह और ब्रह्मचारी को कार से उतरते देख शकुन का मुँह फक पड़ गया। ब्रह्मचारी ने मुस्कराते हुए धूमसिंह को देखा, और फिर दोनों शकुन और प्रेरणा के सामने जाकर खड़े हो गये। प्रेरणा पर पहली दृष्टि पड़ते ही ब्रह्मचारी ने मन ही मन में लड्डू फोड़ते हुए कहा—

"कितनी सुन्दर है यह!" तथा दूसरी बात धूमसिंह के मुँह से निकली "चलो हमारे साथ!"

प्रेरणा— "कहाँ?"

धूमसिंह— "जहाँ तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। मेरे मकान पर आराम से रहना।"

प्रेरणा— "आपकी कृपा के लिये धन्यवाद! हम विद्यालय छोड़ कर कहीं नहीं जायेंगी।"

ब्रह्मचारी— "तुम्हें चलना ही पड़ेगा, पुलिस ने बुलाया है।"

प्रेरणा— "प्राण रहते हम तुम्हारे साथ कहीं नहीं जायेंगे।"

धूमसिंह— "इन्हें खींच कर मोटर में डालो, ये बातों से बाज़ आने वाली नहीं हैं।"

कहते हुए धूमसिंह ने प्रेरणा का हाथ पकड़ कर खींचने की कोशिश की। किन्तु वह एक दो क़दम ही खींच पाया होगा कि धाँय से सनसनाती हुई गोली धूमसिंह के सीने में आकर घुसी। 'हाय!' करता हुआ वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लाल लाल आँखें निकाले पिस्टल हाथ में लिये रामप्रसाद सामने आकर खड़ा हो गया। क्रोध से हुंकारती हुई वाणी में उसने कहा— "ब्रह्मचारी जी! सावधान! आज मैं उस दिन के चाँटे का प्रतिशोध लूँगा।"

पिस्तौल सामने तनी देख ब्रह्मचारी को लकवा मार गया। काँपते हुए हाथ जोड़ कर उसके मुँह से निकला— "क्षमा! बचाओ बहिन! मुझे बचाओ!"

"यह प्रतिशोध नहीं भैया! छोड़ दो पिस्तौल! हृदय परिवर्तन से बड़ा बदला और क्या हो सकता है!" कहती हुई प्रेरणा ब्रह्मचारी के सामने आकर खड़ी हो गई।

रामप्रसाद— "तुम समझती हो ये बदल गये! ऐसे आदमी समय पर इसी तरह बदल जाया करते हैं। शत्रु पर दया करना पाप है। शत्रु पर की हुई दया का अर्थ अपनी हत्या है।"

प्रेरणा— "दया की दमक तो तभी है तब शत्रु पर दया की जाये। अपनों पर दया क्या, वह तो स्वार्थ है।"

रामप्रसाद— "बिच्छू और ततैये चलते चलते पीछे से डंक मार देते हैं। ये ऐसे ही भयंकर बिच्छू हैं।"

ब्रह्मचारी— "मैं आज से आप का साथी हूँ। भूल जाओ सब पुरानी बातों को।"

"हम तो भूले जाते हैं ब्रह्मचारी! पर तुम न भूल जाना।" कहता हुआ रामप्रसाद आँखों से ओझल हो गया।

जब अपने ऊपर पड़ती है तो आदमी को दूसरे का पता तक नहीं रहता। अपनी जान बचाने की चिन्ता में ब्रह्मचारी धूमसिंह को भूल गये। पर प्रेरणा तड़पते हुए धूमसिंह के पास पहुँची। साथ ही शकुन और ब्रह्मचारी भी घायल की ओर झुक गये। कराहते हुए धूमसिंह ने कहा— "शायद मैं बचूँगा नहीं, मुझे क्षमा कर दो, मैंने बहुत पाप किये हैं।"

आपत्ति में चाहे कोई कितना भी पापी क्यों न हो, वह सहानुभूति का पात्र बन ही जाता है। दुखी चाहे कोई भी क्यों न हो, भले आदमी उस के दुःख से दुखी होने ही लगते हैं।

प्रेरणा, शकुन और ब्रह्मचारी की आँखें भर आईं। धैर्य देते हुए शकुन ने कहा— "आप ठीक हो जायेंगे! घबराइये नहीं, हम अभी आपको अस्पताल ले चलते हैं।"

कहते हुए तीनों ने धूमसिंह को उठा मोटर में लिटाया। जैसे ही गाड़ी चलाने को तैयार हुए वैसे ही कैलाश कार लेकर वहाँ आ पहुँचे। उसकी दशा अस्तव्यस्त थी, माथे पर पसीना और वाणी में कम्पन था। कामिनी भी उसी कार में गहरी चिन्ता में डूबी बैठी थी।

शकुन और प्रेरणा ने एक ही साथ पूछा— "क्या बात है ? प्रभात और बाल्मीकि जी तो ठीक हैं ?"

कैलाश— "बाल्मीकि जी तो ठीक हैं। प्रभात के पैर का ऑपरेशन कर गोली निकाल दी गई है, पर उनका हाल अच्छा नहीं है। ईश्वर की इच्छा !"

शकुन यह सुनते ही चीत्कार कर उठी। "मुझे जल्दी वहाँ पहुँचा दो" शकुन ने असीमित वेदना से कराहते हुए कहा।

"हम सब वहीं चल रहे हैं।" कहते हुए कैलाश ने कार चला दी। आगे आगे कैलाश की कार और पीछे पीछे ब्रह्मचारी की कार अस्पताल की तरफ चल पड़ी।

अस्पताल पहुँचते ही कामिनी और सुमति के साथ प्रेरणा और शकुन बिजली की तड़प सी उस कमरे में पहुँचीं जिसमें प्रभात अचेतन से पड़े धीमे धीमे कराह रहे थे, तथा नर्स पास खड़ी इंजेक्शन लगा रही थी। शकुन ने भूखी भिखमंगी की दशा में नर्स की तरफ देखते हुए कहा— "ठीक तो हो जायेंगे न !"

नर्स— "ठीक करने के ही उपाय कर रहे हैं।"

इंजेक्शन लगा कर नर्स चली गई। शकुन प्रभात के पास बैठ उसका सर सहलाने लगी। शकुन की उँगलियों का स्पर्श पाते ही प्रभात ने आँखें खोल कर देखा। "तुम अब तक कहाँ थीं शकुन ! शायद मैं बचूँगा नहीं, प्यार के भूखे प्राण इसी लिये नहीं निकले कि तुम पास

न थीं। कैलाश और विकास कहाँ हैं? बापू को भी बुलालो! ज्योति कहाँ है? उसके मुझ पर बहुत अहसान हैं। मैं उसके लिये कुछ भी न कर सका। और शकुन तुम! तुम इस कठोर दुनिया में कैसे रहोगी!"

कहते कहते प्रभात की आँखों से आँसू निकल पड़े। शकुन दीवार से चिपक कर रोने लगी। सुमति, कामिनी और प्रेरणा की भी आँखें भर आईं। आँचल से प्रभात के आँसू पूँछते हुए प्रेरणा ने कहा— "आप ऐसा न सोचिये, बिल्कुल ठीक हो जाओगे।"

"यह क्या! प्रभात! डॉक्टर को जल्दी बुलाओ कामिनी! प्रभात आँखें फाड़ रहे हैं।" प्रेरणा ने घबराते हुए कहा।

कामिनी डॉक्टर को बुलाने के लिये दौड़ी, पर दरवाज़े से बाहर निकलते ही डॉक्टर कैलाश के साथ आते हुए दिखाई दिये। कामिनी ने घबराते हुए कहा— "प्रभात आँखें फाड़ रहे हैं! जल्दी चलिये!"

डॉक्टर नर्स से यह कहते हुए कि 'धूमसिंह को ऑपरेशन रूम में लिटाओ और ऑपरेशन का सब सामान तैयार करो' प्रभात को देखने लपके। नब्ज़ देखते ही वे कुछ घबरा से गये। उन्होंने तुरन्त इंजेक्शन भर कर नस में लगाया।

"ठीक हो जायेंगे न डॉक्टर साहब!" शकुन ने व्याकुलता से पूछा।

"आशा रखनी चाहिये!" कहता हुआ डॉक्टर चला गया।

इंजेक्शन लगने से प्रभात को फिर कुछ चेतना आई। कैलाश को सामने देख वह लड़खड़ाती हुई वाणी में बोला— "विकास कहाँ है?"

कैलाश— "सेवा पथ पर। वह लौह पुरुष लोहे के सींकचों में है। यह वह आग है जिसमें तड़प और वीरता की परीक्षा ली जा रही है। यूँ तो सभी मरते हैं, पर मृत्यु वही है जो शहीद को मिलती है। इस

लोमहर्षण काण्ड ने मेरी आँखें खोल दीं, आज मेरे लिये जीवन और मरण समान हैं। शहीदों के रक्त की हर बूँद से वीर पैदा होते हैं। यह क्या! तुम सब की आँखों में आँसू! जीवन रोने के लिये नहीं, साहस और धैर्य के लिये है।"

कैलाश के शब्दों से प्रभात के मुख पर मुस्कान की रश्मि मेघों में तैरती हुई किरण सी लहरा उठी। उसने धीरता और वीरता से कहा—"मैं अभी नहीं मर सकता। मुझे अभी बहुत लिखना है। बहुत काम करना है। विकास को विजय के शिखर पर चढ़ाये बिना प्रभात थक और हार कर मरण की शरण नहीं लेगा।"

"भावुकता में बहको मत प्रभात! बोलने से हृदय पर ज़ोर पड़ेगा।" अंगूर का रस शकुन के हाथ से ले प्रभात को पिलाते हुए कैलाश ने कहा।

रस पीकर प्रभात ने आँखें कुछ मीच सी लीं। नर्स ने धीरे से कहा— "इन्हें सोने दिया जाये।"

प्रभात की आँख लग गई। कैलाश धूमसिंह को देखने आॅपरेशन रूम की तरफ चल दिये। जब ये दर्वाज़े पर पहुँचे तो डॉक्टर आॅपरेशन करके बाहर निकल रहे थे। ब्रह्मचारी भी उनके साथ ही थे। कैलाश को देख कर डॉक्टर ने प्रसन्नता से कहा— "आॅपरेशन तो सफल हुआ है। आशा है अच्छे हो जायेंगे, आगे ईश्वर की इच्छा।"

"आपकी कृपा से कितनों ही की जान बच गई डॉक्टर साहब!" कैलाश ने डॉक्टर का आभार मानते हुए कहा।

डॉक्टर सुन कर मौन भावनायें भेंट करता हुआ चला गया।

धीरे धीरे प्रभात का स्वास्थ्य हर पल सुधरने लगा। पन्द्रह बीस दिन में वे चलने फिरने लायक हो गये। अस्पताल से विदा लेते समय प्रभात

शकुन, प्रेरणा, कामिनी, सुमति और कैलाश की तरफ भावुकता से देखते हुए बोले— "आप ही ने मुझे अनुप्राणित किया है।"

"और तुमने हम सबको प्राण दिये हैं यह क्यों भूलते हो?" कैलाश ने हाथ की हाथ भुगतान करते हुए कहा।

प्रेरणा— "व्यवहार की दुनिया में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ ही करता है। किन्तु उऋण होने के लिये अभी बहुत सी मंज़िलों पर चलना है। अभी तो जीवन की पहली मंज़िल भी पूरी नहीं समझनी चाहिये।"

कैलाश— "धूमसिंह भी कल बिल्कुल ठीक होकर अस्पताल से चले गये हैं।"

प्रभात— "धूमसिंह ज़िन्दा रह गये यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो बिचारा पापी ही मर जाता। जीवन सुधारने के लिये ईश्वर ने उसे ज़िन्दगी नहीं, समय दिया है।"

प्रेरणा— "मनुष्य समय के साथ खेल करता है, और समय मनुष्य को खाता रहता है। समय रहते जो नहीं चेतता, समय उसके लिये असमय बन जाता है। जीवन के प्रत्येक पल का जितना मूल्य है उतना और किसी का नहीं।"

प्रभात— "यह उपदेश तो उनको लाभ देगा जो समय का दुरुपयोग करते हैं, उस जलती हुई दीपक की लौ के लिये व्यर्थ है जो बुझती ही नहीं, और देती रहती है प्रकाश। ज्योति ऐसी ही एक लौ है और करुणा ऐसी ही एक दीपशिखा थी। ज्योति आज जेल में है, और करुणा आज कहानी में। कहानी के पन्ने पलटते हुए ज्योति को मुक्त करने चलो। काट फेंको वे बन्धन जिनसे मानवता की ज्योति जकड़ी पड़ी है।"

कैलाश— "तो हमें पहले कहाँ चलना चाहिये?"

प्रभात— "हरिजन मन्दिर पर।"

कैलाश— "वहाँ तो शायद पुलिस होगी। शक्ति को समझे बिना आवेश में वहाँ चलना ठीक न होगा।"

प्रभात— "तो फिर कहाँ चलें?"

कैलाश— "मेरे बँगले पर।"

प्रेरणा— "आवेश में अपनी शक्ति समाप्त करने की अपेक्षा समझ कर शक्ति बढ़ाना अच्छा है। हमें कैलाश बाबू के बँगले पर ही चलना चाहिये।"

यही निश्चय हुआ कि बँगले पर ही चला जाये। अस्पताल से निकल जैसे ही ये कार में बैठे वैसे ही साइकिल पर जाते हुए अखबार वाले की आवाज़ कानों में पड़ी— "आज के ताजे समाचार। थानेदार कौल के माथे पर गोली मारने वाला क्रान्तिकारी रामप्रसाद गिरफ्तार।"

शकुन और प्रेरणा ने एक ही साथ चिल्ला कर कहा— "अखबार इधर लाओ!"

अखबार लेते ही सबकी आँखें उस पर झुक गईं। प्रेरणा ने ज़ोर ज़ोर से पढ़ना शुरू किया— "थानेदार कौल आज रात को साढ़े ग्यारह बजे सैनिक अस्पताल में मर गये। रामप्रसाद कल दो पिस्तौल और पचास कारतूस सहित मन्दिर के पास पकड़ लिये गये। मन्दिर पर पुलिस का कड़ा पहरा। हरिराम बापू की सारी ज़मीन और बर्तन तक ज़ब्त। अभियुक्त सेशन सुपुर्द। गिरफ्तार होते ही रामप्रसाद ने वक्तव्य दिया कि कौल के मस्तक पर गोली मैंने मारी है।"

समाचार पढ़ते ही सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उस कोलाहल-पूर्ण पथ पर दो पल के लिये सन्नाटा छा गया। आँख खोलते हुए प्रेरणा ने परेशानी की दशा में कहा— "हो सकता है हम भी पकड़ लिये जायें।"

कैलाश— "अवश्य हो सकता है।"

प्रभात— "फिर क्या करना चाहिये ?"

कैलाश— "सचाई और शान्ति से काम। चलो अब बँगले चलते हैं। वहाँ सोचकर अगला कदम उठायेंगे।"

प्रेरणा— "इस समय हमें मन्दिर में नहीं चलना चाहिये, शीघ्राति-शीघ्र कैलाश बाबू के बँगले पर चलना ही उचित होगा।"

कैलाश— "मैं भी यही कहने वाला था।"

प्रेरणा— "तो फिर देर क्यों, तुरन्त चलिये।"

बात की बात में कैलाश सब साथियों सहित सुरक्षित अपने बँगले पर तो आगये, पर परेशानी अभी सभी को घेरे हुए थी। "अब क्या करना चाहिये ?" गद्देदार कुर्सी पर बैठते हुए कैलाश ने कहा।

प्रभात— "धैर्य और साहस से मंज़िल पर बढ़ते रहना कर्त्तव्य की सिद्धि है। हमें आगे बढ़ना चाहिये।"

प्रेरणा— "पर बहुत सोच समझ कर, बिना देखे आगे बढ़ने वाले गिर पड़ते हैं।"

कैलाश— "तो फिर बताइये न हम क्या करें ?"

प्रेरणा— "बिखरी हुई शक्ति फिर से संगठित करो, सरकार और विरोधियों से बातचीत कर उन्हें अपना सहयोगी बनाने का प्रयत्न करो। और भैया ! चाहे परिस्थिति कैसी भी आ पड़े, पर सन्धि का मार्ग कभी बन्द न करना। जो बल बड़े बड़े शस्त्रों में नहीं, वह बल बापू की बात में है। बापू हम से बार बार कहते रहे हैं कि शान्ति और समन्वय से ही जीत होती है।"

प्रभात— "समय की विडम्बना में सब कुछ बदल जाता है बहिन ! आज आवश्यकता है जागरण की। यह तो क्रान्ति वेला है, इसमें शान्ति

का आलस्य अच्छा नहीं लगता। बजने दो वह शंख जिससे भूधर भी हिल उठें।"

प्रेरणा— "तुम्हारी भावुकता घनीभूत हो उठी है प्रभात! तुम्हारी ललकार में बल है, क्योंकि तुम कवि हो न। लेकिन समय पर संयम की आवश्यकता को न भूलो। हमारे आन्दोलन में यदि हिंसा आ गई तो रक्तपात की प्रलय में हमारी जीत डूब जायगी, और हार कर हार का वह हार पहिनना पड़ेगा जिसके हर काग़ज़ी फूल में मानव जाति की हार गुथी होगी।"

प्रभात— "पर नीति यह भी नहीं कहती कि समय के साथ अपने को बदल न दो। हमें सोच विचार कर चलना होगा।"

कैलाश— "तो फिर बताइये न कि क्या किया जाये? बापू, विकास और ज्योति आदि जेल में हैं। रामप्रसाद के निर्णय की तिथि २४ मार्च है। यह तो निश्चित ही दिखाई दे रहा है कि उसे फाँसी होगी।"

प्रभात— "तो फिर रामप्रसाद के बलिदान से मनुष्य का उद्धार भी निश्चित होगा। लेकिन हमें एक काम करना है कि तब तक बच्चे बच्चे में तड़प भर दें। रामप्रसाद का शव इस शान से निकले कि सारा देश उमड़ आये। फिर देखना उसकी चिता की हर चिनगारी से चेतना बरसेगी।"

कैलाश— "यह स्थिति कैसे बने! जानते हो रामप्रसाद पर हत्या का अभियोग है। उसका शव शायद सरकार तुम्हें देगी ही नहीं।"

प्रभात— "जब हर कण्ठ से यह गीत गूंजेगा कि हमारे शहीद की लाश हमें दो, तो जनता की माँग ठुकराने का बल किसी सरकार में नहीं हो सकता।"

प्रेरणा— "और इसका परिणाम होगा कितनों ही का बलिदान।"

प्रभात— "बलिदान के बिना भी क्या कभी विजय होती है? सब से पहिला बलिदान हमें आज और इसी समय चाहिये। बोलो कौन है जो जेल की रोटियाँ स्वाद से खाना चाहता है।"

सहसा शकुन ने आवेश से कहा— "मैं" किन्तु उसकी ध्वनि के पीछे ही पीछे कामिनी ने ज्वारभाटे की तरह उमड़ते हुए कहा— "मैं। शकुन के जाने से प्रभात भाई की कमर झुक जायेगी।"

प्रभात— "यह क्या कहती हो कामिनी! कमर झुक नहीं जायेगी, माथा और ऊँचा उठ जायेगा।"

कामिनी— "नहीं, यह नहीं हो सकता, मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि आज शंख मैं ही बजाऊँगी।"

प्रभात— "तो लो यह झंडा और ये गीत। तुम तब तक गाती हुई बढ़ती रहो जब तक इस छिटकती हुई चाँदनी की मस्त रात में सोता हुआ जन जन जाग कर तुम्हारे पीछे न चलने लगे। जिस कण्ठ से मदिरा भरे मृदुल गीत गूँजते रहे हैं आज उस कण्ठ से दर्द भरे गीत सुनकर मनुष्य की आँखें खुल जायें।"

रात्रि की उस मूक मस्ती में कामिनी ने झण्डा उठाया। एक बार उसने कैलाश की ओर, और कैलाश ने उसकी ओर अनन्त प्रेम से देखा तथा फिर पाषाण बन गये दोनों ही।

कामिनी कोठी से बाहर निकली कि पथ ने उसके पैर चूमे। सबसे पहिले वह कोठियों के बराबर वाली उस बस्ती में पहुँची जहाँ टूटे फूटे कच्चे घरों में इन्सान धूलि में पड़े थे, और बराबर में सड़क-किनारे दिन भर के थके हुए मज़दूर पेट में घुटने दिये एक चीथड़ा चादर ओढ़े सोने का बहाना कर रहे थे।

"यही वह हरिजन और भंगी बस्ती है जिसमें ईश्वर का न्याय दया की भीख माँगता है।" कामिनी ने मन ही मन में कहा और फिर गूँज उठी एक दर्द भरी स्वर लहरी। जड़ और चेतन प्रकृति में ज्वार आने लगा।

गीत की ध्वनि से दरिद्रता के अभिशापों में सोया जीवन का सत्य जाग उठा। देखते ही देखते भीड़ की भीड़ कामिनी के पास इकट्ठी हो गई। कोई नंगा, कोई फटी सी धोती लपेटे, कोई किसी जिजमान की दी हुई चीथड़ा पतलून जचाये, कोई किसी अंग्रेज़ के बख्शे हुए बूट डाटे। सब कामिनी की पीड़ा भरी वाणी पर इस तरह जड़वत हो गये जैसे हवा बिल्कुल न चलने पर तालाब का पानी ठहर जाता है।

बूढ़े, बच्चे, औरतें और मर्दों की भीड़ जब कामिनी के स्वर पर मन्त्रमुग्ध हो गई तो गीतात्मक वाणी भावना से कर्त्तव्यों की दुनिया में आ गई। पल्ला फैला कर क्रान्ति-घोष की साक्षात् प्रतिमा कामिनी ने भीड़ को सम्बोधन करते हुए कहा—

"बुज़ुर्गो! भाइयो और बहिनो! तुम्हारा जीवन पशुओं से भी हीन दशा में है। ये ऊँचे महलों वाले तुमसे घृणा करते हैं, क्योंकि तुम इन की सेवा करते हो, इनकी गन्दगी भंग करते हो। ये तुमसे छूना नहीं चाहते, तुम्हें मनुष्यों की तरह जीने देना नहीं चाहते। ये चाहते हैं कि तुम अशिक्षित बने रहो और वे स्वयं शिक्षित बनकर तुम पर राज करते रहें। तुम्हें अपने झूठे टुकड़ों पर ज़िन्दा रखने वाले बड़े आदमी तुम पर बड़ा अत्याचार करते हैं! अपने उत्थान के लिये तुम उठो! मनुष्यता की सुरक्षा के लिये तुम जागो! मैं तुमसे तुम्हारे लिये भीख माँगती हूँ। चलो मेरे साथ!"

कामिनी की वाणी चिनगारी सी भीड़ में फैलती चली गई। "चलो! चलो! चलो!" की प्रतिध्वनि उत्तर बनकर सारी भीड़ में गूँज

गई। मशालें ले ले कर लोग कामिनी के पीछे चल पड़े। नीरव निशा में शंखघोष और क्रान्ति के नारे सुन सुन कर महलों में सोये इन्सान आँखें खोल खिड़कियाँ खोल खोल कर देखने लगे। जैसे जैसे सत्याग्रहियों के पैर बढ़ते थे वैसे ही वैसे उनकी संख्या भी बढ़ती जाती थी।

उस मौन रात्रि में केवल क्रान्ति के नारे ही सुनाई पड़ते थे। "अशिक्षा की काली रात दूर हो! हम सेवक हैं, अछूत नहीं! हमें मनुष्यों की तरह जीने दो! भगवान में भेद मत करो। हमारा लक्ष्य? मनुष्यता की ओर! हरिजन विद्यालय! बना कर रहेंगे।"

शान्ति से गाते और जगाते हुए ये पीड़ा के पुतले हरिजन मन्दिर की ओर चल पड़े। रात के दो बजे होंगे जब ये थाने के सामने से निकल कर आगे बढ़े। थानेदार ने सैकड़ों की संख्या में सत्याग्रहियों को देख एस० पी० को सूचना दी। एस० पी० ने परिस्थितियाँ पहिचानते हुए ज़िलाधीश से फोन मिलाया। रात में ढाई बजे टेलीफोन की घण्टी सुन कर ज़िलाधीश चौंक कर उठे और फोन उठाया:—

"हलो! कौन? एस० पी०! हाँ मैं बोल रहा हूँ, ज़िलाधीश हुकुमसिंह। क्या बात है?"

"हरिजन विद्यालय की ओर सत्याग्रहियों का समूह जा रहा है।"

"कितनी संख्या में हैं वे?"

"लगभग चार सौ, पाँच सौ हैं।"

"अच्छा देखो, इन्हें तितर बितर करने की कोशिश करो, लेकिन गोली न चलानी पड़े। और तुरन्त ही दल के नेताओं को पकड़ लो!"

"वह एक तेईस चौबीस साल की लड़की है। उसे पकड़ते ही भयंकर आग धधक उठने की सम्भावना है।"

"आग तो धधक चुकी। अब यह आसानी से बुझने वाली नहीं है। लेकिन जैसे भी हो जब तक ऊपर से कोई निर्णय न हो तब तक शान्ति बनाये रक्खो। यह ध्यान रहे कि खूनखराबा न होने पाये। शान्ति से आवश्यक संचालकों को बन्दी बना लो। स्त्रियों को जहाँ तक हो पकड़ कर छोड़ दिया जाये, किन्तु जिसके हाथ में नेतृत्व है उस लड़की को ससम्मान बन्दी बना लिया जाये। घटनास्थल पर आप स्वयम् पहुँचें! सारी पुलिस सतर्क रहे, मैं भी अभी आता हूँ।"

तुरन्त ही पुलिस कामिनी के सामने जा पहुँची। एस० पी० ने कामिनी की ओर आदर और अधिकार से देखते हुए कहा— "हम आपको बन्दी बनाते हैं।"

कामिनी ने अपने दोनों हाथ आगे कर दिये। भीड़ उत्तेजित हो उठी। एक साथ सबके मुँह से निकला— "हम प्राण दे देंगे, पर देवी को छूने तक न देंगे।"

कामिनी ने भीड़ की ओर प्रेम से देखते हुए कहा— "प्राण मेरे लिए नहीं, उन उद्देश्यों के लिए सुरक्षित रक्खो जिनकी प्राप्ति के लिए हम और आप इस मंज़िल पर आये हैं। हमारा संघर्ष शान्तिमय और संगठन से भरपूर शुद्ध होना चाहिये। ये मुझे बन्दी बनाते हैं, आप मुझे शान्ति से बन्दी होने दें। लेकिन लक्ष्य तक पहुँचे बिना पैर न रुकें, यही बहिन भाइयों से भीख माँगती है। अपने अधिकारों के लिए लड़ना जीवन है।"

कामिनी बन्दी कर ली गई; और साथ ही गूँज उठी कामिनी की जय। जयघोष से रात्रि का मौन टूट गया। कण कण में क्रान्ति की चिनगारी दहकती चली गई। शयन जागरण में बदल गया। हर नया क्षण नयी जागृति लेकर आने लगा। हर अखबार में हरिजन आन्दोलन

की गूंज छुप छुप कर निकलने लगी। आस पास के ग्रामों से लोग हरिजन विद्यालय सत्याग्रह के लिये निकल पड़े।

* * *

"कामिनी पकड़ी गई !"

"कौन कामिनी ?"

"वही शहर की मशहूर वेश्या विद्योत्तमा की लड़की, जो कैलाश के घर में थी, आज जनता की नेता बनी हुई है।" स्वयम् कुछ न करने वाले और दूसरों के करे में खोट निकालने में चतुर नागरिकों ने नफरत की आकृति बनाते हुए एक दूसरे से कहा।

उत्तर में गुणग्राहक किसी भले नागरिक ने कहा— "चाहे कोई कितना भी भला काम करो पर दुनिया तो बुराई ही देखती है।"

पहिले नागरिक— "नौ सौ चूहे खाय बिलैया हज को चली ; कल तक आँखें मटकाती थी, आज नेता बन गई।"

गुणग्राहक नागरिक दुनिया और जीवन की आलोचना करता हुआ मौन हो मन ही मन में कहने लगा— "कितनी भयंकर है यह दुनिया, जहाँ मनुष्य दूसरे के जीवन की लाश पर सत्य देखने की प्रतीक्षा पापों के पर्दे में करता है। इस संसार में भलाई बुराई की चिन्ता व्यर्थ है। जो करना हो वह खम ठोक कर करे।"

भलाई बुराई की मंज़िलों पर पैर रखती हुई कामिनी कारा की दीवारों में पहुँच भविष्य और अतीत की संधि करने लगी। जेल की दीवारों में उसकी जवानी अर्क बनकर आँखों से निकलती और सौरभ बन कर हवा में उड़ जाती।

"आज कौन सी तारीख है वार्डरनी !" कामनी ने अड़गड़े के सींकचों में हल्के से सर मारते हुए कहा।

"चौबीस मार्च कामिनी देवी !" वार्डरनी ने अपनी डिबिया से पान का टुकड़ा निकाल कर खाते हुए कहा।

कामिनी— "आज जेल मरघट सी क्यों दिखाई दे रही है ? जेलर वगैरा भी घूमते दिखाई नहीं दे रहे। आखिर बात क्या है ?"

वार्डरनी— "आज बारह नम्बर बारिक के क़ैदी रामप्रसाद को फाँसी दी जायेगी। जेल के बाहर जनता भारी भीड़ में जमा है। डर है कि कहीं जनता जोश में आकर जेलखाना न तोड़ डाले। इसलिये चारों तरफ फौज लगी हुई है। अब तक तो गोली चलाने की नौबत आ ली होती, पर प्रेरणा, प्रभात और कैलाश बाबू ने परिस्थिति सँभाली हुई है।"

कामिनी— "फाँसी किस समय दी जायेगी ?"

वार्डरनी— "आठ बजे।"

कामिनी— "अब क्या बजा है ?"

वार्डरनी— लगभग छः बजे होंगे।"

कामिनी मौन हो भावनाओं में डूब गई। वह अपने आप अपनी बातों की गहराई में तैरने लगी। "कितना वीर है रामप्रसाद ! ऐसे शहीदों पर ही तो पृथ्वी को अभिमान है। भाई रामप्रसाद ! तुम्हारे शव के अन्तिम दर्शन भी न कर सकूँगी। किन्तु यह मेरी दुर्बलता है। न जाने कितनों की आकांक्षायें इस मर्त्यलोक में तड़पती रहती हैं। मुझे मोह में नहीं फँसना चाहिये। पर मोह के बिना भी क्या संसार टिक सकता है। मेरी माँ का क्या हाल होगा ? नहीं, नहीं ! संसार में कोई किसी का नहीं, सब स्वार्थ है। अब तो सारी भारतभूमि मेरी माँ है।"

पता नहीं समुद्र की अनन्त लहरों और ज्वारभाटों के सदृश कितने विचार कामिनी को भूत बन्धन में बाँधे रहते कि सहसा शहीद रामप्रसाद की जय के तुमुल घोष ने उसे जगा दिया। जेल के बाहर और भीतर

'शहीद रामप्रसाद की जय! शहीद रामप्रसाद की जय!' हवा की गति के साथ गूँजने लगी। कामिनी की आँखें भर उठीं। उसने शहीद के शव पर आँसुओं का अर्घ्य और भावनाओं के सुमन श्रद्धा की अंजलियों द्वारा चढ़ाये।

वातावरण निस्तब्ध हो गया। दिशाओं में करुणा छा गई। कामिनी ने नश्वरता की श्वास लेते हुए धरा, आकाश और सींकचों को देखा, एवं फिर शोक की गहराई में साहस का सम्बल पकड़ शून्य से कहा—"बलिदान ही जीवन है।"

७

शहीद की चिता बुझकर ठण्डी हो गई। पर हृदयों की आग न बुझी। वह धधक कर और प्रचण्ड हो उठी। दमन जितना बढ़ा उतने ही दीवाने बढ़ गये। रक्त के छींटों से शहीदों का जन्म होने लगा। पुलिस जितनी गोलियाँ चलाती उतने ही अधिक नौजवान गोलियाँ खाने के लिये और तैयार हो जाते। उत्साह का उमड़ता हुआ क्रुद्ध समुद्र किनारों से न रुक पाता।

सरकार समझ गई कि इन कोयलों को कुरेदने से ज्वाला और प्रचण्ड होगी। आखिर उसने शल्य-क्रिया छोड़ समझौते का मार्ग अपनाया। प्रथम तो उसने एक जाँच समिति बैठाई। उसने जो सूचना दी उससे तो सन्नाटा छा गया। आयोग का सब से पहिला वाक्य था—"सेवाग्राम का वह मन्दिर हरिजनों का है!"

आयोग की सूचना से न्यायालय की आँखें खुल गईं। न्याय का पक्ष सत्य के सामने शर्माने लगा। सरकार ने घोषणा की :—

"पुराने काग़ज़ देखने से पता चला कि पाँच सौ वर्ष पहिले इस मन्दिर का एक ट्रस्ट था, जिसके सभी ट्रस्टी चमार थे। सरकार ने रजिस्ट्री की पुरानी फाइलों में यह भी पढ़ा कि यह हरिजन मन्दिर हज़ारों साल पहिले लक्ष्मण नामक किसी चमार ने बनवाया था। बाद में ट्रस्टियों द्वारा ही इस मन्दिर की देख रेख होती रही। पाँच सौ साल के बाद का इतिहास इस मन्दिर का कुछ नहीं मिलता। कहते हैं कि एक बार गंगा में भयंकर बाढ़ आई थी और गाँव का गाँव उसमें डूब गया था, तथा यह मन्दिर भी बाढ़ में समा गया था। बाद में जब पानी कम हुआ तो यह मन्दिर फिर प्रकट हो गया। तब से यह अनाथ की दशा में पड़ा है।

"अतः सरकार यह मन्दिर हरिजन विद्यालय समिति के सुपुर्द करती है। सरकार को प्रसन्नता है कि इस मन्दिर का उपयोग मानव जाति के कल्याण के लिये होगा। इस मन्दिर में शिक्षा के दीपक जलेंगे। उन दीपों से दुनिया को प्रकाश मिलेगा। सरकार विश्वास दिलाती है कि हरिजन विद्यालय की योजनाओं के लिये वह अपना पूरा सहयोग देगी।

"सरकार उन शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करती है जो इन महान उद्देश्यों के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर गये। बापू, विकास, ज्योति, कामिनी, प्रेरणा, प्रभात, बाल्मीकि, पूनोदेवी आदि को उनकी कुर्बानी और विचारों का आदर करते हुए धन्यवाद देती है। और उन्हें ससम्मान बन्दीगृह से मुक्त करती है।"

बन्दीगृह के दर्वाज़े खुल गये। जनता के जयघोष और फूलों की वर्षा में कर्णधारों का स्वागत हुआ। अपने प्यारे सेवकों को जनता ने घेर लिया। वह उनकी जय बोलती हुई जलूस बनाकर चल पड़ी। जलूस हरिजन मन्दिर पर आकर रुका।

हरिजन विद्यालय समिति के सदस्य बन्धनमुक्त होकर आज महीनों बाद फिर उस पुराने पवित्र चबूतरे पर चढ़े जहाँ ज्योति ने एक रात इन उद्देश्यों की नींव रक्खी थी। बापू चबूतरे पर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उपस्थित जनता को संबोधन करते हुए विकास ने कहा—

"भाइयो! आपके सहयोग और बलिदानों के परिणाम स्वरूप हमने आज एक बड़ी मंज़िल तय की है। हम उन शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जिनके बलिदानों से हम आज यहाँ तक पहुँचे। भाई रामप्रसाद का नाम सदा सोने के अक्षरों में लिखा रहेगा। वह वीर इस मन्दिर का अमर पुजारी है। न जाने कितने जीवन अपना जीवन-अर्घ्य इस वेदी पर चढ़ा स्वर्ग में बैठे अपनी भावनायें मूर्त देखने की प्रतीक्षा में हैं। अभी हमारा काम पूरा नहीं हुआ है। अभी हमें बहुत दूर चलना है। हो सकता है हमें चलते चलते कितने ही जन्म लेने पड़ें, पर राह में थक कर बैठना जीवन का धर्म नहीं। यह मन्दिर जिसमें आज हम सब एक हृदय होकर खड़े हैं हम से सत्य चाहता है। सत्य ही शिक्षा है। शिक्षा का अर्थ है सुख। हम इस मन्दिर को शिक्षा का एक ऐसा केन्द्र बनायेंगे जिससे सबको सुख मिलेगा। हम यहाँ से शिक्षा की ऐसी ज्योति संसार में फैलाना चाहते हैं जिससे सारा संसार सच्चे मानव-समाज में बदल जाये। क्या आप सब तन मन धन से इसके लिये तैयार हैं?"

"तैयार हैं" दिग्दिगन्तों में उत्तर में गूँज गया। और दूसरे ही दिन से सैकड़ों राज मज़दूर उत्साह से हरिजन विद्यालय बनाते दिखाई देने लगे।

विद्यालय निर्माणार्थ जनता ने धन के ढेर लगा दिये। विद्यालय समिति के प्रति जनता का अपार विश्वास उमड़ आया। ज्योति, विकास, बाल्मीकि, प्रभात आदि राज मज़दूरों की तरह काम में जुट गये।

एक दिन आधे बने विद्यालय को प्रसन्नता से देखते हुए ज्योति ने कहा— "कल इस चबूतरे को तुड़वा कर विद्यालय के बड़े हॉल की नींव भी रखवा देनी चाहिये।"

और फिर दूसरे दिन वह चबूतरा खुदने लगा जिस पर बैठकर इस विशाल विद्यालय की नींव रक्खी गई थी। खोदते खोदते जब लगभग दो तीन हाथ गहरी ज़मीन खोद डाली तो मज़दूर ने चिल्लाकर कहा— "बाबू जी! ज़रा इधर आइये! देखिये, यहाँ एक बड़ा पत्थर गड़ा हुआ है जिस पर कुछ लिखा है।"

विकास, कैलाश आदि दौड़ कर वहाँ गये। ज़मीन को ज़रा और खुदवा कर पत्थर उन्होंने साफ कराया और ध्यान से पढ़ने लगे।

बहुत देर में अक्षर कुछ कुछ पहिचान में आने शुरू हुए। सहसा प्रभात ने सब अक्षरों को मिलाकर पढ़ते हुए कहा—

"लक्ष्मण ने अपनी पत्नी मधुप की स्मृति में यह हरिजन मन्दिर बनवाया, संवत् ५००० वैदिक।

विकास ने आश्चर्य से सुनते हुए कहा— "समझ में नहीं आता यह सब क्या है! संसार का पूरा इतिहास शायद कोई जानता ही नहीं। क्या नया है और क्या पुराना यह कोई नहीं कह सकता। कौन मरता है और कौन पैदा होता है यह भी किसी को पता नहीं। शायद भावनाएँ किसी की कभी नहीं मरतीं।"

कैलाश ने अपनी उँगली से अपना आँसू पूँछते हुए कहा— "अब यहाँ हॉल बनना उचित नहीं। यहाँ तो लक्ष्मण और मधुप की सोने की मूर्तियाँ खड़ी करनी चाहियें।"

हॉल के स्थान पर दो बिछड़े साथियों की स्वर्ण-मूर्तियाँ जगमगाने लगीं। कैलाश रोज़ उन मूर्तियों को देखता और आँखें भर लाता, एवं

प्रभात शकुन के साथ आ प्रति दिन उन मूर्तियों के आगे दीपक बालता।

*　　　*　　　*

'स्नेह का दीपक कभी नहीं बुझता। प्रेम की ज्योति अमर रहती है। पर मेरी करुणा कहाँ है? क्या वह भी कहीं है और मुझे दिखाई नहीं देती। किन्तु यह कैसी विडम्बना है! तो क्या किसी दिन शकुन भी मुझसे बिछड़ जायेगी! क्या सच! नहीं मैं उसे कभी नहीं मरने दूँगा। क्या कहा? यह तेरी भयंकर भूल है!

'समाज में बड़े दीखने वाले मनुष्यों की व्यक्तिगत ज़िन्दगी शायद नहीं दीखती। समाज केवल तपस्या देखने का दर्शक है। वह दूसरे की दुर्बलताओं को गिनना पसन्द करता है। समाज से डर कर व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं का शिकार स्वयम् बनता है। समाज को धोखा देने वाला व्यक्ति एक न एक दिन अपनी हत्या कर ही बैठता है। तो फिर मुझे क्या करना चाहिये? क्या मैं कह दूँ कि मेरा और शकुन का प्रणय है। पर मैं अपनी आँखों में एक बड़ा व्यक्ति हूँ! मेरा सारा सम्मान धूल में मिल जायेगा। निकट भविष्य में मैं संसार का एक बड़ा यशस्वी बनने वाला हूँ। फिर वह सब नहीं हो सकेगा। और फिर मैं संसार से पहिले कुछ कह चुका हूँ और अब कुछ कहूँ! समझ में नहीं आता क्या करूँ! एक तरफ स्नेह और दूसरी तरफ लोक लाज। एक तरफ सत्य और दूसरी तरफ असत्य। सत्य! नहीं नहीं सत्य से संसार मुझे जीने नहीं देगा। मैं एक बार फिर असत्य का सहारा लूँगा।' प्रभात ने दीपक बाल जीवन की उलझन में उलझते हुए मन ही मन में कहा।

'उपाय से शकुन अमर हो सकती है। सत्य से नहीं, असत्य से अमर होगी। असत्य की आड़ में पाप छिप जायेगा। पाप से बचने के लिये पाप की शरण ही आज मुझे आश्रय देगी। मैं और शकुन अमर

होंगे, और फिर आगे से मैं कभी पाप नहीं करूँगा। शकुन ! लो यह औषधि, खालो इसे ! बड़े गुणी ने दी है यह, अमर हो जाओगी इसे खाकर। पर ठहरो ! मेरा मन डरता है कहीं इससे कोई अनिष्ट न हो जाये। मैं एक बार उस गुणी से और पूछ लूँ, यह औषधि कहीं विष का काम तो नहीं करेगी।"

प्रभात सबकी आँखें बचाकर एक बार फिर दौड़कर उसी गुणी के पास गया। भय और भविष्य के सुख की आशा में डर और उत्कण्ठा से प्रभात ने गुणी से पूछा— "मृत्यु का भय तो नहीं इससे ?"

"बिल्कुल नहीं, यह औषधि अमृत है। मेरी योग्यता पर विश्वास करो, मैं जीवन देने वाला हूँ। और मेरे रुपये लाये ?"

"ये लीजिये ! मैं ले आया। यही मेरी सारी पूँजी है।"

"कुल यही ! खैर मैं तुमसे यही लिये लेता हूँ।"

"तो मैं औषधि खिला दूँ न।"

"हाँ खिला दो !"

'कुछ डर तो नहीं ?"

"नहीं, नहीं, नहीं !"

शकुन के साथ जीवन के विकास की ओर द्रुतगति से बढ़ते बढ़ते प्रभात जीवन की भूल के मुँह में आ गया। उससे छूटने के लिये उसने भूल ही को भगवान माना। वह भूल से भागने के लिये बार बार सत्य की ओर जाना तो चाहता, पर समाज का प्रकाश उसे बढ़ने न देता। वह समाज से काँप उठा। "लो यह गुणी की औषधि, घूँट भर कर पी जाओ इसे !"

शकुन एक ही घूँट में वह औषधि पी गई। पर पीते ही उसकी आँखों के आगे अँधेरा आने लगा। प्रभात घबरा उठा।

"गुणी! यह क्या हुआ? यह तो उल्टा होता दिखाई देता है!'

"बड़ी जल्दी घबरा जाते हो, कोई बात नहीं है।"

"तुम मुझे बहकाते हो। शकुन बहुत खतरे में है।"

कहता कहता प्रभात रो पड़ा। शकुन ने आँखें भर कर उसकी ओर देखते हुए कहा— "रोते क्यों हो? कोई सब साथ ही थोड़ी जाते हैं।"

"मैं तुम्हें नहीं मरने दूँगा शकुन! मैं अभी बड़े से बड़े गुणी को बुलाकर लाता हूँ।"

कहता हुआ प्रभात ज्योति के पास दौड़ा गया और एकदम रो पड़ा।

"क्या हुआ प्रभात! इतने अधीर क्यों हो?" ज्योति ने विकास को आवाज़ देते हुए कहा।

"क्या है ज्योति! प्रभात रो क्यों रहे हैं?" विकास ने उत्कण्ठा से पूछा।

"शायद शकुन बचेगी नहीं! उसकी तबियत बहुत ख़राब है। किसी तरह उसे बचा लो!" प्रभात ने तड़पते हुए कहा।

घबरा कर सब उस कमरे में गये जिसमें शकुन मृत्युशैया पर पड़ी थी। सबको देखते ही उसने इस प्रकार हाथ जोड़कर नमस्ते की जैसे कोई सदा के लिये विदा लेते समय अन्तिम नमस्ते करता है।

शकुन को देखते ही सब गहरी चिन्ता में डूब गये। प्रेरणा और ज्योति ने एक साथ ही कहा— "जल्दी से जल्दी किसी बड़े से बड़े गुणी डॉक्टर को बुलाओ!"

सुनते ही कैलाश कार लेकर चल दिये, और पलक मारते ही सिविल सर्जन को साथ लेकर आ पहुँचे।

रोगी को देखकर सिविल सर्जन ने कहा— "हालत खतरनाक है। मरीज़ को तुरन्त अस्पताल ले चलो! वहाँ उपाय पूरे करेंगे। परिणाम परमात्मा के हाथ में है।"

तुरन्त शकुन को अस्पताल ले गये। शकुन एक लोहे के यान्त्रिक पलँग पर लिटा दी गई। अस्पताल के सभी डॉक्टरों ने शकुन का निरीक्षण किया। भलीभाँति देखभाल कर डॉक्टर ने कहा— "नर्स! मरीज़ के हर दो घन्टे बाद एनीमा लगाओ। पैनिसिलिन बराबर लगता रहे। मरीज़ बहुत कमज़ोर है। ग्लूकोज़ के इंजेक्शन अभी लगाओ! दिल के इंजेक्शन बारह बजे और चार बजे लगाना।"

शकुन की ऐसी दशा देख प्रभात बहुत बुरी तरह घबरा गया। वह रोगी को देखता और नर्स से पूछता 'ठीक हो तो जायेंगी?' उत्तर ऐसे मिलता जैसे कोई सोते में हुंकारा भर देता है। प्रभात पाँच पाँच मिनिट में डॉक्टर के पास जाता और डॉक्टर उसे डाट देता। प्रभात मन ही मन में रोता और रोगी को देख फिर डॉक्टर की तरफ भागता।

रोगी की दशा हर पल बिगड़ने लगी। चार दिन और चार रात रोगी को पल भर के लिये भी नींद नहीं आई। प्रभात रात रात भर जाग कर हर ऐसे पल की प्रतीक्षा करता जिसमें उसकी शकुन मृत्यु के पंजे से छूटी हुई दिखाई दे, पर कृष्णपक्ष में शुक्लपक्ष न दिखाई दिया। प्रभात पागल की तरह परेशान छटपटाता हुआ देवताओं के प्रसाद बोलता, भगवान से विनती करता, बड़े से बड़े गुणी को बुला कर लाता, मन ही मन में विनय करता। सोचता कि मेरी शकुन अच्छी हो जाये, अस्पताल के भंगी को सौ रुपये देकर जाऊँगा। ज्योति, कैलाश! तुम घबराना मत, मैं तुम्हारा पैसा पैसा भुगता दूँगा। किसी तरह मेरी शकुन अच्छी हो जाये।

कराहती कराहती शकुन सहसा गम्भीर हो गई। पीड़ा की पराकाष्ठा को हृदय में दबाते हुए उसने कहा— "माँ के पास खबर भेज दी ?"

"दो बार भेज चुका, पर वे नाराज़ी नहीं छोड़तीं।" प्रभात ने दुःख के आँसुओं को पीते हुए कहा।

"अच्छा, इस समय भी नहीं आतीं! खैर!" शकुन ने व्यवहार और प्रेम की कठोरता पर सन्तोष करते हुए कहा, तथा फिर गम्भीर हो गई।

"बोलो शकुन! तुम्हारे बाद मैं क्या करूँ ?"

"मैं अभी मर नहीं रही हूँ, मरूँगी तब बताऊँगी।"

रात के दस बजे होंगे जब बुरी भली सुनाते हुए शकुन की माँ रामप्यारी ने अपने पति के साथ सहसा अस्पताल के कमरे में प्रवेश किया। प्रभात उन्हें देखते ही रो पड़ा और गिड़गिड़ा कर बोला— "किसी तरह शकुन को बचा लो! तुम जो कहोगी वही करूँगा। मैं किसी जन्म में भी तुम्हारा अहसान नहीं भूलूँगा।"

"चल हट यहाँ से!" अपने मन के गुब्बार निकालते हुए माँ ने कहा।

"तुम कुछ भी कहलो, पर शकुन को बचालो माँ!" प्रभात ने दया की भीख माँगते हुए श्रद्धा और सम्मान के हृदय से कहा।

"छोड़ो ये किस्से कहानी" शकुन के पिता जी ने घृणा और गम्भीरता से कहा।

न जाने क्या कुछ कर डालते वे दोनों, पर खटिया से लगी हुई शकुन की दशा ने उनके उबाल को मन की मन में रोक दिया। वे शकुन के पास बैठ गये और दवा पिलाने लगे।

दवा पीते पीते दो बजे बाद शकुन कुछ बहकती हुई सी बोली— "यहाँ तो आग की भट्टी जल रही है। मुझे बाहर घुमाने ले चलो! ठण्डी ठण्डी हवा लगने से मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊँगी। बड़ी आग है यहाँ तो, बड़ी आग! मुझे यहाँ से ले चलो! मैं घर चलूँगी।"

बार बार इन शब्दों को दोहराती हुई शकुन प्रभात की गोद में चिपटने लगी। प्रभात शकुन को हृदय से लगाता और मुँह फेर कर रो पड़ता।

रात भर शकुन बोलती रही और प्रभात आँसू पीता रहा। प्रतिध्वनि में भयानकता कहती थी— "सुन ले, फिर ये बोल तुझे कभी सुनाई नहीं देंगे।" और मौन उत्तर में प्रभात कहता था— "ये शब्द मेरे कान सदा सुनते रहेंगे और गूँजते रहेंगे मेरी क़लम की स्याही से।"

किसी तरह रात बीती। पर प्रभात के जीवन की रात नहीं बीती। बिचारा ईश्वर से मिन्नतें करता रहा— "ईश्वर! किसी तरह शकुन को बचा ले!" प्रतिध्वनि भय बन कर मन में टकरा कर रह जाती। प्रभात बिचारा पल पल में करोड़ों बार परमात्मा से याचनायें करता पर परमात्मा के कोष में इस समय दया का दुर्भिक्ष पड़ रहा था।

पागल सा प्रभात शकुन की तरफ देखता और तड़प उठता पर उसकी आशा का बाँध अभी बिल्कुल नहीं टूटा था। वह सोचता था उसकी शकुन अच्छी हो जायगी। ईश्वर इतना कठोर कभी न होगा! इस आशा में उसकी दुर्बलता बल बन जाती और वह अमृत के लिये ख़ाक छानने लगता।

'किन्तु क्या अमृत भी सचमुच मरते को बचा सकता है? यदि बचा सकता था तो देवता क्यों मरे? यदि पुण्यों में अमृत था तो पुण्य करने वाले क्यों मर गये? कुछ नहीं! मनुष्य की शक्ति बिजली की कौंध की तरह अस्थिर है!

'किन्तु कुछ भी हो, मैं शकुन को नहीं मरने दूँगा। पर अब तू इसे नहीं बचा सकता। ले बचा! डॉक्टर! डॉक्टर! देखो तो शकुन की तबियत बहुत बिगड़ रही है। अब कुछ नहीं हो सकता। देखते नहीं नाखून नीले पड़ गये। डॉक्टर! मेरा खून चढ़ा दो! बस अब धीरज। कितना खून चढ़ा चुके, जब वही पानी बन गया तो अब अपने खून के पानी को चढ़ा कर क्या लोगे!

'क्या अब शकुन किसी तरह नहीं बच सकती!

'नहीं! शकुन! राम! राम! रा म! रा म! रा म! रा····म!'

और अन्त में प्रभात के राम के उत्तर में शकुन ने गर्दन हिला कर राम कहते हुए संसार से नाता तोड़ लिया।

पल भर में प्रभात की दुनिया उलट पुलट हो गई। "निर्लज्ज! खा गया इसे! तूने इसे ज़हर दिया है! और इस डायन ने! यह डंकिनी ज्योति! ठहर जा! मैं तेरा खून करूँगी!" कहती हुई माँ रामप्यारी सामने पड़ा लोहे का बड़ा ताला उठा कर लपकी।

"ज्योति को कुछ मत कहो! वह निर्दोष है। सारा दोष मेरा है, किसी का कुछ दोष नहीं। मुझे मारो, मुझे! मैं अब इस दुनिया में रहना भी नहीं चाहता।" ज्योति के आगे और रामप्यारी के सामने आते हुए प्रभात ने कहा।

पर रामप्यारी प्रभात को गालियाँ देती हुई ज्योति की ओर फिर क्रोध और तेज़ी से लपकी।

ज्योति ने चिल्ला कर कहा— "क्या मेरा कोई भी नहीं!"

"घबरा मत! तेरे हम हैं! ठहरो!" रामप्यारी को धक्का देते हुए रामप्यारी के पति पद्मप्रकाश ने कहा।

"हट जाओ यहाँ से, तुम कौन होते हो इसके। मैं तुम्हें शव को छूने भी न दूँगी।" ज्योति और प्रभात को धक्के देते हुए रामप्यारी ने कहा।

"नहीं, ऐसा न करो! वह मुझ से हमेशा कहा करती थी कि मेरा शव अपने कन्धों पर ले जाकर गंगा किनारे चिता जलाना।" प्रभात ने शव से चिपटते हुए कहा।

किन्तु क्रुद्ध रामप्यारी और उसके साथियों ने प्रभात को खींचकर धक्का दिया। उसका सर अस्पताल के खम्भे से जाकर लगा। शव की आँखों से बहता हुआ दो बूँद पानी दुनिया के अन्त पर गिर पड़ा। उस पानी ने जीवन का अन्त दिखाते हुए कहा— "प्यार पर इतनी अति मत करो! प्यार ही जीवन का सत्य और गति है। प्यार से भटकी हुई एक ज़िन्दा लाश को क्यों नोच रहे हो! प्रभात तो मेरे मरते ही मर चुका। अब तो वह एक ज़िन्दा लाश है।"

लेकिन शव की मूक ध्वनि किसी के कानों में न पड़ी। शव ने संसार की निर्ममता से लज्जित होकर अपने मुँह पर पल्ला डाल लिया। और दुनिया उसी तरह कठोरता का नाच करती रही। "नीच कहीं के, तूने इसे क़त्ल किया है। मैं तुझे जेल भिजवाऊँगी।"

सहसा विकास ने वहाँ घबराहट और पीड़ा में प्रवेश करते हुए कहा— "पागलपन अच्छा नहीं, इससे दूसरे हँसेंगे। माँ! तुम माँ हो, तुम्हारे पास माँ का हृदय भी है। फिर यह पीड़ा का उपहास क्यों कर रही हो? शव को क्यों सताती हो?"

और फिर प्रभात का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा— "अब मिट्टी से क्यों चिपटते हो, यह तो मिट्टी है पागल!"

समझाते और खींचते हुए विकास प्रभात को शव से अलग वहाँ ले आये जहाँ चौक में काफी लोग जमा हो चुके थे।

एक भयंकर काण्ड चीत्कार कर रहा था, और उधर डूब रहा था प्रभात पीड़ा के अतल प्रलयंकर सिन्धु में। 'ईश्वर! यह तूने क्या किया? दुनिया से बहुत लड़ा, पर अब तुझसे कहाँ तक लड़ूँ? आज मैं जीत कर भी हार गया। प्यार पर किसी का अन्याय नहीं, केवल काल का अन्याय है। अब मैं क्या करूँ? आज जीवन मरण से पाप बन गया। पाप कुछ नहीं, जीवन की हार का ही दूसरा नाम पाप है। आज मैं पापी हूँ, पापी! क्योंकि प्यार का आधार मृत्यु का भोजन बन गया। अब मैं ज़िन्दा रहकर इस दुनिया में क्या करूँगा।' कहते हुए प्रभात ने अपना सर दीवार में दे मारा। वह दूसरी बार सर दीवार में मारना ही चाहता था कि विकास ने उसकी कौली भर ली।

"अरे पगले! दुनिया का यही नियम है। एक दिन सभी को मरना है। मौत से कोई नहीं बचता। होनी होकर रहती है। कुछ नहीं दुनिया, सब व्यर्थ है। पागल नहीं बना करते! तेरी दुलहन मिट्टी की मूर्ति नहीं, कलम है।"

इस तरह दुनिया वाले प्रभात को तरह तरह से समझा ही रहे थे कि शकुन की अर्थी आ गई। प्रभात ने दौड़कर चीत्कार करते हुए अर्थी अपने कन्धे पर ले ली।

सचमुच आज विधाता की निर्ममता ने विरह का निर्माण किया है। और आज ही परखी जा सकती है मानव की अनीति। प्रभात तड़प रहा है और जा रही है उसकी ज़िन्दगी की अर्थी। प्रभात रो रहा है और बरस रहे हैं उस पर अपनों ही के तीर। यह क्या! आज माँ के हृदय का वात्सल्य प्रतिशोध बनकर अनीति पर उतर आया।

किन्तु आज यह सब कुछ सहेगा। लाचार है बिचारा! नहीं नहीं मोहताज है बिचारा! कहो इसे जो कुछ कहना है! करो इसका जो कुछ करना है! आज इसका आधार छूट गया।

प्रकृति की मूक भाषा में पीड़ा के आँसू बह रहे थे और चला जा रहा था शव गङ्गा की ओर।

धवल धारा के तट पर पहुँच शव ने संसार की शेष बुराई भी सुन ली। "माँ बाप की इज्ज़त धूल में मिलाकर आज तू भी अकेली जा रही है।" पर शव आज मौन होकर सब सह रहा था। और वह शव प्रभात से कह रहा था— "मेरी तरह सहिष्णु बन जाओ! अब तुम्हें सब सहना ही पड़ेगा। बोलना मत, सुनते रहो! अब ये अपनी इज्ज़त बना लें, मेरी इज्ज़त को तो इन्होंने चार चाँद लगा दिये। तुम्हारी विजय हार में है, जीत में नहीं।"

संसार में न जाने क्या क्या सहना पड़ता है। हाय संसार! क्या तू चिता ही है। शकुन की चिता की लपटें आकाश चूमने लगीं और प्रभात देखता रहा। कितना निर्बल है मनुष्य!

प्रभात ने मन ही मन में कहा— 'मैं कहा करता था कि हम दोनों कभी अलग नहीं होंगे, शकुन को मुझ से कोई नहीं छीन सकता। पर आज वह प्रलाप बन कर रह गया।'

शकुन की चिता जल रही थी और जल रहा था प्रभात ज़िन्दा। चिता जल कर राख का ढेर रह गया और वह राख भी गङ्गा में बहा दी गई। अभी अभी साकार था, अब वह स्वप्न बन गया।

स्वप्नभंग होने पर जागरण पीड़ा से भर गया। प्रभात फिर पीड़ा के श्वासों में ज़िन्दगी काटने लगा। वह मनुष्यों के सामने पीड़ा के आँसू बहाता, पर मनुष्य पत्थर बन जाते। बड़ा कठोर है यह संसार! यहाँ किसी को अपना दुःख नहीं दिखाना चाहिये। यह जग दुःख से नहीं पिँघलता, शक्ति से झुकता है।

प्रभात अब ज़िन्दा तो था पर अपने लिये नहीं। वह दुःख सहते सहते दुःखों से मित्रता करने लगा। वह मुर्दा था, पर उसके संकल्प

ज़िन्दा होकर उसके सामने खड़े थे। "शकुन का एक बड़ा स्मारक ताजमहल से भी सुन्दर बनाऊँगा। मैं संसार को बदल कर प्रेम की पूजा करनी सिखा दूँगा। मैं वह अमर रचना रचूँगा जिससे संसार की आँखें खुल जायेंगी। मैं एक ऐसा आदर्श बनूँगा, जिसकी जोड़ का नमूना नहीं मिलेगा। अब मैं कभी कोई पाप नहीं करूँगा, सत्य बोलूँगा, सब की सेवा में जीवन व्यतीत करूँगा। लेकिन किसी तरह मुझे एक बार शकुन मिल जाये और मुझे पता चल जाये कि वह जहाँ है सुखी है। उसकी सभी आकांक्षायें अधूरी रही हैं। मैं उसकी भावनाओं को रूप दूँगा। पर क्या वस्तुतः इससे उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी, या यह भी मन समझाने का एक बहाना है। शायद ज़िन्दा रहने के लिये कल्पना ने आधार बनाये हों। जब तक ज़िन्दगी है ज़िन्दा तो रहना ही पड़ेगा। पर वे पंडित कहते हैं 'मैं मृतक आत्मा से बातें करा दूँगा।' मैं उन के पास अवश्य जाऊँगा। वे यहाँ हज़ार कोस पर हैं! कुछ बात नहीं! कैसे भी मैं वहाँ चला ही जाऊँगा।"

"कहाँ जा रहे हो प्रभात! लो यह तुम्हारी नयी पुस्तक छप गई।" विकास ने आकर एक हाथ प्रभात के कन्धे पर रख दूसरे हाथ से पुस्तक प्रभात को पकड़ाते हुए कहा।

पुस्तक देखते ही प्रभात रो पड़ा। पुस्तक आँसुओं से भिगोते हुए उसने कहा— "भैया! इस पुस्तक को देख कर प्रसन्न होने वाली जब यह पुस्तक न देख सकी तो मैं क्या अभिमान करूँ! सोचता था पुस्तक छप कर आयेगी, धन मिलेगा, मेरी शकुन जीवन के कष्टों से मुक्त होगी, निर्धनता की गोद में जो चुपके चुपके आँसू बहाये हैं वे मोती बन कर हमारा पेट भर देंगे। पर अब तो तीनों लोकों का राज्य भी मेरे लिये व्यर्थ है। मैं क्या सोचता था और क्या हो गया!"

विकास— "शान्ति से काम लो प्रभात! अब धैर्य धरो! और अपनी लेखनी से सुखा दो संसार के आँसू! यह विद्यालय जिसकी नींव शकुन की भावनाओं से दृढ़ है तुम्हारे श्वास खरीद चुका है। प्रलाप छोड़ो और कर्मयोगियों की तरह आगे बढ़ो!"

प्रभात— "न जाने कितनी बार कानों को ये शब्द सुनने पड़ेंगे और कितनी बार मन को समझाना पड़ेगा। ज़िन्दगी भी कैसी विचित्र विडम्बना है!"

विकास— "ज़िन्दगी का जितना विश्लेषण करोगे यह उतनी ही उलझती चली जायेगी! जिस बात से दुःख हुआ है वह पृष्ठ बार बार पलटना जीवन को जंजाल बनाना है। मनुष्य गिरता है और फिर उठ कर चलता है। यही मानव की महानता है। ज्योति की ओर देखो, जिसके जीवन की मुस्कान छल और बहाने में बदल चुकी है, किन्तु फिर भी वह पथ की पीड़ा से हार मान कर खो नहीं गई। मनुष्य वही है जो किसी परिस्थिति में भी खुद को न खो दे। जीवन का इतिहास एक या दो कलम से पूरा नहीं होता, कितनी ही कलम टूट जाती हैं ज़िन्दगी लिखते लिखते! भूलो और भविष्य का स्वर्ण मुख चूमने चलो!"

प्रभात— "न जाने कब तक भविष्य की चाह जीवन को मरण से कँपाती रहेगी। मैं तो आज जीवन से ऊब गया हूँ भैया! यह जो कुछ दीख रहा है सब मरण का भक्ष्य है। मैं एक बार शकुन से बातें करना चाहता हूँ; बस फिर सन्यास ले लूँगा।"

विकास— "कहाँ अब शकुन! शरीर तुम उस का अपने हाथों से जला कर राख कर आये। वह मिश्रित तत्त्वों का एक रूप था जो तुम देख रहे थे, अब वे तत्त्व तत्त्व में लीन हो गये।"

प्रभात— "वे मृतक आत्माओं से बातें करा देते हैं, मैं शकुन से बातें करूँगा।"

विकास— "यह सब भ्रम है, भूत के पीछे बावले मत बनो !"

विकास ने बहुत समझाया पर प्रभात की पीड़ा शान्त नहीं हुई। वह बिखरी हुई ज़िन्दगी लेकर भटकने लगा। कभी वह शून्य के विस्तार में दौड़ा, कभी धर्म और योग के तत्त्वों में डुबकियाँ लगाईं। कभी रूप की रंगीनियों में शान्ति ढूँढी। कभी लेखनी की स्याही में डूब धैर्य के लिये मचला। कभी दया की भीख माँगने भागा, पर किसी ने भी तरस न खाया। अन्त में यदि उस पर किसी को तरस आया तो उसके आँसुओं को ही, जो दया कर आँखों ही में ठहर गये।

आँसुओं को आँखों में छिपा प्रभात फिर ज़िन्दगी के पथ पर बढ़ा। उसने सोचा कि इस बार में अपनी कलम और शक्ति से संसार को मुट्ठी में सिमेट लूँगा। उसकी शक्ति के आगे श्रम हाँपने लगा, किन्तु संसार हँस दिया। लेकिन हँसने से प्रभात चिढ़ता नहीं, संसार की नासमझी पर मन ही मन में मुस्करा देता।

प्रभात मुस्कराता तो था पर उसकी मुस्कान में पीड़ा की कौंध दमकती थी। वह अब भी अपने अधूरे प्यार की प्यास लिये तड़पता था। किन्तु अब वह एक थका हुआ बटोही था। उसके हृदय में चाह तो थी पर चलने की शक्ति नहीं।

मनुष्य कितना भी थक जाये पर दुनिया में उसे चलना ही पड़ता है। प्रभात भी ज़िन्दगी की अगली मंज़िल पर बढ़ा। उसने निश्चय किया कि मैं सन्यासी रह कर संसार में रहूँगा, अपनी चाहों को कुचल डालूँगा।

भावुकता की आशा में प्रभात ने ज्योति के पास जाकर कहा— "विद्यालय आधे से अधिक बन चुका है। किन्तु यह अधूरा चित्र भी शायद आज की दुनिया में सबसे अधिक पूर्ण है। किसी सम्राट् के क़िले

में भी कभी इतना सौन्दर्य न रहा होगा जितना इस विद्यालय की ईंट ईंट में है। तुम्हारा श्रम धन्य है ज्योति!"

ज्योति— "मनुष्य अपने को धन्य मानकर भूल करता है। यह सब ईश्वर की कृपा का फल है। यदि विकास, कामिनी, कैलाश, प्रेरणा और तुम अपना तन मन धन इसमें न लगा देते, और बापू का सत्य हमारे साथ न होता तो यह निर्माण कभी सम्भव न होता। लेकिन हमारी मंज़िल अभी बहुत दूर है, यह अधूरा चित्र हमें पूरा करना है।"

कुछ आवश्यक पत्र लिखकर विकास भी वहाँ आ गये और एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले— "अधूरा ही नहीं, अभी तो रास्ते ढूँढ रहे हैं। हमारे विद्यालय में आज दूर देशों के विद्यार्थी दर्शन, इतिहास, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति आदि पढ़ने आते हैं यही हमारी तृप्ति का लक्ष्य नहीं। हमने मानवीय और दैविक तत्त्वों के अनुसंधान का कार्य शुरू किया है। विज्ञान के बड़े बड़े आविष्कार करने का निश्चय है। हमने अनुसंधान करने का बीड़ा उठाया है। सरकार ने इसके लिये अर्थ की खुली छूट दे दी है। कैलाश बाबू बड़े बड़े वैज्ञानिक विशेषज्ञों को खोजने के लिये पृथ्वी की परिक्रमा करेंगे। करोड़ों रुपए से अनुसंधान का कार्य कल से शुरू हो जायेगा।"

सुमति को साथ लिये प्रेरणा भी वहाँ आ पहुँची और दूसरी ओर से कैलाश और कामिनी भी वहाँ आ गये। विकास की नई योजना की बातें अब विचारपूर्वक होने लगीं। विकास ने विज्ञान के विकास की नयी योजना विस्तार से सामने रक्खी।

सुनकर सुमति और प्रेरणा कुछ क्षण के लिये मौन हो गईं, और फिर सोचकर प्रेरणा ने कहा— "क्या आविष्कार शान्ति और मानवता में सहायक होंगे?"

विकास— "मानवता में सहायक ही नहीं होंगे, ये मनुष्य को ईश्वर

बना देंगे! 'ईश्वर, ईश्वर!' चिल्लाने वाले मनुष्य देख लेंगे कि ईश्वर क्या है। हम बुद्धि की मशीन के बल से ईश्वर को बन्दी बनाकर दिखा देंगे। मनुष्य को वे साधन देंगे कि वह कहीं भी हार नहीं मानेगा, असम्भव कह कर अपना उपहास आप न कर सकेगा।"

प्रेरणा— "जो कुछ हम करने जा रहे हैं, उससे कहीं मनुष्य अन्धा होकर भटकने तो नहीं लगेगा। मनुष्य के पास सत्य सबसे बड़ा साधन है, क्या इससे बड़ा साधन भी कोई मिल सकेगा। हमारा उद्देश्य मनुष्य को रचनात्मक शिक्षा देना है, इन सब पचड़ों में व्यर्थ क्यों पड़ें।"

विकास— "इन्हें पचड़े समझकर गर्त में पड़ा हुआ मनुष्य कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। जिस देश में विज्ञान का अभाव है वह देश गुलामों की तरह ज़िन्दगी बिताता है।"

प्रेरणा— "मुझे इससे डर लगता है। हम नैतिक शिक्षा के आदर्श से जितनी शान्ति दे सकते हैं उतनी शायद विज्ञान से न दे सकेंगे।"

विकास— "यह तुम्हारा भ्रम है प्रेरणा! तब सुख और दुःख हमारी मुट्ठी में बन्द होंगे। वह ऐसा समय होगा जब मनुष्य हार कर ईश्वर की कल्पना नहीं करेगा। धरती अम्बर और पाताल में उसकी गति होगी। एक दिन होगा जब मनष्य की यह विजय सत्य को सामने दिखा देगी।"

ज्योति— "जिसे हम प्रकाश समझ रहे हैं कहीं वह अन्धकार तो प्रमाणित नहीं होगा।"

विकास— "हर बड़ा काम करने से पहिले मनुष्य के मन में दुर्बल विचार आया ही करते हैं। और यही मनुष्य की हार है। मनुष्य मृत्यु से डरता रहा और मृत्यु मनुष्य का उपहास करती रही, लेकिन मनुष्य मृत्यु को न खा सका। अब आगे आने वाले समय में विज्ञान मृत्यु को खाकर ही रहेगा। तो कैलाश! तुम जाओ! और खोजकर लाओ वे वैज्ञानिक विशेषज्ञ जिनके निर्माण से हमारे विद्यालय में मौत भी बन्दी हो सके।"

* * *

अनुसंधान के लिये दूसरे ही दिन कैलाश वायुयान से पृथ्वी की परिक्रमा करने चल पड़े। आज कल के लिये नया कल ढूँढने जा रहा है। लेकिन कौन जानता है कि कितने आज कल और कितने कल आज बन चुके हैं। परिक्रमा को संसार परिवर्तन समझता है।

किन्तु कैलाश अर्थ और बुद्धि के बल से रहस्य पर अधिकार करने का उत्साह लिये चला जा रहा है। वह निरन्तर तीन वर्ष तक वायु-गति से घूमता रहा, पर उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं अभी जहाँ से चला था वहीं हूँ। पथ के प्रत्येक पथिक से वह पथ पूछता पर उसे कोई सिद्ध न मिलता। आखिर एक दिन कैलाश का हवाई जहाज़ तूफान से टकरा कर एक सूने जंगल में गिर पड़ा। यान गिरते ही चालक तथा कई यात्री तुरन्त चल बसे। केवल कैलाश ही ऐसा था जिसके हलकी हलकी खरोचों के अतिरिक्त विशेष चोट नहीं लगी।

कैलाश इस आकस्मिक घटना से घबराकर काँप उठा। "मैं अब कहाँ जाऊँ ? कैसे जाऊँ ? क्या करूँ !"

जब कहीं से कोई उत्तर नहीं मिला तो कैलाश ने एक शिला पर बैठते हुए कहा— "ईश्वर अब तू ही कुछ बता !"

कैलाश के मुँह से ये शब्द सुन प्रकृति हँस पड़ी और विज्ञान ईर्ष्या से भुन गया। कैलाश ने देखा कि हाथ में गोला लिये एक विचित्र व्यक्ति पूर्व दिशा की ओर घूर रहा है।

कैलाश दौड़कर उसके पास गया और घबराता हुआ बोला— "मेरा हवाई जहाज़ टूट गया है, मेरे सब साथी मर गये। मैं इस समय कहाँ हूँ ? मेरे जाने का कोई उपाय बताइये !"

विचित्र व्यक्ति ने लापरवाही से कैलाश की ओर देखते हुए कहा— "अच्छा मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा, ठहरो ! तुम ठीक मेरे पीछे खड़े हो

जाओ। मैंने यह अग्नि बम बनाया है, प्रयोग करके मैं अपने निर्माण की परीक्षा ले रहा हूँ।"

कहते हुए उस विचित्र व्यक्ति ने अपने हाथ का गोला अपने से लगभग सौ गज़ आगे बन की तरफ लक्ष्य करके फेंका। गोला धरा पर गिरते ही फैलती हुई सुर्ख आग ज़मीन पर दहकने लगी। आग भयंकर हो उठी, वह बिजली की कौंध से भी तीव्र थी। हर पल में वह कोसों आगे बढ़ती दिखाई देती थी।

उस भयंकर आग में पेड़ जलने लगे, दिशायें दहक उठीं। न जाने कितने पशु पक्षी राख हुए होंगे।

यह भयंकर काण्ड देख कैलाश ने काँपते हुए उस विचित्र व्यक्ति से कहा— "मुझे डर लग रहा है, किसी तरह यह आग शान्त कीजिए।"

विचित्र व्यक्ति हँसा, हँसते हुए ही उसने अपने झोले में से एक और गोला निकाला। यह गोला पहिले गोले से कुछ छोटा था पर ठोस अधिक। उस व्यक्ति ने इस गोले को भी उसी तरह धधकती हुई आग के क़रीब ही ज़मीन पर मारा। जैसे ही यह गोला पृथ्वी पर गिरा, भयंकर आवाज़ हुई, और फिर पानी ज़मीन से फूटकर नदी की तरह बह चला।

पानी की गति आग की गति से बहुत तेज़ थी। देखते ही देखते पानी ने आग शान्त कर दी। यह चमत्कार देख कैलाश के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने इस अद्भुत कमाल की प्रशंसा करते हुए विचित्र व्यक्ति से हाथ जोड़कर कहा— "आप कौन हैं? कहीं आप ईश्वर ही तो नहीं हैं?"

विचित्र व्यक्ति— "ईश्वर की कल्पना व्यर्थ है, ईश्वर यदि कोई है तो मैं उसे नहीं जानता, और ना ही मैं किसी ईश्वर को मानता हूँ। मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं तो एक वैज्ञानिक हूँ।"

"आप वैज्ञानिक हैं, मैं तो आप ही को खोजने निकला था। तीन वर्ष से निरन्तर आपको ढूँढता फिर रहा हूँ। मेरी तरह कितने ही आपको खोजने निकले थे, जिनमें से कितने ही तो राह में थक कर बैठ गये और कितनों ही को राह की डायन डस गई। कुछ बच कर यहाँ तक पहुँचे थे कि जहाज़ टूट गया, और सब मर गये। केवल एक मैं ही बच कर आप तक पहुँच सका हूँ। अब आप हमें शरण में लीजिये। हमारे साथी आपकी प्रतीक्षा में हैं, आप हमें शिष्य बना कर हमारे विद्यालय को वैज्ञानिक आविष्कारों का केन्द्र बनाइये!"

वैज्ञानिक को कैलाश की भावनाओं में विश्वास लगा। उसने उसके शब्दों में चाह और साहस का अनुभव किया। वह चलने को तैयार हो गया।

"चलो," कहता हुआ वैज्ञानिक कैलाश को साथ ले अपने वायुयान के पास आया। यह यान भी एक विचित्र प्रकार का था, साधारण यानों से यह काफी छोटा और हल्का था।

वैज्ञानिक का संकेत पाकर कैलाश वायुयान में बैठा। और फिर वैज्ञानिक ने सरल दृष्टि से यान का निरीक्षण कर यान हवा में छोड़ दिया। वायुयान की चाल बहुत ही तेज़ थी। दिनों में वर्ष की यात्रा पूरी हो गई। कैलाश वैज्ञानिक को साथ लेकर हरिजन विद्यालय में आ पहुँचे।

बड़े सम्मान और समारोह के साथ विद्यालय ने वैज्ञानिक का स्वागत किया। अभिनन्दन के उत्तर में वैज्ञानिक ने अभिमान से कहा—"हम ऐसे ऐसे आविष्कार करेंगे जिनके चमत्कार से संसार की आँखें खुल जायेंगी। मैं आपको वे विद्या सिखाऊँगा कि हर वस्तु आपकी मुट्ठी में होगी।"

वैज्ञानिक के आते ही विद्यालय की विचारधारा बदलने लगी। शान्ति, सत्य और भाईचारे के सन्देश की गति धीमी हो गई। वैज्ञानिक ने विद्यार्थियों को सबसे पहिले बन्दूकें बनाना सिखाया। दो चार मास बाद ही एक से एक बढ़िया बन्दूक विद्यालय में बनने लगी।

अब विज्ञान की नई शिक्षा के सामने ज्योति, प्रेरणा, सुमति जो कुछ भी कहतीं वह कोई न सुनता। प्रभात की वे कवितायें जिन्हें सुनकर प्रकृति तक झूमती थी अब उनसे चेतन भी न हिलता था। बापू की बातें अब बकवास समझी जाती थीं। बाल्मीकि की दरिद्रता से अब किसी की आँख में आँसू न आते थे। दलितवर्ग की आवाज़ अब विज्ञान की आवाज़ में बदलती जा रही थी।

ज्योति और प्रेरणा यह सब देखकर घबरा उठीं। वे दौड़ी हुई बापू के पास गईं और बोलीं— "अन्न की कमी हो गई है, कपड़े का अभाव है, और उधर विद्यालय की सारी शक्ति तथा भूमि बम और बन्दूकें तैयार करने में लगी हुई है। हमें भविष्य अन्धकार में दीख रहा है। विकास से कहती हैं तो वे कुछ सुनते ही नहीं। लापरवाही से कह देते हैं कि हम वे चीज़ें तैयार कर रहे हैं जिनसे अन्न, अर्थ, भूमि जो जिस समय चाहें ले सकते हैं।"

चिन्ता की रेखा गम्भीरता में दबाते हुए बापू ने कहा— "सब विनाश की आग सुलगा रहे हैं, कहता हूँ तो सुनते नहीं, विकास को तो पता नहीं क्या हो गया है, वह तो ईश्वर बनने के स्वप्न देखने लगा। सत्य आज असत्य का बाना पहिन कर खड़ा होना चाहता है। मनुष्य आज अपना सहारा मनुष्यता न मान कर विज्ञान मान बैठा है। हम अपने उद्देश्यों से भटक कर अनिष्ट को इष्ट मान रहे हैं।"

प्रेरणा— "पता नहीं बापू ! मनुष्य जीवन में कितनी बार उद्देश्यों से भटकता है, और शायद जीवन भर भटकता ही रहता है। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे मनुष्य भटकने से बच सके।"

बापू— "दुनिया में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका हल न हो। पर मनुष्य तो 'पकी पकाई' चाहता है। श्रम, सेवा और सत्य से सब कुछ मिल सकता है। यह धरती तो रत्नों की खान है।"

ज्योति— "पर बापू! मनुष्य स्वभाव और कर्मों से बँधा हुआ भी तो है। वह न चाहता हुआ भी वह कर बैठता है जिसे हम पाप कहते हैं। और एक बार नहीं बार बार ठोकर खाकर भी मनुष्य ठोकर खाता है। क्या यह उसका दोष है?"

बापू— "दोष वह है जिससे स्वयम् या दूसरे को दुःख पहुँचे। इसलिये बुद्धि से विचार कर वही करो जिसे करके पछताना न पड़े।"

प्रेरणा— "तो बापू। आप चलिये, और बुद्धि के भगवान् अपने विकास को समझाइये!"

अन्धों की जर्जर लाठी काँपती हुई फिर राह दिखाने के लिये आगे बढ़ी। लाठी के एक छोर का सहारा उन आँखों वालों ने भी ले लिया जो अन्धों को दूसरा छोर पकड़ा कर राह दिखाने जा रहे थे।

विद्यालय जाकर राजसी कमरे में पहुँच बापू विकास के सामने खड़े हो गये। देखते ही विकास हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। विकास कुछ कहे इससे पहले ही बापू ने कहा— "तुम्हारी दुनिया बदल गई विकास! अब तुम ईश्वर बनना चाहते हो न? तुम ईश्वर तो नहीं बन सकते, हाँ ईश्वर को वश में अवश्य कर सकते हो, लेकिन इस तरह नहीं जिस तरह तुम उसे क़ैद करना चाहते हो। वह बन्दी हो सकता है, प्रेम से, सत्य से, सेवा से, पर-दुःख-कातरता से और शान्ति से।"

विकास— "बापू। युग बीत गये जब से हमारा देश हेय को ध्येय मान बैठा है। हज़ारों वर्ष से हम विज्ञान से शून्य हैं। हम पतन के गर्त में इतने गहरे गिरे कि धर्म धर्म चिल्लाने के अतिरिक्त कुछ सीखा ही

नहीं। मैं विकास का बीड़ा उठा चुका हूँ। हम विश्व के सामने वे वैज्ञानिक उपयोग रखेंगे कि संसार में कोई अभाव न रहेगा।"

बापू— "और शायद कोई अभाव मानने वाला भी नहीं रहेगा।"

विकास— "यह भ्रम है, ईश्वर की कल्पना ने लोगों को कायर बना रक्खा है।"

बातचीत के बीच में वैज्ञानिक ने प्रवेश करते हुए कहा— "वह दिन दूर नहीं है जब लोग ईश्वर की कल्पना छोड़ देंगे।"

बापू— "तुम्हारा विज्ञान व्यर्थ है, जब वह भूखों को रोटी नहीं दे सकता, नंगों को कपड़ा नहीं दे सकता, मनुष्य को शान्ति नहीं दे सकता!"

वैज्ञानिक— "कौन कहता है नहीं दे सकता, हमारे विज्ञान में सब कुछ देने की शक्ति है। बोलो तुमको क्या चाहिये।"

बापू— "चाहिये क्या! देखते नहीं सारा सेवाग्राम त्राहि त्राहि चिल्ला रहा है, भूख से तड़पते हुए पेट में घुटने दिये मौत की बाट देख रहे हैं, आप की बनाई हुई मशीनों के कारण बेकारी से भटकते हुए मनुष्यों ने डाके डालने शुरू कर दिये। वह सेवाग्राम जिसकी नींव सत्य और शान्ति ने धरी थी, आज भूखी अग्नि के हाथों राख करना चाहते हो! छोड़ दो यह विषैला पथ, नहीं तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे।"

वैज्ञानिक— "कल तक इस गाँव में किसी बात की कमी नहीं रहेगी। बराबर के गाँव में लाखों मन अन्न पैदा हुआ है, आज ही उस गाँव में खबर भेजे देते हैं कि या तो सुबह तक आधा अन्न सेवाग्राम भेज दो, अन्यथा गाँव को जला कर राख कर दिया जायेगा, और फिर कल से हम ऐसे यन्त्रों का कारखाना खोल रहे हैं जिनसे अन्न की समस्या हल हो जायेगी। हम खेती के लिये वे उपयोगी यन्त्र तैयार करेंगे जिनसे ज़मीन को गहरी खोद कर अधिक से अधिक अन्न निकाल सकेंगे।"

बापू— "यह क्या करना चाहते हो! क्या बावले हो गये हो पड़ौसी गाँव पर आक्रमण करके उसे लूटना चाहते हो! यह तो डकैती होगी। और जानते हो अपने अहंकार का परिणाम! धरा पर खून दिखाई देगा। मनुष्य मनुष्य से डर कर भागने लगेगा। मनुष्यों के नगर जंगलियों के खूँखार जंगल बन जायेंगे। तुम अपने यन्त्रों से अन्न तो पैदा करोगे या न करोगे पर धरती की छाती अवश्य फाड़ डालोगे! किसी को धमकी और अत्याचारों से अपना नहीं बनाया जा सकता, प्रेम से शत्रु और अत्याचारी को भी जीत सकते हो!"

वैज्ञानिक— "जब तक तुम्हारे हाथ में शक्ति नहीं है तब तक तुम चाहे कितने भी भले हो पर दुनिया तुम्हें भला कहने को तैयार नहीं होगी। हमारे पास शक्ति है तो संसार हमारा है और अगर हमारे पास शक्ति नहीं है तो हमारा अस्तित्व ही नहीं। आज हमारे पास बल है, इसीलिये तो सब हम से डरते हैं।"

बापू— "दूसरों को डरा कर अपना अस्तित्व बनाना कोई वीरता नहीं, वीरता तो तब है जब हृदयों पर विजय पाई जा सके। विकास! तुम्हारी विजय का यह पथ नहीं जिस पर तुम बढ़ चले हो।"

पर न जाने आज विकास को क्या हो गया था जो बापू की बात सुई सी चुभती थी। बापू बहुत समझाते पर प्रभाव आश्रय टटोलता ही रह जाता था। कोई रास्ता न देख अन्त में बापू ने कहा— "यदि यही होता रहा, इसी तरह लोग भूखे मरते रहे तो मेरा निश्चय है कि मैं उस समय तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगा जिस समय तक गाँव में सबको रोटी नहीं मिलेगी।

"धरती का शृङ्गार नहीं कर सकते तो उसके माथे पर स्याही तो मत लगाओ, दुलहन की अलकों का सिन्दूर तो मत पूछो, घर की लक्ष्मी

को लपटों में तो न बदलो।" अनशन का निश्चय कर कहते हुए बापू झोंपड़ी पर चले गये और इधर विकास ने पड़ौसी गाँव के पास अन्न की माँग भेज दी। माँग में दया और प्रेम के शब्द धमकी की आड़ में छिपे हुए थे।

धमकी सहन करना स्वभाव में शामिल नहीं। पड़ौसी गाँव ने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि हम प्राण दे सकते हैं पर अन्न का एक दाना भी न देंगे।

उत्तर पढ़ते ही विकास की आँखें लाल हो गईं। वह क्रोध में भरा हुआ वैज्ञानिक के पास गया, और बोला— "हेमूपुर गाँव में आग लगवा दो! बापू कहते थे नम्रता से अन्न माँग लो, नम्रता से माँगने का नतीजा है कोरा उत्तर।"

वैज्ञानिक— "घबराते क्यों हो विकास! दो मिनट में गाँव को राख कर दूँगा।"

"किसे राख कर दोगे वैज्ञानिक!" छाया की तरह विकास के पीछे घूमने वाली प्रेरणा और ज्योति ने प्रवेश करते हुए कहा।

वैज्ञानिक कुछ बोलें इससे पहिले ही विकास ने कहा— "हेमूपुर को। उसका यह साहस कि हमारे माँगने पर हमें अन्न न दे।"

प्रेरणा— "उसकी चीज़ पर उसे अधिकार है, उसकी इच्छा है वह दे या न दे, तुम्हारा कोई ज़ोर नहीं। तुम्हारा क्या अधिकार है कि तुम दूसरे की वस्तु माँगो, और फिर ज़बरदस्ती! यह अन्याय है, तुम्हें अपनी आवश्यकता की चीज़ें अपने ही गाँव में पैदा करके जीना चाहिये।"

विकास— "मौत तो अब सामने है और औषधि कल मिले! अन्न तो अब आना चाहिये। कैसे भी आये। और इसका एक ही उपाय है— बन्दूकों का उपयोग!"

प्रेरणा— "ऐसा न करो नाथ! मानवता चीत्कार कर उठेगी। सिन्दूर की होली न जलाओ!"

विकास— "कुछ भी हो, अब तो यही होगा। उस दिन मानवता ने चीत्कार नहीं किया जिस दिन बापू उनके अत्याचार सहते हुए भी उन्हें 'भाई भाई' कहते थे, और वे छुरियाँ चलाये जाते थे। लेकिन बापू ने तब भी पड़ोसी का नाता निबाहा। अच्छा ही हुआ कि अब उन्होंने अन्न देने से इंकार कर दिया, प्रतिशोध का यह एक अच्छा बहाना सामने आ गया। वैज्ञानिक! हेमूपुर में आग लगवाने की तैयारी करो!"

विकास की आज्ञा होते ही चुनौती के रूप में धाँय धाँय की आवाज़ गगन में गूँज उठी। आवाज़ सुनते ही छः दिन के भूखे बापू झोंपड़ी से बाहर निकले। चारों ओर धुवाँ देखकर आशंका से काँप उठे। वे दौड़े हुए वहाँ आये जहाँ ज्योति और प्रेरणा विकास के सामने खड़ी स्वयं को असहाय समझ रही थीं, और दूसरी ओर बन्दूकें तनी हुई थीं। रौद्र, भयानक, और करुण रस ने बापू से सब कुछ कह दिया। अन्धकार का अँधेर देख बापू ने सत्यबल से कहा "तो क्या हेमूपुर को राख करने का निश्चय ही कर लिया है?"

विकास— "निश्चय ही नहीं, आग लगाने को तैयार खड़े हैं।"

बापू— "क्या इससे तुम्हें अन्न मिल जायेगा? बल्कि जो अन्न है वह भी जलकर राख हो जायेगा। और फिर जब पड़ौसी पड़ौसी का गला घोट रहा होगा, तो ग़ैर मिलकर दोनों का गला घोट देंगे।"

विकास— "इसीलिये तो ये अस्त्र शस्त्र तैयार किये जा रहे हैं जिससे हर गाँव पर केवल हमारा राज्य हो। और हमारे राज्य में मानव कहीं भी हार कर बैठा दिखाई न दे। बापू! हमें रोको मत, बढ़ने दो!"

बापू— "मेरे रहते तुम विनाश के रास्ते पर नहीं बढ़ सकते। यदि गड्ढे में गिरना ही चाहते हो तो पहिले इन बन्दूकों का निशाना मुझे बनाओ!"

विकास— "शत्रु के साथ भलाई करना पाप है बापू ! हेमूपुर वालों ने हम पर बाप दादाओं के समय से अत्याचार किये हैं। खून के वे दाग़ अभी सेवाग्राम की छाती से मिटे नहीं। हमने बीती बात भुला कर उनसे अन्न माँगा, लेकिन उनका उत्तर आज शताब्दी बीतने पर भी नहीं बदला।"

बापू— "जब वे ही नहीं बदले तो हम ही क्यों बदलें!"

विकास— "जो समय के साथ बदलना नहीं जानते उन्हें पछताना पड़ता है। इस समय हमारे हाथ में अवसर है, हमें चूकना नहीं चाहिये।"

समय जब भयंकर आता है तो बुद्धि आगे आगे दौड़ने लगती है। बापू बहुत कहते थे पर आज उनकी बात बेकार लगती थी। विकास आज अभिमान में चूर था। उसने हुँकारते हुए कहा— "आज किसमें शक्ति है जो हमारा सामना कर सके। आज इस लम्बी चौड़ी भूमि में वे शक्तियाँ प्रहरी हैं जिनमें ईश्वरीय कल्पना बन्दी पड़ी है। ये वे भयंकर बम हैं जिनसे पल भर में प्रलय हो सकती है। ये वे हवाई जहाज़ हैं जिनमें बैठकर हम जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं। और वह दिन भी अब दूर नहीं जब ज़मीन पर, पाताल में और आकाश पर हमारा राज्य होगा।"

बापू— "रावण भी तुम्हारी तरह कहता था। उसके यहाँ तो काल तक क़ैद था। विकास! तुम्हें सेवा, शान्ति, समन्वय में जितना सत्य मिलेगा उतना इन आग के गोलों में न पा सकोगे। इनके बल पर मनुष्य मनुष्य न रहकर खूँखार पशु बन जाता है, और जल जाती है प्यार की दुलहन।"

बापू चिल्लाते ही रहे और बन्दूकें तन तन कर हेमूपुर की तरफ चल पड़ीं। बापू यह न देख सके, वे बन्दूकों का आगा रोककर खड़े हो गये, और बोले— "चलाओ मुझ पर गोलियाँ !"

बन्दूकें नीचे झुक गईं और बापू उसी तरह सीना ताने खड़े रहे। विकास की गर्दन ज़मीन में गड़ गई। उसकी आँखों से आँसू बह चले! लज्जा और करुणा का यह "भरतमिलाप" हो ही रहा था कि विद्यालय के एक ग्यारह वर्षीय बालक ने वहाँ आकर सतर्कता से चारों ओर देखा, और फिर जेब से एक छोटा सा पिस्तौल निकाल बापू की छाती पर चला दिया।

"राम! राम!" कहते हुए बापू धरा की गोद में गिर पड़े। उनके गिरते ही प्रकृति काँप उठी। ज़मीन को चक्कर आ गया। सृष्टि की आँखों से आँसू बहने लगे।

"हा! बापू! यह क्या हो गया! आज हमारा पाप तुम्हें खा गया, हमारे हाथों से आज मानवता के माथे पर कलंक लगा है। वैज्ञानिक! यह तुमने क्या बना डाला! यह पिस्तौल तुमने क्यों बनाया जिसने हमारे सब के प्राण ले लिये!"

रोते हुए विकास ने लहू से लथपथ बापू का शव अपने घुटने पर रक्खा। ज्योति, प्रेरणा, प्रभात, वाल्मीकि, सुमति आदि पछाड़ें खा खाकर गिरने लगे। लेकिन बापू ने इस बार ऐसा मौनव्रत लिया कि पीड़ा भी खाली हाथ डकराती रही।

कौन कहता है धरती पर देवता नहीं होते।

८

हरिजन विद्यालय के एक विशाल कमरे में हरिराम बापू का लहूलुहान शव रक्खा है। शव के पास विकास आधार रहित छटपटा रहा है। ज्योति, प्रेरणा और प्रभात बच्चों की भाँति बिलख रहे हैं। और भीड़ से भरा हुआ है सारा गाँव। शोकाकुल जनता से भरा हुआ गाँव ऐसा लगता है मानो सारे संसार सिमट कर इसी गाँव में इकट्ठे हो गये हैं।

पीड़ा से पागल विकास ने शव की ओर देख प्रलय में काँपते हुए कहा— "हमारे हथियार आज हमें ही खा गये। मुझे क्या पता था कि मेरा निर्माण तुम्हारे ही मरण के लिये हो रहा है। तुमने मुझे पाला, मुझ धूलि से कंचन बनाया और मैं ही तुम्हारे लिये विष बन गया! वैज्ञानिक! यह तुम्हारे विज्ञान ने क्या कर डाला, कितना कठोर है तुम्हारा सत्य कि सत्य ही को डस लिया। व्यर्थ है तुम्हारा विज्ञान जो ज़िन्दगी दे नहीं सकता। उसे मारने का क्या अधिकार जो जिलाना नहीं जानता।"

संसार का कठोर सत्य आज मौन था। वैज्ञानिक मौन था। उसके कानों में बार बार विकास के ये शब्द गूंज रहे थे— "कितना कठोर है तुम्हारा सत्य कि सत्य ही को डस लिया। व्यर्थ है तुम्हारा विज्ञान जो ज़िन्दगी दे नहीं सकता। उसे मारने का क्या अधिकार है जो जिलाना नहीं जानता।"

वैज्ञानिक सोच रहा था कि 'सचमुच तू आज सत्य को खा गया। तूने बहुत खोजा पर कुछ भी न खोज सका। विज्ञान व्यर्थ है जब तक यह न खोज ले कि प्राण कहाँ से आते हैं और कहाँ चले जाते हैं। विज्ञान व्यर्थ है जब तक वह मार सकता है और ज़िन्दा नहीं कर सकता।'

'मैं यह रहस्य खोज कर ही रहूँगा' यह सोचते हुए वैज्ञानिक ने कहा— "बापू का शव मुझे दे दो, मैं उसे ज़िन्दा कर दूँगा।"

किसी को विश्वास नहीं हुआ पर आशा से विकास ने हरिराम का शव वैज्ञानिक को दे दिया। वैज्ञानिक ने वह शव अपने विचित्र कमरे में औषधियों में रक्खा। करोड़ों यन्त्रों से उसने उसका परीक्षण शुरू किया। तार तार का विश्लेषण कर डाला पर उसे यह पता न चला कि इसमें जीवन क्या था जो अब नहीं रहा।

पर इतने ही से वैज्ञानिक हार मान कर नहीं बैठा। ऐसा लगता था जैसे वह प्रतिज्ञा कर चुका है कि जीवन खोज कर ही रहूँगा। उसने बुद्धि का सारा बल लाकर इकट्ठा कर लिया। खोजते खोजते उसे पसीना आ गया लेकिन शव में जीवन न आ सका।

वैज्ञानिक को बीस घण्टे बराबर यत्न करते हो गये लेकिन हृदय में गति नहीं आई। विकास ने हाथ मल कर रोते हुए कहा— "वैज्ञानिक! तुम मार सकते हो, ज़िन्दा नहीं कर सकते।"

प्रतिध्वनि में प्रकृति ने उदास भाषा में कहा— "न कोई मार सकता है और न कोई जिला सकता है। यह कार्य किसी अज्ञात शक्ति का इंगित ही है। वही गोद है, वही डोली है, और वही अर्थी।"

पर वैज्ञानिक के हृदय में विकास के शब्द जले पर नमक का काम कर रहे थे। उसने विवशता को धमकाते हुए कहा— "कुछ भी हो, जीवन और मरण का रहस्य मैं खोज कर ही रहूँगा।"

"बीमार के मरने के बाद औषधि व्यर्थ होती है। अब तुम्हारी सारी दवायें बेकार हैं वैज्ञानिक! छोड़ो! अब शव की भी मिट्टी खराब क्यों करते हो? दाह का समय बीता जा रहा है।" विकास ने हाथ मल कर छटपटाते हुए कहा।

किन्तु प्रेरणा को शोक की पराकाष्ठा में भी यह बात अच्छी नहीं लगी। उस ने दुःख की असीमा को लाँघ सच्चाई का पक्ष लेते हुए कहा— "न जाने मनुष्य अपना दोष हमेशा दूसरे का दोष क्यों समझना चाहता है। वह हारता हुआ भी अपनी हार नहीं मानता। दोष हमारा भी कम नहीं है, हमारे सर पर भूत सवार हुआ और हम हवा पर सवार हो गये। जो होना था हो लिया, अब तो आगे का मार्ग देखो।"

हरिराम बापू का शव जड़ और चेतन प्रकृति के हृदय पर आसीन पवित्रतोया गंगा के किनारे पहुँचा। करोड़ों की आँखों का जल आज अर्घ्य बन कर बापू पर चढ़ रहा था, शव कन्धों से अग्नि के तपोमय आसन पर तुरीय अवस्था में आनन्द रूप हो गया।

(देखते ही देखते भौतिक तत्वों का जल और मिट्टी में तादात्म्य कर राही फिर रंगीन दुलहन के पास आ गये।

दाह के बाद फिर नयी दुलहन की कल्पना करने लगे। बात बीती नहीं कि नयी बात खड़ी हो गई। मृत्यु की रुनझुन कानों में झनकारती

रही किन्तु दुलहन का शृङ्गार न रुका। शोक का सिंधु उमड़ा आ रहा है पर प्राणों की चाह अब भी है। दुःखों के दीपक जलते हुए न जाने क्या ढूँढ रहे हैं।

"शोक के इस स्थल पर सब हैं, लेकिन वैज्ञानिक नहीं हैं। प्रेरणा! वैज्ञानिक नहीं आये?" विकास ने उनके तिरस्कार की शंका अपने मन में करते हुए कहा।

प्रेरणा— "जान पड़ता है वैज्ञानिक को हम सब से अधिक दुःख है, लेकिन वे गंभीर हैं। भूल बालक की है और कारण बन गया वैज्ञानिक का आविष्कार। उसे अपना आविष्कार आज तिनके से भी हलका लग रहा होगा।"

"होनी में वैज्ञानिक का क्या दोष। होनी तो होकर ही रहती है, और यदि कोई अपने को अपराधी मान कर दुःखी होता हो तो उसे धैर्य देना मनुष्य का धर्म है। मनुष्यता का अर्थ दया और सम्मान है, तिरस्कार और ठोकर नहीं। हम तिरस्कार करके खोते हैं और सम्मान से सौन्दर्य पाते हैं। हमें वैज्ञानिक का तानों से हृदय नहीं दुखाना चाहिये। वह एक अद्‌भुत् शक्ति है, उसका अपमान भयानक भी हो सकता है।" ज्योति ने वस्तुस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा।

"अपमान कौन करता है ज्योति! अधिक क्रोध अपने ही पर आता है।" विकास ने भूल की छाया देखते हुए कहा।

"लेकिन अपने का क्रोध सहन नहीं होता, ग़ैर का हो जाता है, क्योंकि वहाँ नाता नहीं, ईंट और पत्थर का प्रसंग होता है।" ज्योति ने जीवन की व्याख्या करते हुए कहा।

सद्‌भावना से जब कोई सच्ची बात कहता है तो हृदय मान ही लेता है। विकास को अनुभव हुआ कि मेरे शब्दों से वैज्ञानिक को महसूस

हुआ है। वह अपना हृदय हलका करने के लिये वैज्ञानिक के कमरे में पहुँचा। समय लगभग रात के दो बजे का होगा।

विकास ने देखा कि वैज्ञानिक निर्निमेष दृष्टि से जाग रहा है। उसकी आँखों में नींद नहीं है। हृदय में कोई संकल्प घनीभूत है।

विकास ने प्रायश्चित की भाषा में कहा— "वैज्ञानिक!"

वैज्ञानिक का ध्यान भंग हो गया। "क्या है विकास! इतनी रात गये तुम अभी तक जाग रहे हो। सोये नहीं!" वैज्ञानिक ने विकास से आराम कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा।

"और तुम भी तो अभी तक जाग रहे हो, सोये नहीं। इतनी रात गई, अभी तक क्या कर रहे हो वैज्ञानिक!"

"न जाने कितनी रातें इसी तरह जागते हुए बीती हैं पर अभी तक उलझन नहीं सुलझी। और मैं तब तक सोऊँगा भी नहीं जब तक उलझन नहीं सुलझा लूँगा। मेरा विज्ञान अधूरा है, मैं मार सकता हूँ विकास! जिला नहीं सकता। अब तो मैं तभी सोऊँगा जब जिला भी सकूँगा।"

"नाराज़ हो गये वैज्ञानिक! मैं तो शोकावेग में कठोर शब्द कह गया था, क्षमा कर दो वैज्ञानिक!"

"नहीं विकास! मेरे हृदय से तुम्हारे कठोर शब्दों की चुभन कभी की मिट चुकी, लेकिन नींद तभी आयेगी जब मृतक को ज़िन्दा कर सकूँगा।"

"कितनी मंज़िल और बाक़ी है वैज्ञानिक!"

"चलते चलते घुटने टूट गये, लेकिन चरण अभी तक जहाँ के तहाँ ही हैं। लक्ष्य का पता है, लेकिन मंज़िल का पता नहीं; फिर भला मंज़िल की दूरी कैसे कही जा सकती है विकास!"

"तुम कितना भी खोज लो वैज्ञानिक ! लेकिन फिर भी उलझन बनी ही रहेगी। उस वैज्ञानिक की लीला बड़ी विचित्र है जिसने यह दुनिया बनाई है। मनुष्य उसके रहस्य को जितना स्पष्ट करना चाहता है उसकी सृष्टि उतनी ही घूँघट में घुसती चली जाती है। छोड़ दो भूलभुलैया का यह खेल !"

"यह खेल तभी खत्म होगा जब जीवन-यन्त्र मेरे हाथ में हो जायगा। अन्यथा यह खेल खेलता खेलता मैं ही खत्म हो जाऊँगा। वह विकास ही क्या जो अधूरा रह जाये !"

"और वह विकास ही क्या जो मनुष्य को रोटी तक न दे सके, इस विकास से हम भटक गये हैं, भूखे मरने लगे हैं, और हम आक्रामक कहलाते हैं। पड़ौसी हमसे डरते हैं, प्रकृति हमसे काँपती है, ज़िन्दगी हमसे खतरे में है। अपने इन भयंकर विनाशक आविष्कारों का फल उन सुनहरी दुलहनों से पूछो जो राख की ढेरियों में बदल चुकी हैं, उन हरी भारी खेतियों की स्मृति से पूछो जो कौंध उठती है, भुखमरी की उस आग से पूछो जो ज़मीन जलाये डाल रही है, उस अनीति से पूछो जो आज नीति कहलाती है। हमने इनमें अमृत समझा था, किन्तु विष निकला।" सहसा टिमटिमाती दीपशिखा सी ज्योति ने आकर कहा।

"विष उतारने के लिये विष की आवश्यकता भी जीवन में पड़ती है। तूफान भी ईश्वर का एक अस्त्र है। मेरे आविष्कार व्यर्थ नहीं, उपयोगी हैं। हाँ, यदि ये आविष्कार पागल को दे दिये जायें तो इसमें विज्ञान का क्या दोष ? दोष पागलपन का है। खैर कुछ भी हो, मैं पागलपन से हुई प्रलय का उपचार भी खोज कर ही रहूँगा। कल तक मैं तुम्हारा अतिथि हूँ और परसों अम्बर की ऊँचाई में उड़ जाऊँगा। या तो

गगन की गहराई में स्वयम् खो जाऊँगा या जीवन नाम वस्तु को खोज ही लाऊँगा।" वैज्ञानिक ने सर उठाकर कहा।

बातों का अन्त होने ही वाला था कि प्रेरणा के आने से बातों में और बातें आ गईं। प्रेरणा ने करुणा भरी भाषा में कहा— "विद्यालय के सब विद्यार्थी और सारा गाँव भूखा मर रहा है, अन्न का एक दाना भी नहीं रहा, अब क्या होगा ?"

विकास— "जो तुम्हारे ईश्वर की इच्छा होगी, नहीं तो इन अस्त्रों से लूटने दो दूसरे ग्रामों को।"

प्रेरणा— "फिर वही सोचने लगे जिसने अभी सब स्वाह किया है। फिर वही करने को तैयार हो जिसे करके अभी हाथ मल रहे थे।"

इतने में सुमति ने प्रसन्नता से वहाँ आकर कहा, "हेमूपुर से नाज की गाड़ियाँ आई हैं। अन्न लाने वाले सभी गर्दन झुकाये बाहर बैठे हैं। यह पत्र उन्होंने दिया है।"

पत्र लेकर ज्योति ने पढ़ना शुरू किया :—

"प्यारे भाइयो !

बड़ी मुहब्बत से राम राम !

हमें बेहद दुःख है कि हमारी वजह से आपको बहुत तकलीफ पहुँची और हम ही इस बात के मुलज़िम हैं कि एक देवता की हत्या हुई। हरिराम सचमुच इतना अच्छा था कि बुराई उससे शर्माती थी। पर हमारे पापों ने ऐसे महात्मा को भी खा लिया। हम शर्मिन्दा हैं, और माफी माँगते हैं।

हमारे यहाँ अन्न बहुत है, आप किसी तरह की तकलीफ न उठाना। पचास गाड़ी नाज भेज रहे हैं। गाड़ियाँ वापिस आने पर कल और भेजेंगे। हमारे यहाँ इतना अन्न है कि पचास गाँवों को भूखा मरने से

बचा सकते हैं। आप किसी बात की बिल्कुल चिन्ता न करें। हमें यकीन है कि आप अपने पड़ौसी की ग़ल्तियों को भूल जायेंगे, और जो सेवा हो अपना समझ कर लिखें।

हम हैं आप के पड़ौसी
हेमूपुर वाले"

पत्र पढ़ते ही विकास की आँखें छलछला आई। वह प्रेम से विभोर हो उठा। उसने व्यग्रता से कहा— "प्रेरणा! हरिराम बापू अपना रक्त भी हमारी ज़िन्दगी के लिये दे गये। उनके सत्य ने हमें इतना ऊँचा उठाया। बापू! कहीं तुम ही तो ईश्वर नहीं थे! चलो साथियो! पड़ौसियों का सादर स्वागत करें।"

प्रेम और लज्जा से हाथ जोड़े विकास के साथ सब वहाँ आये जहाँ हेमूपुर वाले नाज की गाड़ियों के पास गर्दन झुकाये खड़े थे। करुणा के इस प्रेम भरे दृश्य में सबकी आँखों में गंगा बह चली।

ज्योति ने करुण रस में शान्त रस बरसाते हुए कहा— "जीवन एक बुलबुले के सदृश है, इस छोटी सी ज़िन्दगी में भलाई ही सहचारी है। भूल को भूलना ही चाहिये। मनुष्यता इसमें है कि हम आगे वह भूल न करें जिससे हम हानि उठा चुके हैं।

"आपने अन्न लाकर जो हमारी सहायता की है वह एक सच्चे पड़ौसी के धर्म का निर्वाह किया है। हमें भी लज्जा है कि हमने आपको धमकी दी। आशा है कि आप भूल जायेंगे और क्षमा करेंगे। अपने शुभ समाचारों से हमें सदा प्रसन्न करते रहें, और हमारे लिये जो सेवा हो वह लेने में कभी संकोच न करें।"

मानवता के व्यवहार के बाद सारे सेवाग्राम ने पड़ौसियों का प्रेम से आतिथ्य किया। वस्तुतः प्रेम में जितना मधु है

क्या इतना और किसी वस्तु में है। कहीं प्रेम ही का दूसरा नाम तो अमृत नहीं, कहीं प्रेम ही तो स्वर्ग नहीं।

* * *

जीवन की पगडण्डी भी बड़ी विचित्र है। यह कभी कितनी सुहावनी लगती है और कभी कितनी विषैली। इस पगडण्डी पर चलता चलता मनुष्य न जाने कितनी बार भटकता है। इस सुनहरी सड़क के आकर्षण बहुत ही खटमिट्ठे हैं।

संसार में सद्भावनायें संचारी भावों की तरह आती हैं और चली जाती हैं। न जाने कितनी बार मनुष्य देवता बनता है और फिर पिशाच बन जाता है। नश्वरता पल भर के लिये खलती है और फिर प्रिय लगने लगती है। इतनी सुनहरी दुलहनें हैं इस दुनिया में कि करोड़ों 'विश्वामित्र' भी भूल जाते हैं।

बहुत थकने के बाद आदमी कुछ विश्राम भी चाहता है, अच्छी से अच्छी वस्तु जब आदमी के पास बहुत दिन रहती है तो वह नयी नहीं रहती। प्रेरणा विकास को अब नयी नहीं लगती थी। बहुत दिन से उसके मन में एक बात थी पर वह छिपाये हुए था। आज उसने कामिनी को अपने कमरे में अकेली पाकर कह ही दी— "कामिनी! तुम कितनी सुन्दर हो, तुम्हारी हर बात में सौन्दर्य है। तुम तन और मन दोनों ही से देवी हो। तुम गाती हो तो मन झूमने लगता है, सचमुच तुम गीतों की रानी हो।"

कामिनी सुनकर हल्की मुस्कान के साथ मौन हो गई। पर विकास की मानसिक भावना और तन गई। कामना शब्दों में छिपाकर उसने कामिनी से फिर कहा— "तुम से बातें करने को बहुत जी चाहता है, जी चाहता है हर समय तुमसे बातें करता रहूँ।"

भावना और आगे बढ़ गई, विकास ने कोमलता से कामिनी का हाथ अपने हाथ में पकड़ लिया। विकास की महानता के कारण कामिनी मौन रही। उसके मौन को विकास ने भंग कर दिया जब कि उसका हाथ और आगे बढ़ा।

कामिनी ने लज्जा और श्रद्धा के मध्य डोलते हुए कहा— "आप जैसे महापुरुष के लिये यह उचित नहीं। प्रेरणा बहिन आपके पास हैं। मैं तो तुम्हें भाई मानती हूँ।"

"लेकिन मेरा मन अब वश में नहीं है कामिनी! वह पागलों की तरह तुम्हारी ओर दौड़ता है।" विकास ने विनीत वाणी में कहा।

"ऐसा न सोचो विकास बाबू! मैं अब वेश्या नहीं हूँ, किसी की स्त्री हूँ। तुम मुझे देखो, खूब देखो! तुम मुझसे सेवा लो, खूब लो! लेकिन मुझे छुवो मत। सौन्दर्य छूने से मैला हो जाता है, और देखने से उसकी दमक बढ़ती है। तुम मुझे छुवोगे तो मुझ से घृणा भी करने लगोगे। डाल पर हँसता हुआ फूल सुन्दर दीखता है। और जब किसी के कठोर हाथ भिक्षुक बन कर उसे तोड़ अपने गले का हार बना लेते हैं तो फिर फूल सीने की कठोरता से मुरझा जाता है। तब उस फूल को प्यार का भिखारी गले से उतार कर धूल में फेंक देता है। यह संसार सौन्दर्य का स्वागत नहीं, भक्षण करता है।"

कामिनी की बातों से विकास की आँखें झुक तो गईं, पर मन का भाव न झुका। वह कातर हो उठा, उसने कामिनी की ओर गूंगे भिखारी की तरह देखा।

विकास की कातरता देख कामिनी को तरस आने लगा। प्यार का अमृत तरस की एक घूँट ही तो है। वह विकास को दया से देखती हुई बोली— "मैं तुम्हारे पास ही तो रहती हूँ, और तुम्हारे प्रति श्रद्धा भी रखती हूँ। यह क्या, तुम्हारी आँखों में आँसू आ गये! किन्तु मैं

विवश हूँ बाबू जी! मैं बाज़ार में बैठने वाली की बेटी अवश्य हूँ, पर बाज़ार में बैठने वाली नहीं। मैं एक सच्ची नारी हूँ जो केवल कैलाश को ही अपना पति मानती है।"

पर विकास के सर पर तो भूत सवार होता जा रहा था। उसने कामिनी के तरस को पिँघलना समझा, और उसने कोमलता से उसका गुलाब के फूल जैसा मुँह ऊपर उठा उसकी आँखों में अपनी आँखें गड़ानी चाहीं। लेकिन कामिनी की आँखें कातर थीं। डरी हुई तारिकायें इधर उधर इस तरह दौड़ रही थीं जैसे जाल डालने पर मछलियाँ दूर दौड़ जाती हैं।

कामिनी हाथ हटा कर खड़ी हो गई। वह विकास से बहुत प्रेम करती थी, पर प्रणय की भावना कभी उसके हृदय में नहीं आई। वह नहीं चाहती थी कि विकास के सम्मान में तनिक भी चोट लगे। उसकी इच्छा थी कि विकास का महत्त्व चरम पर देखूँ। वह आदर और निर्धनता उड़ेलती हुई बोली— "मैं आप को रिझाऊँगी, प्रसन्न करूँगी, किन्तु गा गा कर, नाच नाच कर। पलकों से तुम्हारी आरती उतारूँगी। आपके थकित चरणों को नेत्र-बिन्दुओं से पखार पखार कर गति दूँगी। लेकिन मैं अपना वश चलते कैलाश का हृदय भी नहीं तोड़ना चाहती।"

प्रेरणा जो पिछले कमरे में खड़ी हुई कान लगाकर प्रेम पुराण सुन रही थी, सुनते सुनते उद्विग्न हो उठी। उसके हृदय में उत्तेजना आई, उसने सोचा चलकर अपने पति को अभी कामिनी के सामने बुरा भला कहे। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके हृदय ने उत्तर दिया– "नहीं, नहीं! ऐसी भूल न कर। इससे उनका अपमान होगा। कहीं ऐसा न हो कि उनका अपमान तेरे प्रति घृणा में बदल जाये। बुरे से बुरे मनुष्य को लज्जित करके निर्लज्ज बना दिया जाता है। आखिर इन्हें आज यह क्या हो गया? ये कामिनी की ओर क्यों आकर्षित होने लगे? ये तो ऐसे थे नहीं! क्या मुझ में कुछ

कमियाँ हैं? अवश्य कुछ अभाव हैं। कामिनी में अवश्य कुछ विशेषताएँ हैं, तभी तो उनका पत्थर हृदय भी उसकी ओर पिघल गया। वह शरीर की ही सुन्दर नहीं, स्वभाव की भी बहुत सुन्दर है। इतने दिन हो गये पर मैंने कभी उसके मुख पर क्रोध की रेखा नहीं देखी। सचमुच उसकी हर कम्पन में सौन्दर्य है। वे तो पुरुष हैं, मैं स्त्री होते हुए भी उसकी ओर आकर्षित हो जाती हूँ। किन्तु कुछ भी हो मैं अपने विकास को तो उस सौन्दर्य का बन्दी नहीं बनने दूँगी। मुझे उन अभावों की पूर्ति करनी चाहिये जिनके कारण उन्हें जीवन में अभाव दीखता है। सच भूल मेरी ही है। उन्होंने बहुत बार मेरे सामने कामिनी के नाचने गाने और शृङ्गार की प्रशंसा की, लेकिन मैं लापरवाही से टालती रही और उनको न समझ सकी। प्रेरणा! जो बात गई सो गई, अब भी सँभल! समय रहते जाग जा, नहीं तो तू ज़िन्दगी भर जलती रहेगी।"

सोचते सोचते प्रेरणा पिछले दर्वाज़े से चुपचाप कैलाश के कमरे में पहुँची। चिन्ता की हलकी मुद्रा में उसने आराम कुर्सी पर लेटे हुए कैलाश से कहा— "कामिनी कहाँ है?"

कैलाश— "वह तो शायद विद्यालय में नृत्य और संगीत सिखाने की योजना पर विचारार्थ तुम्हारे ही पास गई थी। क्यों वहाँ नहीं पहुँची क्या?"

प्रेरणा— पहुँच तो गई होगी, मैं तनिक एक दूसरे काम में लगी हुई थी। अच्छा तो मैं चली, वहीं बातें कर लूँगी कामिनी से।"

"क्यों, बैठो न प्रेरणा! इतनी जल्दी क्या है? तुम्हें वहाँ न पाकर कामिनी भी अभी यहीं आ जायेगी। यह लो वह कामिनी आ ही रही है।"

कैलाश का अन्तिम वाक्य अभी पूरा हुआ भी नहीं था कि कामिनी आ गई। कामिनी कुछ कहे इस से पहिले ही

कैलाश ने कहा— "तुम वहाँ इन के पास गई थीं और ये यहाँ तुम्हारे पास आई हुई हैं। तुम दोनों का इतना स्नेह देख कर कहीं मुझे ईर्ष्या न होने लगे।"

कामिनी पहिले ही अकारण शंकित सी आ रही थी, अब यहाँ प्रेरणा को बैठे देख उसने सोचा कि कहीं यह मुझ पर सन्देह तो नहीं करने लगी है। लेकिन यह हृदय में अधिक विचार करने का समय नहीं था। कैलाश की बात सुन कर कामिनी मुस्कराती हुई बोली— "ईर्ष्या करना स्त्री का स्वभाव होता है। पुरुषों को यह रोग कब से लगने लगा?"

कैलाश— "जब से स्त्रियाँ पुरुष बनने लगीं।"

कामिनी— "और पुरुष स्त्री, यह भी तो कहो!"

प्रेरणा— "स्त्री और पुरुष दोनों ही संसार रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। पुरुष के बिना स्त्री अधूरी है और स्त्री के बिना पुरुष का जीवन जंगल है। पर पुरुष स्त्री से बार बार हार कर भी न जाने अपने को बड़ा क्यों मानता है! स्त्री की कोमलता पर न जाने अपनी कठोरता को विजय क्यों कहता है!"

"लो, यहाँ तो स्त्री पक्ष प्रबल होने लगा! स्त्रियों का बहुमत है न इस समय! अपने मुँह मिया मिट्ठू खूब बनो! पुरुषों को खरी खोटी खूब सुनाओ? ज़ोर है तुम्हारा।" कैलाश ने स्नेह भाव से कहा।

"स्त्रियों ने पुरुष के बन्धन में रहकर बहुत दिनों तक जेल काटी है, अब पुरुषों को स्त्रियों के बन्धन में रहना पड़ेगा। अच्छा, इस समय स्त्री-पुरुष की कहानी छोड़ो और मतलब की बातें करने दो। चलो प्रेरणा! हम दूसरे कमरे में बैठकर बातें करेंगे। यहाँ तो ये तंग करते ही रहेंगे।"

कहते हुए कामिनी ने प्यार से प्रेरणा का हाथ पकड़ कर उठाया और दूसरे कमरे की ओर ले चली।

दूसरे कमरे में पहुँच कामिनी और प्रेरणा चौकी पर बिछी चटाई पर सट कर बैठ गईं। बैठने के बाद कामिनी ने कहा— "बहिन ! मेरी इच्छा है इस विद्यालय में उच्च कोटि का संगीत और नृत्य भी सिखाया जाय। लोग स्वर्ग की कल्पना करते हैं, लेकिन यदि नृत्य और संगीत में झूमती हुई कविता से सत्यों की पूर्ति की जाये तो क्या स्वर्ग की कल्पना इसी मर्त्यलोक में साकार नहीं हो जायेगी ?"

प्रेरणा— "सच कहती हो कामिनी ! देवताओं की थकान दूर करने के लिये जिस अमृत की बूँद की कल्पना की गई है वह कलाकार की ध्वनि ही तो है। लेकिन विज्ञान की चीर फाड़ में गीति परित्यक्ता सी होती जा रही है। उसका शृङ्गार स्वप्न के सुहाग सा करुण है। कामिनी! तुम्हारी भावनायें बहुत ऊँची हैं। तुम्हारा सौन्दर्य सचमुच सृष्टि का सौन्दर्य है। तुम जीवन की कठोरता को मृदुल झनकार में बदल सकती हो। बदल दो बहिन ! जीवन की प्रतिकूल गति को। मैं भी तुम से गाना सीखूँगी। मुझे भी नृत्य सिखाओ बहिन ! संगीत में जीवन का सत्य होता है सखी ! सिखा दो मुझे भी जीवन का यह सत्य !"

कहते कहते प्रेरणा व्यग्र हो उठी। "यह क्या ? तुम उदास क्यों हो गईं ? आज तुम कैसी हो रही हो, क्या हो गया तुम्हें ?" कामिनी ने प्रेरणा के प्रति अपना भावामृत उड़ेलते हुए कहा।

"कुछ नहीं कामिनी ! मुझे अपने जीवन में अभाव दीख रहा है। अपना अधूरापन मुझे खलता है। संगीतशून्य नारी भी क्या नारी है !" प्रेरणा ने स्त्री स्वभाव की व्यग्रता के आवेग में कहा।

कामिनी— "यह सृष्टि ही संगीतमयी है बहिन ! सृष्टि की कला संगीत ही तो है। पर आज तुम इतनी अधीर क्यों हो ? अच्छा लो, मैं गाती हूँ। गाने से दर्द हलका हो जाता है।"

कामिनी ने गाना शुरू किया। उसके गीत में एक अद्भुत गूंज थी। रात्रि की शान्त रुपहली सृष्टि में कामिनी के कण्ठ की झनकार से प्रेरणा ही क्या सारा विद्यालय मन्त्रमुग्ध हो उठा। गीत की ध्वनि से पड़ोसियों के कानों में भी रस बरसने लगा। हवा की गति भी रुक कर गीत की तान सुनने लगी।

गीत का यह रस वैज्ञानिक के कानों में भी पहुँचा। उसका ध्यान अपने अन्वेषण की ओर से हट गीत की ओर आकर्षित होने लगा। वह बार बार अन्वेषण की ओर ध्यान लगाता और बार बार गीत की ध्वनि उसका ध्यान खींच लेती।

वैज्ञानिक को सहसा कुछ क्रोध आया, पर गीत के स्वर ने तुरन्त ही उसका क्रोध भंग कर दिया। वह परेशान होकर कहने लगा— "कैसा जादू है यह! कौन जादूगर है यह जिसके जादू ने मेरा निर्निमेष ध्यान भंग कर डाला! कौन है यह जो मेरा अन्वेषण असफल करना चाहता है!"

सोचता सोचता वैज्ञानिक आकर्षण के वशीभूत अपने कमरे से बाहर आया। वह उस ओर चला जिधर से गीत की ध्वनि आ रही थी। वह कुछ ही आगे बढ़ा था कि विकास भी उसी तरफ जाता दिखाई दिया। लेकिन दोनों अपनी धुन में मस्त थे। एक ने दूसरे को रोका नहीं।

जैसे ही ये गीत की निर्झरणी के पास पहुँचे कि गीत झरना बन्द हो गया। स्वाभाविक संकोच से स्वप्न भंग होकर एक अद्भुत मुस्कान में झलक उठा।

गीत बन्द होते ही एक दूसरे को इस प्रकार देखने लगे जैसे सहसा कुछ खोने पर देखने लगते हैं, और फिर जैसे खोई हुई वस्तु के रखने का स्थान ध्यान आते ही उठाने के लिये लपकते हैं। ऐसी ही लपकती

हुई वाणी में विकास ने कहा— "गाओ कामिनी! तुम्हारे गीत में ज़िन्दगी है। जब तुम गा रही थीं तो पीड़ा सोयी हुई थी। तुम्हारी व्रीड़ा ने पीड़ा को फिर जगा दिया। यह गीत और यह कण्ठ तुमने कहाँ से पाया कामिनी।"

कामिनी— "यह गीत तो तुम्हारे प्रभात की पीड़ा का एक स्पन्दन है, और मेरे गले में संगीत भरने वाली जननी बाज़ार की कठोरता से धूल बन पैरों में रुँद रही है। और मेरी माँ जल, थल या अम्बर में कहीं है या नहीं, यह कौन जानता है? पता नहीं वह कहाँ मरी?"

मृत्यु की याद ने वैज्ञानिक का ध्यान फिर अपने लक्ष्य की ओर खींच दिया। वह उलझन की गहराई की तरफ दौड़ता हुआ मन ही मन में कह उठा— "आख़िर यह क्या रहस्य है! मृत्यु की शक्ति के आगे सब को मौन होना पड़ता है। मैं इस भयंकर महाशक्ति को वश में कर के ही रहूँगा।" और फिर मन की बात बाहर आगई। वैज्ञानिक ने कहा— "मैं सुबह यहाँ से चला जाऊँगा।"

विकास— "कहाँ चले जाओगे वैज्ञानिक!"

वैज्ञानिक— "आकाश की ओर।"

विकास— "किस लिये?"

वैज्ञानिक— "आकाश के विस्तार में जीवन शक्ति ढूँढने, अम्बर का विस्तार पाने। मैं प्रातः उड़ूँगा, और इतना ऊँचा उड़ूँगा कि चाँद सूर्य और जितने भी शक्ति-चिह्न हैं सब को वश में कर लूँगा। यह भेद खोल कर लाऊँगा कि मनुष्य मर कर कहाँ जाता है। वह शक्ति खोज कर लाऊँगा जिससे मृतक को ज़िन्दा किया जा सकता है। मैं मरना और जीना मनुष्य के वश में करके लौटूँगा।"

विकास— "क्या अकेले ही जाओगे?"

वैज्ञानिक— "अकेला क्यों जाऊँगा, साथ में विश्वास जो होगा।"

"महा मनुष्य ! छोड़ दो विज्ञान के बल से ईश्वर बनने की कल्पना। यदि तुम मृत्यु को जीतना ही चाहते हो तो आत्मा का विस्तार करो!" प्रेरणा ने अन्तरात्मा की प्रेरणा से कहा।

वैज्ञानिक— "यह व्यर्थ की माला मैं नहीं जपना चाहता। इन मालाओं के फन्दों में पड़ा हुआ मनुष्य हार मान कर बैठ जाता है। वह अपनी हार के लिये ईश्वर का आश्रय लेता है। मैं सबेरे हवाई जहाज से ऊपर की ओर उड़ूँगा और सत्य की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँच कर रहूँगा।"

विकास— "और मैं भी उस चोटी पर तुम्हारे साथ चलूँगा।"

वैज्ञानिक— "तो फिर सबेरे मेरे साथ चलो!"

विकास— "मैं इस समय भी तैयार हूँ। सत्य की खोज में चलते चलते मैं जवानी के बीच सिन्धु में फिर फिसल चुका। लेकिन मेरी आत्मा को शान्ति अभी भी नहीं है।"

प्रेरणा— "किन्तु सत्य की खोज में अब आप जिस रास्ते से जाना चाहते हैं, वह तो रास्ता ही नहीं है। मंज़िल का पता नहीं और पथिक बढ़ चले तो फिर उसे भटक कर वापिस ही लौटना पड़ता है।"

विकास— "चलने वाला जिधर जाता है रास्ता उधर ही बन जाता है। आशंका से न चलने वाले ज़िन्दा नहीं होते। आख़िर यह देखना तो चाहिये कि आकाश की गहराई में क्या छिपा हुआ है।"

प्रेरणा ने बहुत समझाया लेकिन विकास ने हठ न छोड़ी। सारी रात कहते और सुनते बीत गई पर होनी न टली। बातों ही बातों में पाँच बज गये। वैज्ञानिक ने उड़ने के लिये यान को देख भाल कर ठीक किया। महीनों की यात्रा का सामान यान में रक्खा।

तैयार होते होते विदा वेला भी आ गई। विद्यालय के सभी विद्यार्थी और कर्णधार यान को घेर कर खड़े हो गये। सभी की आँखों में उदासी छायी हुई थी। प्रभात को यद्यपि अथाह पीड़ा थी पर वह मन ही मन में रोने का अभ्यासी बन चुका था। लेकिन प्रेरणा गम्भीर होते हुए भी आज आँसुओं से भीगी खड़ी थी। उसने रोते हुए कहा— "मैं सब सह सकती हूँ, लेकिन नाथ! आपके वियोग में ज़िन्दा रहना मेरे वश की बात नहीं। पता नहीं मेरा मन अन्दर से डर क्यों रहा है! आप जा तो रहे हैं, पर यदि दैविक शक्तियाँ आगे बढ़ने के लिये रास्ता न छोड़ें तो उनसे युद्ध मत करना, विनय करना। यदि भयंकर आपत्तियों में बुद्धि हार जाये तो ईश्वर को पुकारना! दुःख में जब कोई सच्ची भावना से भगवान को पुकारता है तो वह अवश्य उसे सहारा देता है। और यह भी मत भूलना कि आपके बिना कोई एक एक पल रो रोकर काट रही है। जब तक आप नहीं लौटेंगे मैं विद्यालय में आपके और अपने दोनों के हिस्से की सेवा करती रहूँगी।"

विकास— "भय मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकता है। आशंका छोड़कर मुझे प्रसन्नता से विदा करो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे आँसू मेरा पैर न बढ़ने दें।"

प्रेरणा— "यदि भगवान दुखी पर दया करता है तो मेरी आँखों का यह नीर सदा आपकी रक्षा करता रहे।"

"बैठो विकास!" कहते हुए वैज्ञानिक ने प्रेम और करुणा का यह प्रसंग भंग कर दिया। विकास पत्थर हृदय करके सबकी आँखों के आँसू देखते हुए यान में बैठ गये। बैठते ही एक बार उनके हृदय में धक्का लगा और सोचा कि न जाऊँ। लेकिन मानवता के अहंकार ने तुरन्त उनकी भावुकता छीन ली।

देखते ही देखते यान आकाश की ओर उड़ता दिखाई देने लगा। जैसे ही जैसे यान ऊपर उड़ता था वैसे ही वैसे प्रेरणा का हृदय बैठा जाता था। प्रभात अपने हृदय पर पत्थर पर पत्थर मारता था। ज्योति आज व्यग्रता से मौन थी। कैलाश की कठोरता आज गम्भीरता बनी हुई थी। किन्तु कामिनी को इस शोक के वातावरण में भी गाने की सूझी। वह गाने लगी।

वह गा रही थी और यान ऊपर उड़ रहा था। गाना भी जीवन में कितना स्वाभाविक है! संयोग में वियोग में, हँसने में रोने में, जीवन में मरण में, गुनगुनाना मनुष्य की प्रकृति है। जब वह हँसता हँसता पागल होने लगता है तो गीत फूटता है और जब वह रोते रोते जीवन में मृत्यु का अनुभव करता है तो कण्ठ से गीत बरस पड़ता है।

जब तक यान दीखता रहा तब तक गीत गूँजता रहा, और जब यान आँखों से ओझल हो गया तो गीत हृदय में बस गया।

हृदय में गीत, आँखों में आँसू, अधरों में बात और बुद्धि में तर्क लेकर मनुष्य को कर्म में लगना ही पड़ता है। प्रेरणा, ज्योति, प्रभात, कैलाश और कामिनी भावना के गीत हृदय में सुला फिर कर्त्तव्य मार्ग पर चल पड़े।

और उधर उड़ा जा रहा था यान मृतक को जीवित करने का विधान खोजने के लिये गगन की ऊँचाई की ओर। यान ऊपर उड़ रहा था, किन्तु विकास का हृदय नीचे की ओर खिंचा जाता था। प्रभात का गीत, कामिनी का कण्ठ और प्रेरणा का प्यार हृदय को झटके दे रहा था। विकास बार बार चमक कर चौंकता और बुद्धि बार बार उसे संभाल लेती। "यदि हृदय की भावुकता के साथ बुद्धि का सहारा न हो तो निश्चित ही पशु अधिकार के अन्धे मनुष्य पर राज्य करने लगते। वस्तुतः बुद्धि ही तो मनुष्य की पथप्रदर्शिनी है। लेकिन यह बुद्धि ही मनुष्य को

भटकाती भी है। बुद्धि के कहने पर जब मनुष्य हृदय के प्रतिकूल सत्य को छिपा असत्य को सत्य कहता है तब धिक्कारने वाला आत्मा क्या बुद्धि से परे कुछ है! मनुष्य को भूल अनुभव कराने वाली वस्तु क्या है ? मनुष्य भूल अनुभव करता है पर मानता नहीं। यह सत्य को अस्वीकार करने वाली झूठी बड़ाई क्या है ? हर बात में अच्छाई और बुराई का समन्वय है। सत्य वही है जो सिद्ध हो जाये। हार का नाम असत्य और जीत का नाम सत्य। शक्ति को सब सत्य कहने लगते हैं।"

विकास स्वयम् से बातें करता हुआ आकाश की ओर उड़ रहा था। पहाड़ों की ऊँचाई को लाँघ वह बादलों की बस्ती में आ पहुँचा। अपनी बस्ती में आये अतिथि को देखकर बादल घुमड़ घुमड़ कर घिर आये। स्वागत की उमंगें लिये मेघ अपरिचित अतिथियों के चारों ओर मँडराने लगे।

किन्तु जब मेघों ने यह देखा कि ये अतिथि नहीं अपितु साम्राज्यवादी भावना से हमारे घर में घुस कर हम पर राज्य करने आये हैं तो बादल क्रोध से गड़गड़ाहट करने लगे। उन्होंने इकट्ठे होकर एक साथ यान को धक्का दिया, बादलों के धक्के से यान पीछे को धिकलने लगा। यह देख वैज्ञानिक ने एक विचित्र गोला यान से बाहर फेंका। गोला बिखरते ही बादल फट फट कर दूर भागने लगे।

वैज्ञानिक की शक्ति से मेघ एक बार फट तो गये पर वे नष्ट नहीं हुए। वे शत्रु के सामने फिर आ डटे। बादल दल कितने ही दल बना यान को चारों ओर से घेरने लगे। लेकिन बादलों की शक्ति से वैज्ञानिक ने हार न मानी। उसका यान काले मेघों को चीरता हुआ ऊपर चढ़ने लगा।

बादल गड़गड़ाते रहे, रास्ता रोकते रहे और यान उनको हटाता हुआ ऊपर चढ़ता रहा। बादलों को चीरते हुए जब वैज्ञानिक मंज़िल पर

आगे बढ़े तो विकास ने मुस्करा कर कहा— "मनुष्य की शक्ति ने बादलों को जीत लिया। व्यर्थ ही मनुष्य अब तक ज़मीन पर पड़ा रेंगता रहा ! यदि हम इसी प्रकार ऊपर चढ़ते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब आकाश पर हमारा राज्य होगा।"

वैज्ञानिक— "मनुष्य की शक्ति से बड़ी कोई शक्ति है ही नहीं। किन्तु मनुष्य तो ईश्वर की कल्पना करके हार बैठा है।"

वैज्ञानिक यह कह ही रहे थे कि वायु की अल्हड़ जवानी मचलती हुई आई और यान को डगमगा दिया। यह देख विकास घबराता हुआ बोला— "वैज्ञानिक ! यान गिर जायेगा।"

वैज्ञानिक— "यदि दुर्बल विचारों ने आ घेरा तो यान गिर ही जायेगा। विश्वास के बिना विजय नहीं मिलती।"

"विश्वास के बिना विजय नहीं मिलती" विकास के कानों में ये शब्द प्रवेश कर मस्तिष्क का बल बन गये। वह तरल तरंगों का दृढ़ हिमालय बन गया। विकास विश्वास के यान पर भावना की वायु में प्रतिज्ञा सा ऊँचा उठने लगा। हवा से टकरा टकरा कर यान डगमगाता हुआ ऊपर की ओर उठा।

जैसे जैसे यान ऊपर उठा वैसे ही वैसे हवा में विचित्रता आने लगी। कभी गर्द मिली आँधी, कभी काली विभीषिका, और कभी शीत की अतुलता ने विकास की गति में कँपकँपी ला दी। पाले की भयंकरता से यान के यन्त्र जड़ होने लगे। विकास ने देखा कि वैज्ञानिक के माथे पर कुछ परेशानी है। उसने साहस से कहा— "क्या बात है वैज्ञानिक !"

सहारे के शब्दों में डूबते को बचाने का बल होता है। वैज्ञानिक ने साहस से विश्वास की शक्ति पर कहा— "कुछ नहीं, पाले के प्रकोप से यन्त्र ज़रा जड़ होने लगे हैं, मैं अभी सब ठीक किये लेता हूँ।"

वैज्ञानिक ने बहुत कोशिश की, लेकिन यन्त्रों में जीवन न आया। अपनी शक्ति असफल देख वैज्ञानिक घबरा उठा। उसने सोचा कि अन्त निश्चित है। उसने यह सोचा अवश्य, लेकिन भयभीत नहीं हुआ। साहस से उसने कहा— "विकास! हम दस पन्द्रह मिनट और उड़ सकेंगे। उसके बाद निश्चित ही यह यान गिरेगा और पृथ्वी पर पहुँचने से पहिले ही यान का कण कण पिस कर हवा से भी बारीक बन जायेगा।"

यह सुनते ही विकास हिल गया। उसने मृत्यु सामने देख हार कर कहा— "अब ऊपर मत उड़ो, धीरे धीरे नीचे की तरफ उतरो, शायद किनारा मिल जाये।"

वैज्ञानिक— "जब तक एक पल भी उड़ने की गुंजाइश रहेगी, उड़ता रहूँगा। यदि मैं उड़ता उड़ता गिर पड़ा और रहस्य न खुला तो कोई दूसरा मनुष्य उड़ेगा और कोई दिन होगा जब मनुष्य की विजय पताका गगन की चोटी पर लहराती होगी।"

वैज्ञानिक का विश्वास देख विकास में वीरत्व हुँकारने लगा। उसने मस्तिष्क को सावधान करते हुए कहा— "जब मरना ही है तो मौत से लड़ कर मरेंगे।"

मौत से लड़ने के लिये वैज्ञानिक ने पूरी शक्ति से यान छोड़ दिया। यान एक झटके के साथ ऊपर उठा। यान ऊपर उठा कि हवा में उष्णता आने लगी। जैसे जैसे गर्मी बढ़ती गई वैसे ही वैसे यन्त्रों की जड़ता छूटने लगी। पर जैसे ही जैसे ये और ऊपर उठने लगे वैसे ही वैसे गर्मी की लपटें इन्हें झुलसाने लगीं। ये ऊपर उड़े कि गर्मी का स्थान आग के शोलों ने ले लिया।

चारों ओर आग देख वैज्ञानिक से विकास ने कहा— "इस आग को पार करना असम्भव दीखता है।"

वैज्ञानिक— "असम्भव समझ कर हार मानना वैज्ञानिक ने नहीं सीखा। वह मनुष्य ही क्या जो आग में घुस कर निकल न जाये।"

बुद्धि के बल से वैज्ञानिक आग में घुस आग को पार कर गया। आग पार करने के बाद विकास और वैज्ञानिक ऐसे विस्तार में आ गये जहाँ केवल शून्य ही शून्य था।

खोज की चाह में वैज्ञानिक और विकास विस्तृत शून्य में कई कोस ऊँचे उड़ गये। वे जितने ऊँचे उड़ते शून्य उससे कई गुना ऊँचा और दिखाई देने लगता। उड़ते उड़ते वैज्ञानिक के हाथ पैर थक गये, लेकिन बुद्धि नहीं थकी। विकास के हृदय में चाह और भावना में विश्वास था, लेकिन कामिनी का गीत और प्रेरणा की सौम्यता उसे पुकार रही थी। उसने विस्तार में वातचक्र पर चक्कर काटते हुए साथी वैज्ञानिक से कहा— "शून्य के ओर का ही अभी तक पता नहीं, छोर तक कैसे पहुँचेंगे? अभी तक पता नहीं तारों का देश कहाँ है? चाँद और सूर्य किस लोक में रहते हैं? प्राणी मर कर कहाँ आते हैं! स्वर्ग और नर्क किधर हैं? जान पड़ता है इन सबका निवास मृत्युलोक में ही है। इस शून्य में तो निराकार शक्तियों का निवास हो सकता है, साकार सौन्दर्य यहाँ नहीं जान पड़ता। मरने वालों की शक्लें यहाँ कहीं दिखाई नहीं देतीं। नृत्य की झनकार और संगीत का स्वर यहाँ कहाँ है? दुःख और सुख में मन की सुनने वाला यहाँ कोई नहीं। यहाँ वह ईश्वर कहाँ है जो न्याय करता है? कहाँ है उस कल्पना की पूर्ति जिसे साकार करने के लिये मनुष्य तप करता है? चलो इस शून्य से अपने उसी लोक में चलें जहाँ रहकर मनुष्य अपना स्वर्ग खोज सकता है।"

वैज्ञानिक— "तुम्हारा विश्वास दुर्बल है विकास! इसलिये तुमने हार मान ली। मैंने भूल की जो तुम्हें साथ लिया। अपनी बुद्धि के अतिरिक्त किसी का साथ साथ नहीं होता।"

विकास— "भूल करना तो मनुष्य का धर्म है वैज्ञानिक !"

वैज्ञानिक— "जब तुमने यह मान लिया तो तुम पाप से डरने लगे, तुम में ईश्वर का भय आने लगा। मनुष्य में जब पाप आता है तो उसमें ईश्वर का भय आने लगता है।"

विकास— "तो तुम किसी से नहीं डरते वैज्ञानिक!"

वैज्ञानिक— "डरता हूँ, केवल अपनी दुर्बलताओं से। जो दुर्बलता के दासत्व में रहता है वही ईश्वर की कल्पना करके काँपता है। माला जपने का नाम ही तपस्या नहीं, मुझे देखो अनुसंधान करते करते बाल सफेद हो गये, क्या इस साधना को तपस्या नहीं कहते। मेरी भी इच्छाएँ हो सकती थीं, लेकिन मेरा हर दिन और हर रात मनुष्य की विजय के लिये लगा रहा। चलो, छोड़ो इस चर्चा को। चलो तुम्हें तुम्हारी पृथ्वी पर छोड़ आऊँ और मैं फिर अपनी बुद्धि से मृतक की ज़िन्दगी खोजूँगा।"

विकास— "आकाश में उड़ते उड़ते मैं थक गया। तुम खोजो और खूब खोजो, लेकिन पृथ्वी पर रहकर, आकाश में उड़कर नहीं। चलो, धरती की ओर चलें!"

धीरे धीरे यान धरती की ओर उतरने लगा। आकाश का विश्वास धरातल की ओर चल पड़ा। विकास वैज्ञानिक की बुद्धि के चमत्कारों की विवेचना करता हुआ सोच रहा था— "मनुष्य को कहीं भी सन्तोष नहीं। विकास की इति भी कहीं नहीं दीखती। तभी तो एक अनन्त शक्ति को असीमित कहते हैं। लेकिन जब वैज्ञानिक हवा में रास्ता बना सकता है तो क्या किसी दिन सारा रहस्य नहीं खोल सकता। पर खोले कैसे, मृत्यु जो नहीं खोलने देती।"

रहस्य में डूबते हुए विकास ने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर ज़मीन की तरफ। शून्य में उसे सुन्दर स्वप्न दिखाई दिया और पृथ्वी

पर प्रत्यक्ष आकर्षण। उसने वैज्ञानिक को सम्बोधन करते हुए कहा— "सब जिसे स्वप्न कहते हैं वही तो सत्य है। धरती के प्रत्यक्ष सौन्दर्य को छोड़कर जो जंगल में सत्य ढूँढने जाते हैं वे देवता भले ही कहलायें पर सत्य के सौन्दर्य से कोसों दूर रहते हैं। पाप की ज्वाला में तपा हुआ मनुष्य जब सच्चा सोना बनकर दमके तभी सत्य का आनन्द है। जब तक मनुष्य पर पाप के पहाड़ टूट टूट कर दुःखों की दुर्धर आग में मनुष्य को खड़ा न कर दें तब तक उसे सत्य से प्रेम नहीं होता। संसार ने सत्य को स्वप्न बना रक्खा है और स्वप्न को सत्य। जिससे सुख मिले वही सत्य है, और इस सत्य का मूल्य है दुःख।"

वैज्ञानिक— "तुम तो कविता में बातें करने लगे। विकास बाबू! जान पड़ता है प्रभात के प्रभाव ने तुम्हें भी कवि बना दिया।"

विकास— "कवि इस सृष्टि का सौन्दर्य है वैज्ञानिक! वह पाप का सौन्दर्य है, आदर्श का कठोर प्रचार नहीं। समाज के सत्यवादी हरिश्चन्द्र उसे पापी कहते हैं, इसलिये कि समाज उसे पाप करने पर विवश करता रहा। जिसके जीवन की हर मुस्कान अधरों तक आने से पहिले ही मर जाती हो, क्या ज़िन्दा रहने के लिये उसका किसी की मुस्कान देखना पाप है?"

वैज्ञानिक— "दुःख का नाम पाप और सुख का नाम पुण्य है। सुख का स्वप्न ही तो मनुष्य को दुःख देता है। मैं सुख और दुःख को समान समझता हूँ पर न जाने क्यों दुःख अब मेरे हृदय को भी गुदगुदाने लगा है। जिस दिन से कामिनी के कण्ठ से कवि का गीत सुना है, उस दिन से कभी कभी मेरा हृदय वही गीत गुनगुनाने लगता है। वह एक झलक मेरी दुर्बलता बन गई है विकास! लेकिन मैं अपनी दुर्बलता का दमन किये हुए हूँ, यही मेरी जीत है।"

विकास— "न जाने कौन जीत का अहंकार उठने नहीं देता।"

वैज्ञानिक— "मेरे सर की तरफ देखो, अंधेरी के बाद उजाली आ गई ! लेकिन चाह अभी तक प्रथम सीढ़ी पर ही है। मुझे डर लग रहा है कि कहीं मेरी उम्मीद पूरी होने से पहिले ही मृत्यु मेरे पर न नोच दे। मैं मरणसंजीवनी ढूँढने चला था, पर अभी तक नहीं मिली।"

विकास— "मनुष्य मर्त्यलोक में मरता है, उसको ज़िन्दा करने की औषधि भी वहीं होगी।"

"तो लो मर्त्यलोक में भी आ गये।" यान को विद्यालय के पास मैदान में उतारते हुए वैज्ञानिक ने कहा।

विद्यालय में पहुँचते ही विकास ने देखा कि शान्त वातावरण में उदासी छाई हुई है। विकास की सारी महत्त्वाकांक्षायें सन्नाटे में आ गईं। किसी को इधर उधर न देख वह अपने कमरे की ओर लपका, दूर ही से अपने कमरे के पास भीड़ देखकर विकास अनिष्ट की कल्पना से काँप उठा।

पास पहुँचते ही उसने देखा कि ज्योति मूर्च्छित पड़ी है, और सभी उसके निकट निराश से खड़े हैं।

विकास को देखते ही कामिनी ने कहा— "तुम आ गये विकास! ले आये संजीवनी, ज्योति का बोल तुम्हें याद करते करते बन्द हुआ है। ज्योति बुझना चाहती है, प्रज्वलित कर दो इसे अपनी शक्ति से। नहीं तो विद्यालय के जीवन में अँधेरा हो जायेगा।"

मूर्च्छित पड़ी ज्योति के सामने सबकी आँखें गीली देख विकास फूट पड़ा। उसने रोते हुए कहा— "ज्योति! यह क्या कर रही हो? क्या एक एक करके सभी मेरा साथ छोड़ देंगे?"

विकास की आवाज़ सुनते ही ज्योति में कुछ चेतना आ गई। उसने आँखें खोलीं और धुँधली भाषा में कहा— "तुम आ गये विकास!

Nirash

अच्छा हुआ मरने से पहिले अन्त समय तुम्हें देख लिया। तुमसे दो बातें कहने के लिये ही शायद मैं अब तक ज़िन्दा थी।"

विकास— "ऐसा न कहो ज्योति! तुम अच्छी हो जाओगी।"

विकास की बात सुनकर ज्योति निराशा से मुस्कराई। ढलती हुई धूप सी उस हिमांचला ने कहा— "मुझे निराशा से प्यार है विकास बाबू! आशा ही मनुष्य के दुःख का कारण है। मुझे याद नहीं, शायद ही ज़िन्दगी में कोई ऐसा दिन आया हो जब इन ओठों पर अकृत्रिम मुस्कान आई हो। बहुत बार हँसी को देखकर मन में हँसना चाहा लेकिन तड़प कर भावना को हृदय ही में दफ़ना दिया। ईश्वर की निर्ममता को वरदान समझकर दुनिया में ज़िन्दा रही। ज़िन्दा रहने के लिये साहस से काम लिया। मन बहलाने के लिये समय को घेरे रही।

"अब अन्त समय मैं अपने जीवन से सीखी हुई लम्बी कहानी कुछ शब्दों में कहती हूँ, मैं कभी किसी के हाथ का खिलौना नहीं बनी। समाज ने मुझसे खेलना चाहा, मेरी इच्छाओं ने मुझे खिलाना चाहा, लेकिन मैं तमाशा नहीं बनी। पर अब मरते समय मुझे मोह ने आ घेरा है। विद्यालय में काम करते करते मुझे इससे मोह हो गया। इसे छोड़कर जाते हुए मुझे दुःख होता है। और इसलिये और भी कि यहाँ मेरे ऐसे भाई भी हैं जो आँसुओं की बाढ़ में ज़िन्दगी काट रहे हैं, जो श्वास श्वास में रोते हैं। मेरे बाद तुम उनके आँसू पूछना, उन से कहना कि रोने से जीवन भार हो जाता है। उनको समझाना उनकी भूलों पर दुनिया की तरह उनको सताना मत। भूल मनुष्य से होती है, पाप मनुष्य करता है, लेकिन पाप और भूल को पहिचाने बिना फाँसी देने वाले भी इसी दुनिया में हैं। इसी दुनिया में वे निर्दोष दोषी भी हैं जो हर पग पर नया पाप कर बैठते हैं, क्योंकि समाज का न्याय वहाँ पाप चाहता है। मेरी इच्छा है कि किसी को बुरा कहकर दुतकारा न जाय। मेरे जाने के बाद प्रभात कहीं निराश्रित न हो जाये।"

प्रभात पत्थर की तरह मौन अब तक तो आँसुओं को पीता रहा, किन्तु अब उससे न रहा गया। वह फूट पड़ा। रोते हुए उसने कहा— "तुम शान्ति से सोओ ज्योति! तुमने तप तप कर मुझे सुख दिया है ज्योति! अब तक तुम जल जल कर प्रकाश देती रहीं, अब तुम्हारी स्मृति के दीप जला जला कर उनसे प्रकाश लूँगा।"

ज्योति— "यह क्या, आप सब रोने लगे! आप रोयेंगे तो मुझे मरने में कष्ट होगा। मेरी एक और इच्छा है और वह यह कि आप सब मेरे मरते ही मुझे भूल जायें। अच्छा कामिनी! अब तुम वह गीत गाओ 'इस धरा पर क्या धरा आँसू बहाने में'।"

आँसू पूछ कामिनी ने गाना शुरू किया। प्रभात ज्योति के पैरों की तरफ खड़े हो शान्त सौन्दर्य की आराधना करने लगे। विकास ने देवी के माथे पर हाथ रक्खा, कैलाश गम्भीर मुद्रा में शोक सँभाले रहे और विद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी मन ही मन में रोता हुआ कह रहा था, "माँ, तुम्हारे बिना हम फिर अनाथ हो जायेंगे।"

प्रेरणा ने गंगाजल चम्मच में भर ज्योति के मुँह में डालने को हाथ बढ़ाया, पर ज्योति ने प्रेरणा से चम्मच ले अपने हाथ से जल मुँह में डाल लिया और कहा— "हाथ अपना ही काम आता है।"

इतना कहते ही ज्योति बुझ गई और गीत गूँजता रहा।

६

"करुणा हृदय के किसी कोने में लीन हो गई। शकुन स्मृति के पृष्ठों पर आयु सी बीतती जा रही है। सचमुच प्रीति की आयु भी कुछ नहीं। मनुष्य कितनी जल्दी भूल जाता है। झनकार कितनी जल्दी टूट जाती है। तो क्या वास्तव में मनुष्य भूल जाता है, या घावों को विवशता की ज़िन्दगी में छिपा लेता है। मनुष्य भूलना चाहे तो भी नहीं भूल सकता। नयी स्मृति पुरानी भूल को ताजा कर देती है। ज्योति की मृत्यु ने आज फिर सारे घाव हरे कर दिये।" प्रातः पाँच बजे उदास घूमते हुए प्रभात ने स्वयम् से कहा और पूछा। शोक में गम्भीरता से निराशा के पृष्ठ पलटते हुए उसने जीवन की विवेचना की। अकेले में मानस मन्थन से मनुष्य बहुत कुछ पा जाता है। दुनिया में स्वयम् में ढूँढने से ही कुछ मिलता है।

ढूँढते हुए प्रभात से उसकी निराशा ने कहा— "व्यर्थ है कविता भी, और व्यर्थ है विद्यालय। चलो सन्यास ले लो!"

मनुष्य के लिये सोचना कितना सरल होता है। वह सोचता पीछे है और सफलता पहिले मान बैठता है। लेकिन सफलता समय की परिधि में नहीं होती।

सोचते ही प्रभात सफलता को पकड़ने दौड़ पड़े। उन्हें दौड़ता देख विकास ने आगा रोक कर कहा— "कहाँ जा रहे हो प्रभात !"

प्रभात— "सन्यासी बनने।"

विकास— "आश्चर्य है कि एक सन्यासी कह रहा है सन्यासी बनने जा रहा हूँ !"

प्रभात— "मुझे सन्यासी कह कर सन्यस्त का अपमान मत करो विकास! भोगी कभी योगी नहीं हो सकता।"

विकास— "अँधेरे के बिना उजाले का महत्त्व नहीं होता। और वह उजाला किस काम का जिससे अँधेरे को प्रकाश न मिले। प्रकाशमान सूर्य है जिससे अँधेरा उजाले में बदल जाता है। वह ज्योतिर्मय भीरु बनकर अँधेरे से दूर नहीं भागता। सन्यासी बनकर जंगल में तप करने से बड़ा तप सच्चाई से किसान बनकर श्रम करना है। और तुम तो जन्म से अब तक तप ही रहे हो प्रभात ! साहित्य साधना क्या तपस्या नहीं है ?"

प्रभात— "हर व्यक्ति अपने कर्म को बड़ा तप और हर मनुष्य अपने स्वभाव को पुण्य मानता है, लेकिन संसार क्या समझता है देखना तो यह है। इस साधना के कारण मैं पापी कहलाता हूँ। मेरी अतृप्ति की पिपासा से साहित्य के शब्द निकलते हैं। मेरी असीमित आकांक्षायें अतल में रूप को ढूँढती हैं। मेरा हर सत्य स्वप्न बनकर पाप बन जाता है। अब मैं कवि जीवन से ऊब गया हूँ।"

विकास— "भस्म रमाने से स्वर्ग नहीं मिलेगा प्रभात ! स्वर्ग तुम्हारी वाणी में छिपा हुआ है। रूप का भौंरा यदि ज़ख्मों का विष पीना शुरू

कर दे, तो ज़ख्म सूख सकते हैं। संसार के कल्याण के लिये दलितों का कण्ठ चाहिये। अब तक तुम रूप के उपासक रहे, अब कुरूप के उपासक बन जाओ!"

प्रभात— "रूप की उपासना के बिना कविता नहीं होती। और यह रूप होता है नारी के स्पन्दनों का, जहाँ दार्शनिक पण्डित नर्क का निवास कहते हैं। किन्तु मैंने नारी के सौन्दर्य में ही स्वर्ग के दर्शन किये हैं, पर मृत्यु की कठोरता उस स्वर्ग को भी डस लेती है, और मैं फिर स्वर्ग की खोज में भटकने लगता हूँ। इस तरह न जाने कितने स्वर्ग बनते और नष्ट होते रहते हैं, तथा मनुष्य प्यासे का प्यासा ही रह जाता है। आज मैं इस परिणाम पर पहुँच रहा हूँ कि प्यास केवल प्यास मारने से ही बुझ सकती है।"

विकास— "यदि प्यास न रहे तो संसार की गति रुक जाये।"

प्रभात— "संसार की चिन्ता का बहाना व्यर्थ है, अपनी चिन्ता करनी चाहिये। यदि मनुष्य स्वयम् प्रसन्न है तो उसके लिये दुनिया प्रसन्न होती है।"

विकास— "यदि सन्यास लेना ही है तो इतनी शीघ्रता क्यों करते हो, कल सब से मिलकर जाना। ऐसे चुपचाप बुद्ध की तरह इस बसाई हुई भारती पर अत्याचार करके भागना तो पाप होगा प्रभात!"

प्रभात— "हर पुण्य में पाप की गन्ध रहती है। हर भलाई में बुराई का अंश छिपा रहता है, तो क्या इसलिये भलाई की उपादेयता ही व्यर्थ है? मुझे जाने दो, और अगर मैं न गया तो मैं प्यार पर अत्याचार करने लगूँगा। मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैंने आज तक तुमसे कुछ नहीं छिपाया, लेकिन आज जो मेरे मन में है अगर उसे सुनोगे तो तुम मुझ से घृणा करने लगोगे। मैं नहीं चाहता कि तुम जैसे आदर्श पुरुष के हृदय में मेरे लिये स्थान न रहे।"

विकास— "क्या यह भी कभी हो सकता ? मैं तुम्हें अच्छी तरह समझता हूँ। मुझे तुमसे घृणा तो क्या नाराज़ी भी भूल से ही होती है।"

प्रभात— "संसार में क्या नहीं हो सकता! दुनिया में सब कुछ सम्भव है। तुम तो क्या मैंने अपने ऊपर भी अन्याय किया है, किन्तु वह अन्याय अँधेरे की गहराई में छिपा रहा।"

विकास— "क्या अन्याय किया है तुमने?"

प्रभात— "यह जान कर तुम मुझसे घृणा करने लगोगे। इस लिये हृदय के पापों में वह भी एक पाप काँप रहा है।"

विकास— "तो क्या तुम मुझसे भी कुछ छिपाते हो?"

प्रभात— "तुम से ही नहीं, जिसे मैं चीख चीख कर अपनी कहता था उससे भी मैंने कुछ छिपाया है। आज मैं जाने से पहले अपने पापों को कहने के लिये आकुल हो रहा हूँ। वचन दो विकास! सदैव की तरह इस बार मुझे क्षमा न करके दण्ड दोगे, तो मैं शान्ति से तपस्या के लिये जा सकूँगा।"

विकास— "कैसी बातें करते हो प्रभात! तुम कहो।"

प्रभात— "तो सुनो, मैं प्रेरणा को पत्नी बनाना चाहता रहा हूँ। और एक दिन जब वह अकेले में सो रही थी तो मैंने अपने पाप के अधर उसके सुगन्धित श्वासों की ओर दौड़ाये थे! और मेरी यह भावना अभी मर नहीं गई, अधिक जवान होती जा रही है।"

विकास— "प्रभात! यह तुमने क्या किया? तुमने मेरे ही विश्वास पर चाकू चला डाला। जिसने तुम्हारी हर खुशी के पीछे सारे संसार को बुरा कहा, तुमसे उसकी एक खुशी भी सहन न हो सकी। तुमने उसकी ज़िन्दगी पर डाका डाला, जिसकी ज़िन्दगी अपने लिये न रह कर औरों

के लिये थी। क्या तुम नहीं जानते थे कि मेरी ज़िन्दगी में मेरे लिये केवल प्रेरणा ही एक प्रसन्नता है। तुम भोगते भोगते भक्त बन गये प्रभात!"

प्रभात विकास के पैरों पर गिर पड़ा, उसके आँसुओं से विकास के पैर भीग गये।

"तुम्हारे पाप के आँसुओं से मेरे हृदय में लगी हुई आग नहीं बुझ सकती।" कहता हुआ विकास प्रभात को ठुकरा कर चल दिया। प्रभात ने जाते हुए विकास को हाथ जोड़कर प्रणाम किया, और फिर गंगा की रेतीली भूमि पर किनारे किनारे हो लिया।

प्रभात अपनी धुन में चला जा रहा था। वह अपने पापों को कह कर आज कुछ शान्त था। आज वह परम शान्ति के लिये दौड़ा जा रहा है।

वह अपनी धुन में दौड़ा चला जा रहा था कि दाहिनी ओर से अपनी धुन में दौड़ी आती हुई एक अत्यन्त सुन्दर युवती प्रभात से टकराई।

प्रभात उस चमत्कार से चौंधिया गया। पर उसने स्वयम् को संभाल कर दृढ़ता से कहा— "तुम कौन अप्सरा हो जो मेरा मार्ग रोकना चाहती हो?"

यह सुनते ही सुन्दरी का मुँह आँसुओं से भीग गया। उसने रोते हुए कहा— "मैं अप्सरा नहीं, सौन्दर्य की अभागी एक पापिन हूँ। मैंने तुम्हारा रास्ता नहीं रोका, तुमने मेरा रास्ता रोका है। छोड़ो मेरा रास्ता, मैं गंगा माँ की गोद में जा रही हूँ।"

प्रभात समझ गया कि सुन्दरी आत्महत्या करना चाहती है। उसने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा— "मैं सन्यासी हूँ, तुम्हारी सहायता करूँगा। घबराओ मत। मुझे अपना भेद बताओ।"

सुन्दरी— "इस संसार में कोई सन्यासी नहीं, सब ढोंग है। मुझे जो मिला वह सन्यासी ही! सन्यासी बनकर न जाने कौन कौन मेरा सौन्दर्य विकृत करने आये, और अन्त में एक सन्यासी ने मेरा सौन्दर्य विकृत कर ही डाला। पहले तो भोली भोली बातें बनाकर उसने मुझे पत्नी के रूप में रक्खा, और जब मैं गर्भवती हो गई तो संसार के डर से मुझे छोड़ भागा।

"आज भी वह संसार के सामने सन्यासी है, और मैं पापिन! मेरे सामने मौत के अतिरिक्त अब कोई रास्ता नहीं, मैं मरने जा रही हूँ।"

प्रभात— "तुम्हारे माता पिता भाई आदि हैं?"

सुन्दरी— "विधवा के कौन होता है! हैं सब, लेकिन मेरा मेरी फूटी तक़दीर के अतिरिक्त और कोई नहीं।"

प्रभात— "ईश्वर सबके साथ रहता है?"

सुन्दरी— "रहता होगा, लेकिन मेरे लिये तो आज वह भी मर गया।"

प्रभात के बढ़ते हुए पैरों में जैसे किसी ने ज़ञ्जीरें डाल दीं। वह सोचने लगा— "मेरा धर्म इसकी सहायता करना है या तप करना। मैं इसे मौत के मुँह से बचाऊँ या तप करूँ। लेकिन मैं कैसे इसकी सहायता कर सकूँगा। संसार में बदनाम जो हुआ! पर कुछ भी हो, तुझे इसकी मदद करनी ही चाहिये, अपनी आपत्ति में तो तूने सैकड़ों समुद्र छाने, अब इसकी आपत्ति में भी तो एक समुद्र में कूद! सुन्दरी! डरो मत, मैं तुम्हारी मदद करूँगा। मैं कहूँगा कि यह मेरा पाप है।"

सुन्दरी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके मलिन मुख पर आशा की धुँधली चाँदनी छिटक उठी। पर दूसरे क्षण दुनिया का ध्यान आते ही वह फिर काँप उठी। उसने भयाकुल दशा में कहा— "जब आप के

देवत्व पर आँच आयेगी तो आप मरण से बदतर हो जायेंगे। वह ऐसा समय होगा जब हम पापी सम्बोधन से पुकारे जायेंगे। मुझे उस कल्पना से थरथरी चढ़ती है।"

प्रभात— "देवत्व पर आँच की तो मुझे चिन्ता नहीं। चिन्ता है तो केवल इस बात की कि एक बदनाम तुम्हारी कुछ मदद कर भी सकता है या नहीं। खैर कुछ भी हो, मैं एक और बदनामी सर पर लूँगा।"

चिन्ता में चिड़चिड़ी सुन्दरी को रास्ता दिखाई देने लगा। उसने कृतज्ञता की दृष्टि से देखते हुए कहा— "मैं भूलती थी कि ईश्वर मर गया, इंसानों में ही वह कभी कभी दिखाई दे जाता है।"

प्रभात ने कह तो दिया पर अब क्या करे इस सोच में वह कितनी ही देर तक मौन खड़ा रहा। खड़ा खड़ा जब वह थक गया तो उसके मुँह से निकला— "ईश्वर! मुझे शक्ति दे कि मैं इसकी सहायता कर सकूँ।"

मनुष्य जिधर को चलता है वही एक रास्ता बन जाता है, किन्तु लक्ष्य भी उधर ही है या नहीं यह कौन जाने। प्रभात सुन्दरी को साथ ले एक सन्यासिनी की कोठी पर पहुँचा। उसने निर्भय होकर सुन्दरी की स्थिति उससे कह दी। सुनते ही वह लाल हो उठी। उसने गर्ज कर कहा— "हमारे घर से जाओ! हमारी पैतालीस साल की उम्र हो गई हम अब तक ब्रह्मचारिणी हैं।"

प्रभात को बहुत बुरा लगा, पर दूसरे के घर उम्मीद लेकर जाने, वाले की कान्ति क्षीण हो जाती है। फिर भी प्रभात कहे बिना न चूका— "आप देवता हैं, तभी तो आप एक दुखी को आश्रय नहीं देतीं।"

और इतने ही में प्रभात ने देखा कि कार में एक प्रौढ़ व्यक्ति वहाँ

आये। प्रभात की शंका और आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि ये प्रौढ़ व्यक्ति देवसुमन ब्रह्मचारी हैं।

प्रभात सुन्दरी के साथ तुरन्त कोठी के बाहर की तरफ चल पड़ा। अपने अपमान की चोट से वह मरा जा रहा था। मनुष्य जब घोर आपत्ति में होता है तो प्रकृति बोल उठती है। पीछे से कुत्ता भौंका, प्रभात ने पीछे फिर कर देखा। ब्रह्मचारी सन्यासिनी का हाथ चूम रहा था।

प्रभात ने स्वयम् से कहा— "इस दुनिया में पापी किस तरह दूसरे को पापी कहता है। सचमुच यहाँ सच बोलना ही पाप है।

"अब मैं क्या करूँ? कहाँ रक्खूँ इसे? जिसको भेद की बात बताओ वही शत्रु बन जाता है। जिससे सच बोलो वही घृणा करने लगता है। दुनिया में किस तरह पाप करने के लिये विवश होना पड़ता है। जिसके पास सहायता को जाओ वही दर्वाज़ा बन्द कर लेता है। जिससे बातें करो, वही अर्थ के बिना बात नहीं करता। कितना कठिन है संसार में जीवन! और फिर असहाय नारी का तो और भी भयंकर!"

इसी तरह सोचते हुए प्रभात सुन्दरी के साथ रात दिन खाक़ छानते फिरे, पर कहीं ठिकाना न मिला। हार कर वे सुन्दरी की तरफ निराशा से देखने लगे! सुन्दरी को लगा कि मैं प्रभात पर भारी बोझ बन गई हूँ। वह लाचारी और थकावट से बोली— "मुझे जाने दीजिये, मैं आप अपनी स्थिति सँभाल लूँगी। मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो!"

प्रभात— "छोड़ तो दूँ, पर मनुष्यता मुझसे बार बार कहती है कि तू इसका साथ न छोड़, लेकिन साथ ही दुनिया की क्रूर दृष्टि मुझे घूर घूर कर खाने को दौड़ रही है। मैं सोचता हूँ कि जब तू पुरुष होकर बार बार काँप रहा है तब फिर यह स्त्री होकर दुनिया के महात्माओं से कैसे लड़ सकेगी!"

सुन्दरी— "मैं लड़ न सकूँ पर मर तो सकती हूँ।"

प्रभात— "इस तरह मरना धर्म नहीं।"

सुन्दरी— "और इस तरह जीने को ही कौन धर्म कहता है! हरेक की आँखों में पापी बन कर चुभनेवाली विधवा का मर जाना ही अच्छा है।"

प्रभात गम्भीर उलझन में पड़ गये, अब क्या करूँ? उनके हृदय ने बलपूर्वक कहा— 'कह कि यह मेरी पत्नी है। पर एक बदनाम क्या किसी को पत्नी बना कर भी रख सकता है। मैं दुनिया से लड़ता लड़ता थक गया, अब मुझमें संघर्ष की शक्ति नहीं। पागल! जीवन का कोई क्षण संघर्ष से शून्य नहीं होता। मैं एक और उलझन में उलझूँगा!'

"देवि! मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम मेरी पत्नी। अब तो तुम पापिन नहीं कही जा सकतीं।"

सुन्दरी— "संसार से यह भी सहन नहीं होगा। मेरे लिये आप अपने जीवन को संकट में क्यों डालते हैं?"

प्रभात— "इस आग में भी मेरी आत्मा की शान्ति छिपी हुई है। एक तूफान के बाद मुझे स्वर्ग दिखाई दे रहा है। मैं तो जीवन भर आग से खेलता रहा हूँ, इस बार और खेलने दो!"

सुन्दरी मौन हो निस्तब्धता का साम्राज्य ले भावनाओं में छा गई। थका हुआ यात्री हृदय और मस्तिष्क की उलझन सुलझाता सुलझाता तनिक सो गया। लेकिन सुन्दरी की आँखों में नींद न थी। वह एक भयंकर तूफान में घूम रही थी— "यह मनुष्य है या देवता! इस से पहले जो भी मिला वही भक्षक! लेकिन इस की आँखों में सूखे हुए आँसू हैं, हृदय में पुण्य और बुद्धि में मनुष्यता। कितना सौन्दर्य है इसकी भावनाओं में! न जाने क्यों मेरे हृदय में इसके प्रति अनुराग उमड़ा आ

रहा है। विधवा होने के बाद पहली बार मैंने आज मनुष्य के दर्शन किये। जी चाहता है संसार का सारा सुख इनके चरणों में न्यौछावर कर दूँ। पर मैं एक पापिन हूँ, सुख कैसे दे सकूँगी इन्हें। मैं तो इनको दुःखों की आग में घसीट कर लिये जा रही हूँ। ऐसी महान् आत्मा पर मुझे ऐसा स्वार्थी उपकार नहीं करना चाहिये। मेरे लिये इस देवता के मार्ग से हटना ही उचित है, हटना ही उचित है।

"क्षमा करना देव! मैंने तुम्हें शान्ति के पथ से भटका दिया। मैंने तुम्हारे पैरों में पाप की ज़ंजीरें डाल दीं। जो पैर हमेशा हृदय में रहने योग्य हैं उन्हें कांटों में कैसे चलने दूँ?

"अच्छा देव! प्रणाम!" कहती हुई सुन्दरी ने प्रभात के चरण छुए, और दौड़ कर धड़ाम से गंगा में कूद पड़ी!

धड़ाम से गिरने की आवाज़ सुनते ही प्रभात चौंक कर खड़े हुए एवं "देवी!" कहते हुए गंगा की तरफ दौड़े।

सुन्दरी दो बार गंगा में नीचे जाकर तीसरी बार लहरों पर ऊपर आई। सुन्दरी को देखते ही 'देवी!' कहता हुआ प्रभात वेग से बहती हुई गंगा में कूदा और थोड़ी देर बाद मूर्च्छित सुन्दरी को निकाल बाहर आया।

प्रभात ने घण्टों यत्न किये, पानी निकाला, पर सुन्दरी का स्वप्न नहीं छूटा। वह ज़ोर ज़ोर से श्वास लेने लगी। प्रभात ने उसके माथे पर हाथ रखते हुए कहा— "एक बार तो बोलो देवि!"

मूर्च्छित सुन्दरी के अधरों पर हल्की सी मुस्कान आई और फिर मुस्कान सदा के लिये छिप गई।

प्रभात की निराशा छटपटा उठी। वह मौन गम्भीरता में आप ही आप कहने लगा— "सहानुभूति के हाथों में भी विष होता है। देवि!

मुझे दुःख है कि तुम्हें इस मृत्यु से न बचा सका। इसमें मेरी कर्मनिष्ठा का दोष नहीं, दोष उसका है जिसे भाग्य कहकर पुकारते हैं। मैं जो चाहता हूँ वही नहीं होता। अच्छा तो फिर जो कुछ होता है वह होता रहे, मुझे जो अच्छा लगे वह करता रहूँ।

"तो क्या मैं तपस्या करने जाऊँ? क्या तपस्या से कल्याण हो सकेगा? यह तपस्या तो मेरे लिये पाप होगी। इस तपस्या का अर्थ होगा संसार से भागना। भागने वाले भीरु होते हैं। मुझे भागना नहीं चाहिये। मेरा धर्म है साहित्य सृजन। मैं अपना धर्म छोड़कर अपने ऊपर पाप करूँगा। मेरा धर्म ही मेरा सत्य है। प्रत्येक का धर्म ही उसका अपना सत्य होता है। जो जो लगन से कह रहा है वही उसकी तपस्या है। मेरी लगन कलम है। कलम ही मेरी सहचरी है, कलम ही मेरी साधना है, और कलम ही कवि का सत्य है। मुझे लिखते रहना चाहिये। मेरी अमरता और मेरी शान्ति इसी में है।"

प्रभात फिर उधर ही लौट चला जिधर से भटक कर तपस्या करने चला था। वह फिर उसी ओर चल पड़ा जिस तरफ से पाप की आवाज़ आ रही थी। मनुष्य दुनिया से भाग कर जाना चाहता है, पर दुनिया से भाग कर कहाँ जाय, हर जगह दुनिया है।

प्रभात लौट कर फिर अपनी दुनिया में आ गये। वे लौट कर सब से पहले विकास के कमरे में पहुँचे। विकास कुछ उदास से गम्भीर मुद्रा में पलँग पर लेट रहे थे। प्रभात को देखते ही वे उठकर खड़े हो गये और एकटक देखने लगे।

उनके देखने में करुणा थी, प्यार था, और किसी भूल का पश्चाताप बोल रहा था।

प्रभात लज्जा से ज़मीन की ओर निहार रहा था। वह मौन था, उसके मौन में क्षमा के लिये फैला हुआ हाथ नहीं, प्रेम था।

और उधर विकास के नेत्रों में इस बात का दुःख था कि मैंने प्रभात के हृदय पर पत्थर क्यों मारा। कहने को तो गुस्से में मनुष्य कुछ भी कह डालता है, पर फिर वह बहुत पछताता है। विकास को अपने गुस्से पर ग्लानि हो रही थी— "मैंने यह क्या किया! प्रभात के सत्य बोलने पर मैं उससे नाराज़ हुआ। जिसे मैंने अपना भाई बनाया था उसे दुतकार बैठा। मैं उसे प्रसन्न करना चाहता था लेकिन जब अपनी प्रसन्नता की बलि देने की बात आई तो बात तक न सुन सका। प्रेम तो वही है जो अपनी खुशी भी न्यौछावर कर दे।"

विकास का प्रेम अधीर हो उठा। उसने दौड़ कर प्रभात को हृदय से लगा लिया। प्रेम और क्रोध अपनों पर ही होता है। वह प्रेम ही क्या जिसमें क्रोध दुःख न बन जाये।

अपनों की भूल मनुष्य भूल जाता है। लेकिन अपनी भूल भूलने से वह अपने आप पर अविश्वासी होकर तड़पता है। यह जानते हुए भी मनुष्य भूल को याद रखता है और बार बार वही भूल करता है। जब वह भूल करता है तब सोचता है, 'बड़ा पाप हो गया। अब ऐसा पाप कभी नहीं करूँगा।'

"प्रभात! अब मैं तुम पर कभी नाराज़ नहीं होऊँगा। अब तो तुम भूल जाओ!" विकास ने व्याकुलता से कहा।

प्रभात— "भूल आप से क्या कभी होती है? भूल पर पछताना मैं भूल चुका हूँ। भूल मनुष्य से होती ही है। आप महान हैं जो एक बार की हुई भूल दुबारा नहीं करते किन्तु मैं एक भूल को बार बार करता हूँ। भूल करता करता मैं भूल भूल चुका हूँ और सत्य ही मेरे सामने रह गया है, तथा वह है प्रेम। ऐसा प्रेम जिसमें अतृप्ति गूँजती रहती है। और यह प्रेम ही मेरा काव्य है। यह प्रेम ही सौन्दर्य का हेतु है। यह प्रेम ही

संसृति की उपादेयता है। पाप और पुण्य की संकीर्ण गली से निकल मैंने अब साहित्य-सृजन ही अपना धर्म मान लिया है। मेरा सत्य मेरा साहित्य है। मेरा दुःख सुनने वाली मेरी कलम है। हृदय-तुला पर तोल कर काग़ज़ों पर सौन्दर्य की तोल रखना मैंने क़लम का ध्येय बना लिया है। पाप पर पश्चाताप करना न तो मेरा कर्त्तव्य है और न पुण्य पर प्रसन्न होना मेरा धर्म। लिखना मेरी आदत है। साहित्य-साधना मेरी ज़िन्दगी है। कोई मुझ से घृणा करे, ठुकराये, दुलराये, मुझे बिल्कुल चिन्ता नहीं। बता दो मुझे वह कुटिया जिस में बैठकर केवल लिखता रहूँ।"

विकास— "आज तुमने मुझे और भी जीत लिया, तुम जहाँ चाहो वहाँ बैठ कर लिखो, सारी पृथ्वी तुम्हारे लिये कुटिया है।"

प्रभात— "मुझे एकान्त चाहिये।"

विकास— "मन जहाँ एकाकी हो वहीं एकान्त होता है प्रभात! लिखो और इतना लिखो कि विकास चरम पर पहुँच जाये, यह धरती मुस्करा उठे।"

प्रभात लिखने के लिये कुटिया की ओर चल पड़े और विकास प्रेरणा के पास पहुँचे। प्रेरणा गा रही थी। विकास को देख कर भी वह गाती ही रही। विकास ने भी उसका गीत भंग नहीं किया। वह सुनता रहा और मन्त्रमुग्ध होकर सुनता रहा। जब गीत समाप्त हो गया तो विकास को ऐसे लगा जैसे कोई सुन्दर स्वप्न टूट गया। उसने चमत्कृत हो कर कहा— "तुम! प्रेरणा तुम! गा रही थीं, या कोई स्वर्ग की अप्सरा मर्त्यलोक में गाने चली आई थी। तुम इतना सुन्दर गाती हो! पर इस से पहिले तो तुम्हें कभी गाते नहीं सुना।"

प्रेरणा— "पहले आप गाना सुनने के लिये आकुल भी तो नहीं होते थे। जब आप गीत सुनने को आकुल हुए तभी मैं गाने लगी। अब

आप जो राग चाहें वही मैं आप को सुना सकती हूँ। बोलो, भैरवी सुनोगे, विहाग गाऊँ, बाँसुरी पर नाचूँ, वीणा सितार, जो कहो वही मैं बजा सकती हूँ।"

विकास— "समझा, तुम मेरे लिये स्वर्ग की झनकार बनी हो। कामिनी ने सिखाये हैं न तुम्हें ये गीत। कामिनी सचमुच बहुत सुन्दर है।"

प्रेरणा— "क्या अब भी आप के अभाव की पूर्ति मुझ में नहीं है ?"

विकास— "हाँ, अब भी तुममें कुछ कमी है। और वह है सहनशक्ति का अभाव। तुम से कामिनी के प्रति मेरा आकर्षण सहन न हो सका।"

प्रेरणा— "क्या कोई पत्नी अपने पति का दूसरी स्त्री की ओर आकर्षित होना सहन कर सकती है ?"

विकास— "हाँ, कर सकती है, और वह है कामिनी। कामिनी के इसी सरल सौन्दर्य ने तो कैलाश को शिवम् पथ पर ला खड़ा किया।"

प्रेरणा— "क्या कोई पुरुष भी अपनी स्त्री का दूसरे पुरुष के प्रति आकर्षण सहन कर सकता है ?"

विकास— "कर सकता है ही नहीं, करेगा। और तुम देखोगी।"

प्रेरणा— "तो क्या आप मुझ पर लांछन लगा रहे हैं ?"

विकास— "नहीं देवि ! तुम गङ्गा की तरह निर्मल हो। मैं तुमसे एक भीख माँगता हूँ, बोलो दोगी ?"

प्रेरणा— "आप मेरे सामने दीन न बनिये देव ! आपका मुझ पर अधिकार है। आपके लिये मुझे अपना शरीर तकुवों से बिंधवाने में भी प्रसन्नता होगी।"

विकास— "अधिकार से माँगने में स्वाद नहीं होता, स्वाद उसी में है जो बिना माँगे दिया जाये।"

प्रेरणा— "आपको प्रसन्नता से न देने वाली कोई वस्तु मेरे पास है ही नहीं।"

विकास— "तो सुनो, तुम्हें प्रभात से प्रणय करना होगा।"

प्रेरणा— "यह क्या कह रहे हैं आप! क्या आपको मुझ पर सन्देह है?"

विकास— "तुम पर सन्देह नहीं, विश्वास है, तभी तो आशा से तुम्हारे आगे याचना की। मैं प्रभात की प्रसन्नता के लिये तुमसे चाहता हूँ कि तुम प्रभात से स्वाभाविक स्नेह करो। तुम्हारे संगीत और नृत्य का जितना मूल्य प्रभात की आँखों में है उतना मेरी आँखों में नहीं। लेकिन उस ख़रीदार को यदि उतना मूल्य देने पर भी वह वस्तु न दी जाये तो यह मानव की उदारता का अन्याय होगा। हमारे त्याग की सीमा शायद कलाकार की पीड़ा मिटा दे। इसलिये जाओ और प्रभात की पीड़ा मुस्कान में बदल दो।"

प्रेरणा— "क्या आपको भी इससे प्रसन्नता होगी?"

विकास— "प्रसन्नता होगी तभी तो तुमसे याचना की।"

प्रेरणा— "आप अपनी आज्ञा में थोड़ा संशोधन कर दीजिये।"

विकास— "क्या?"

प्रेरणा— "आप प्रभात की प्रसन्नता चाहते हैं न! मैं प्रभात को प्रसन्न करूँगी पर प्रणय से नहीं, प्रेम से।"

विकास— "लेकिन यदि प्रेम से उसकी तृप्ति नहीं हुई तो तुम प्रणयदान में संकोच तो नहीं करोगी?"

प्रेरणा— "यदि प्रेम ने हार मान ली तो प्रणय से सन्तोष दूँगी। लेकिन यदि प्रणय भी हारा तो ?"

विकास— "तुम हार जीत की होड़ लगाने नहीं जा रही हो, पीड़ित मानव को तृप्ति देने जा रही हो। नारी व्यर्थ है यदि वह मनुष्य की शान्ति नहीं बन सकती।"

प्रेरणा असमंजस में पड़ गई। वह सोचने लगी— "मैं इनकी शान्ति के लिये प्रभात को शान्ति देने जाऊँगी। क्या प्रभात को इससे शान्ति मिलेगी ? मनुष्य स्त्री पर अपना एकमात्र अधिकार चाहता है। विचित्र उलझन सामने आ गई है।"

उलझन में उलझी हुई प्रेरणा प्रभात के पास पहुँची। प्रभात अपनी कुटिया में ध्यानमग्न हो लिख रहे थे। लिखने में वे इतने लीन थे कि पास खड़ी प्रेरणा को उन्होंने तब तक नहीं देखा जब तक प्रेरणा ने बोल कर उनकी समाधि भंग नहीं कर दी।

समाधि भंग होने पर प्रभात ने जो मुँह ऊपर उठाया तो प्रेरणा ने देखा कि उसका मुँह आँसुओं से भीगा हुआ है। "यह क्या ! तुम अकेले में रो रहे हो प्रभात !"

प्रभात— "रो नहीं रहा हूँ, लिख रहा हूँ। बहुत रोने के बाद जब शान्ति होती है तो लिखने बैठ जाता हूँ, और जब लिखने लगता हूँ तो काग़ज़ों पर आँसू बिखर पड़ते हैं। ये आँसू ही तो काव्य हैं। बोलो प्रेरणा ! मनुष्य हँसने के लिये बना है या रोने के लिये ?"

प्रेरणा— "हँसने के लिये।"

प्रभात— "हँसी तो घनसार होती है जो उड़ती जाती है, पर उड़ती दिखाई नहीं देती।"

प्रेरणा— "अधिक भावुकता कवि को खा लेती है। भावुकता छोड़ो और दुनियादारी में आ जाओ। बहुत रो चुके, अब हँसो कलाकार!"

प्रभात— "हँसी अब बाहर आकर मेरी हँसी ही तो उड़ायेगी।"

प्रेरणा— "और जन जन को अपने आँसू दिखा कर क्या तुम अपना उपहास अपने आप नहीं करते? दुनिया में जो रोता है उसकी और हँसी उड़ती है।"

प्रभात— "दुनिया के हँसने रोने से मुझे क्या! स्मृति में रोना मेरा स्वभाव बन गया है।"

प्रेरणा— "भूल जाओ और हँसो! जैसे भी हँस सको, हँसो, जीवन का स्वाद आनन्द में है आँसू में नहीं।"

प्रभात— "जीवन में आनन्द कहाँ प्रेरणा! यहाँ सुख की खोज में मनुष्य जीवन भर भटकता रहता है। लेकिन सन्तोष की श्वास शायद जीवन में होती ही नहीं।"

प्रेरणा— "मैं तुम्हें सन्तोष देने आई हूँ।"

प्रभात— "तुम मुझे सन्तोष दे भी सकोगी? आयु की सीमा क्या मेरी असीमित आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकेगी? मृत्यु की जंज़ीरें क्या एक दिन तुम्हें भी जकड़ कर नहीं ले जायेंगी? इसलिये जीवन पर मेरा कोई अधिकार नहीं, यह किसी अज्ञात आकर्षण के इंगित पर चलता है। फिर मैं क्यों व्यर्थ ही सुख की खोज करूँ? मैंने सुख की चाह छोड़ दी है प्रेरणा!"

प्रेरणा— "तुम्हारे शब्दों में रुँधा हुआ कण्ठ है, तुम्हारी भावनाओं में दफनाई हुई आकांक्षायें बोल रही हैं। तुम्हारे जीवन में अभी शान्ति नहीं, मैं तुम्हें शान्ति दूँगी। तुम गीत लिखो, मैं तुम्हें तुम्हारे गीत गा गा कर सुनाऊँगी।"

प्रभात— "तुम मेरे पास से चली जाओ, मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। कहीं मैं वह पाप फिर न कर बैठूँ जिसे करते करते मैं आज परमात्मा बनने का पथ ढूँढ रहा हूँ। विवश रहने दो मुझे, नहीं तो मैं फिर भटक जाऊँगा।"

प्रेरणा— "मैं तुम्हें भटकाने नहीं आई, तृप्ति देने आई हूँ।"

प्रभात— "मेरी तृप्ति केवल मेरी कविता है।"

प्रेरणा— "तो मैं तुम्हें काव्य की प्रेरणा ही तो देने आई हूँ।"

प्रभात— "तुम काव्य की प्रेरणा देने आई हो किन्तु तुम्हारा आकर्षण मेरी वासनाओं को जगा देगा। और तब सब मुझे पापी कहकर पुकारेंगे। चली जाओ प्रेरणा! मुझे डर है कि कहीं मेरी इच्छाओं का शिकार मेरा विकास ही न बन जाये। तुम विकास की शान्ति हो, मेरी शान्ति तो केवल मेरी पीड़ा है।"

प्रेरणा— "नारी ईश्वर की सुन्दर कला है, जिसके सौन्दर्य में शक्ति है। तुम मेरे हर सौन्दर्य से प्रेरणा लो प्रभात!"

प्रभात— "तो तुम मेरे सामने बैठ जाओ, मैं तुम्हारे सौन्दर्य की उपासना करूँगा।"

प्रेरणा प्रभात के सामने बैठ गई और प्रभात भक्ति भाव से सौन्दर्य की उपासना करने लगा। भक्ति को रिझाने के लिये सुन्दरता में प्रत्येक पल नया सौन्दर्य झलकने लगा। कभी वह गाती हुई दिखाई दी, कभी नाचती हुई। कभी वह शृङ्गार किये हुए सामने आई और कभी मदिरा की घूँट सी झूमती हुई। कभी वह प्रकृति की दिव्यता सी कौंधी और कभी असंख्य चित्रों की मूर्ति सी।

सौन्दर्य के प्रत्येक स्पन्दन में अद्भुत आकर्षण लहराने लगा। कवि मतवाला हो उठा, वह लहरों को पकड़ने लपका। उसकी भोग

भावना जाग उठी। उसने अपने दाँत सुन्दरता की ओर दौड़ाये। सुन्दरता ने काँपते हुए कहा—

"स्वयम् को सँभालो! सौन्दर्य देखने के लिये है, भक्षण के लिये नहीं। मेरे गीत सुनो, मुझ से बोलो, मुझसे प्रेरणा लो, लेकिन मुझे मैली मत करो।"

प्रभात— "मेरी पिपासा सौन्दर्य पान के लिये छटपटा उठी है। मेरी अतृप्ति आज तृप्ति चाहती है। केवल देखते रहने से भूख नहीं मिटती। दूसरे को खाता देख भूखा मनुष्य क्रान्ति पर उतर आता है। मैं भूखा हूँ, बहुत भूखा! मेरी भूख भक्षण से ही मिट सकती है।"

प्रेरणा ने देखा कि प्रभात की आँखों में भिखारी का हृदय है। वह भूखा है, अत्यन्त भूखा। उसकी भूख में अब उचित अनुचित सोचने की शक्ति नहीं है। वह राक्षस होना चाहता है।

सचमुच प्रभात राक्षस हो उठा। उसने अपनी दोनों भुजाओं में प्रेरणा को जकड़ लिया। प्रेरणा छूटने के लिये छटपटाई, पर जैसे उसे लोहे की ज़ंजीरों ने जकड़ लिया है। "छोड़ो मुझे!" "नहीं छोड़ूँगा।" "मनुष्य होकर पिशाच मत बनो। छोड़ दो मुझे! मुझ पर मेरा अधिकार नहीं है।"

"मनुष्य होकर पशु न बनो, छोड़ दो मुझे!" प्रभात ने एकदम प्रेरणा को छोड़ दिया। वह दूर हट कर दीवार से सर चिपकाकर रोने लगा। उसे स्वयम् पर करुणा आई— "तुझे क्या हो जाता है! बार बार प्रतिज्ञा करके भी तू क्यों भूल जाता है प्रभात! तेरी किस्मत में किसी के प्यार का सुख नहीं है। तेरे प्यार की हत्या ही तेरे भाग्य में लिखी है। दुःख पर दुःख ने तुझे घोर अतृप्त बना दिया है। कहाँ तू इतना बड़ा कलाकार और कहाँ नारी के सामने कातर हो जाता है। न जाने तेरा संयम क्यों टूट जाता है! प्रेरणा! मुझे

क्षमा कर दो! मैं अब तुमसे कभी कुछ नहीं कहूँगा। वास्तव में मैं पापी नहीं हूँ, अपने अतीत को भुलाने के लिये वर्तमान सुखी बनाने को ज़बरदस्ती भूल कर बैठता हूँ और फिर मुझे आत्मग्लानि होती है।"

प्रेरणा को ऐसा लगा जैसे प्रभात जीवन से भटक कर प्यार की बूँद के सहारे जीना चाहता है। उसकी भटकी हुई इच्छा किसी का सम्पूर्ण प्रणय पाने की है। वह इसलिये पागल हो जाता है कि उसने स्वयम् को खोकर जो पाया है वह खो गया।

प्रेरणा कुछ गम्भीर होकर बोली— "आँसू पूछ लो प्रभात! जीवन रोने के लिये नहीं है। गम्भीरता से सोचो, मैं तुम्हें मिल भी सकती हूँ। लेकिन तुम तब भी तृप्त नहीं हुए तो? इसलिये उस पथ पर चलो जिस पर तुम्हारी तृप्ति है। यह शरीर तो मांस मज्जा हड्डी आदि उन वस्तुओं का बना हुआ है जिनको देखकर मनुष्य नाक सिकोड़ लेता है। इसलिये तुम मेरे शरीर की चाह छोड़ दो! तुम विचारो कि क्या मुझमें कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे पाकर तुम्हें किसी क्षण भी ग्लानि न हो। तुम आँख मीच कर अनुभव करो कि मुझमें शब्द का आकर्षण है या जड़ का। यह जड़ शरीर तभी तक है जब तक शब्द है। शब्द-शून्य शरीर से तुम प्रेम क्यों नहीं करते? इसलिये लाश को चबाने का खयाल छोड़ दो प्रभात।"

प्रभात— "मैंने बहुत बार यह सोचा कि शरीर नश्वर है और जब जब मैंने यह सोचा तभी तब नश्वर सत्य मुझ पर टूट पड़ा। पर जब वह मुझ पर झपटता है तो उसके साथ हृदय भी होता है। मैं जीतना चाहता हूँ, पर हार जाता हूँ। हार कर यही तराजू में तोला कि पाप पुण्य कुछ नहीं, क्योंकि मनुष्य स्वतन्त्र कुछ है ही नहीं। फिर भी मुझे न जाने क्यों पाप अनुभव होने लगता है। और न जाने जो मैं करता हूँ वह मुझे पुण्य ही क्यों लगता है! पाप और पुण्य के तर्क ने मुझे अशान्त

बना दिया है। तन मन से और मन तन से अलग नहीं होता देवि! तुम यदि मुझे मन दान देती हो तो तन भी दो!"

प्रेरणा— "तुम मुझे चाहते हो तो वचन दो कि मुझसे कभी घृणा नहीं करोगे।"

प्रभात— "कभी नहीं!"

प्रेरणा— "तुम्हें स्वयम् पर विश्वास है न ?"

प्रभात— "हाँ विश्वास है।"

प्रेरणा— "अपनी हाँ का निर्वाह कर सकोगे?"

प्रभात— "हाँ!"

प्रेरणा— "तो सुनो आज से एक मास बाद मैं तुम्हें मिलूँगी।"

*　　　*　　　*

एक मास बाद पहली तारीख को कवि कुटिया में बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। किन्तु पता नहीं वह अतीत को प्रत्यक्ष देखना चाहता है या भविष्य को। वह बार बार चौंक कर दर्वाज़े की तरफ देखता है और फिर हृदय दबा कर बैठ जाता है।

सहसा कमरे में एक विकराल मूर्ति ने प्रवेश किया। काला मुँह, सफेद बाल, और वे भी सर पर कहीं कहीं, आँखों की पलकों से चूता हुआ मवाद, नाक, गाल और माथे की नुची हुई खाल। देखते ही प्रभात भयभीत हो उठा। उसे अपनी ओर आते देख वह यह कहता हुआ पीछे को भागा— "कौन हो तुम? चुड़ैल तो नहीं हो! यहाँ क्यों आई हो? क्या चाहती हो मुझसे? तुम पगली हो!"

"मैं चुड़ैल नहीं हूँ कवि! तुम्हारी चाह प्रेरणा हूँ। उठो कवि! मेरा मुँह चूमो! मेरा आलिंगन करो! मेरे सौन्दर्य की प्रशंसा में गाओ!" प्रेरणा ने मुस्कराते हुए कहा। किन्तु आज मुस्कान में वीभत्स रस था।

"तुम ! तुम ! तुम प्रेरणा हो ! तुम्हारे अधरों का वह अमृत, तुम्हारी आँखों की वह शराब, तुम्हारे शरीर का वह सौन्दर्य अब कहाँ है जो मुझे पागल बना देता था ? किन्तु नहीं, अब तुम और अधिक सुन्दर हो। सचमुच सौन्दर्य वही है जो आँखें खोल दे। तुमने एक अन्धे की आँखें खोल दीं देवी ! प्यार की परिभाषा आज जगमगा उठी है। मैंने तुम्हारे उस शरीर से झूठा प्यार किया था लेकिन इस शरीर से सच्चा प्यार करूँगा। मुझे भावनाओं की असुन्दरता से घृणा हो सकती है लेकिन शरीर की असुन्दरता से कभी नहीं।

"ठहरो देवि ! मैं अपनी पलकों और अधरों से तुम्हारे जले हुए मुख का मवाद पूछ कर प्यार का मरहम लगाता हूँ।" कहते हुए प्रभात ने अपनी गोद में प्रेरणा का सर रक्खा और माथे पर बहता हुआ वसा पलकों से पूछने लगा।

प्रेरणा स्तम्भित हो गई। उसने मन ही मन में कहा— "कितना प्यासा है यह प्यार का ! अब मैं क्या करूँ ? अच्छा इसी में है कि इस की आँखों में प्रतीक्षा रहे।"

प्रभात को प्यार से देखते हुए प्रेरणा ने कहा— "तुम मुझसे प्यार करते हो कवि !"

प्रभात— "हाँ।"

प्रेरणा— "तुम मुझ पर एकाधिपत्य भी तो चाहते हो ?"

प्रभात— "नहीं।"

प्रेरणा— "एक स्त्री कैसे दो को प्रेम दे सकती है ?"

प्रभात निरुत्तर था। उसने सब्र करते हुए कहा— "भूल हुई मुझ से, क्षमा चाहता हूँ। तुम जाओ। भूख ने मुझे डाकू बना दिया। मैं विकास भाई पर डाका डालने में भी न झिझका। न जाने जीवन में कब तक भूल करता रहूँगा।"

प्रेरणा — "जो जितना बड़ा होता है उस से उतनी ही बड़ी भूल भी होती है, और जो जितनी बड़ी भूल करता है वह उतना ही बड़ा सावधान भी बन जाता है! सुबह का भूला शाम को यदि घर आजाये तो भूला नहीं कहलाता। तुम प्यार करो केवल अपनी कलम से। उन के फोटो अपने सामने रक्खो जो तड़पते हैं।"

प्रभात — "और साथ में तुम्हारा चित्र भी रक्खूँगा।"

प्रेरणा— "और उनके चित्र जिन्हें मृत्यु ने तुम से छीन लिया।"

प्रभात— "उनके चित्र भी हर समय हृदय और आँखों में हैं। उन की चर्चा मत छेड़ो, नहीं तो आँसू बहने लगेंगे। मुझे अभी दुनिया में ज़िन्दा रहना है, इसलिये उन्हें निराकार ही रहने दो। तुम जाओ प्रेरणा! लेखनी अब मचल रही है। हृदय काग़ज़ों पर बिखरना चाहता है। मैं कुछ लिखूँगा।"

प्रेरणा— "तुम्हें शान्त देखे बिना मुझे सन्तोष नहीं हो सकता कवि! मैं तुम से प्रेम करती हूँ, बहुत प्रेम करती हूँ, पर माँ की आशा की तरह। जिस तरह वह अपने बेटे को महान देखना चाहती है, उसी तरह मैं भी तुम्हें महान देखना चाहती हूँ!"

प्रभात— "तुम मुझे महान देखना चाहती हो पर संसार नहीं चाहता! मैंने भी बहुत बार महान बनने का स्वप्न देखा पर अपनी भूल पर आँसू बहा कर हार बैठा। मैंने संसार से अपने स्वप्नों की पूर्ति चाही, पर हर बार धक्के खाये। मैंने जो पुस्तक लिखी, सोचा संसार इसे सम्मानित करेगा, पर हर बार भूल पर पछताया। संसार ने पीतल कहकर उसे ठुकरा दिया। सोने को यदि कोई पीतल कहे तो पत्थर उस के मुँह पर तमाचा मार कर कह देता है कि तू झूठ कहता है, लेकिन कवि के पास कोई ऐसा पत्थर नहीं जो उसके सत्य का प्रमाण दे सके। कवि की कसौटी है हृदय, और

हृदय पापी होता है। देखो तो प्रेरणा! पत्थर हृदय से कितना सच्चा होता है। वह खरे को खोटा कभी नहीं कहता, किन्तु हृदय हृदय का ही हृदय तोड़ देता है।"

कुछ सोचते हुए प्रेरणा ने कहा— "तुम किसी के दर्वाज़े पर माँगने जाते ही क्यों हो? क्या तुम नहीं जानते, जाने से मान घटता है। तुमने स्वयम् को निर्धन और उन को धनवान् क्यों समझा?"

प्रभात— "मैंने भूल की जो अपनी गरीबी का तिरस्कार कराने चला गया। मैंने समझा था कि वे बहुत भले होंगे, क्योंकि जिस पर बीत चुकी होती है वह दर्द पहचानने लगता है, किन्तु बात यह न निकली। वे भी धनवानों के खिलाड़ी हैं।"

प्रेरणा— "तो तुम किसी खिलाड़ी के हाथ में क्यों खेलते हो? जानते नहीं दुनिया दुखी की नहीं सुखी की होती है। तुम किसी को अपना समझ कर अपने मन की कहते हो, किन्तु वही तुम्हारी तुच्छता का ढिंढोरा बन जाता है।"

प्रभात— "सचमुच मुझ में यह कमी है कि किसी को भी अपना समझ लेता हूँ। मैंने अपनी साधना की सफलता दूसरे के शब्दों में समझी, किन्तु यह भूल गया कि यह युग शब्दों का भी कंगाल है। धन दौलत तो कोई किसी को क्या देगा, प्रसाद के शब्द भी मुँह से नहीं निकलते।"

प्रेरणा— "तुम्हारी प्रशंसा तुम्हारे शब्दों में है, दूसरे के अविश्वास भरे शब्दों में नहीं। भूल जाओ प्रभात! कि कोई तुम्हारी साधना को सराहेगा। केवल तुम्हारी ही वाणी में तुम्हारा देवत्व है।"

प्रभात— "आत्म-सन्तोष करते करते भटक गया हूँ देवि!"

प्रेरणा— "हर बार की निराशा ने तुम्हें तेरह तीन कर दिया है। घबराओ मत कवि! अच्छे दिन की प्रतीक्षा करो! आज हारे हो तो कल जीतोगे भी।"

प्रभात— "जीतने की आकांक्षा में ज़िन्दा रहते रहते थक गया, अब तो मरने को जी चाहता है। मरने के बाद बुरा कहने वाला कोई ही होता है। जब मैं मर जाऊँगा तब मैं कवि के ऊँचे आसन पर बिठाया जाऊँगा। संसार मुझे धन और सम्मान से पुरस्कृत करेगा। लेकिन आज तो मैं अपने ऊपर बोझ की तरह जी रहा हूँ।"

प्रेरणा— "लिखो कवि! लिखो! आँसुओं को आँखों में रोक कर लिखो!"

प्रभात— "जीने के लिये कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। लिखता तो रहूँगा ही और एक दिन लिखता ही लिखता मर जाऊँगा। लेकिन यह दुःख रहेगा कि एक स्वतन्त्र देश में भी साहित्यकार के साथ न्याय नहीं है।"

प्रेरणा— "न्याय दुष्ट नीति की अनीति में खोया रहता है। तुम्हें यदि न्याय चाहिये तो चुपचाप अन्याय सहते रहने से नहीं मिलेगा। न्याय उसी को मिलता है जिसके हाथ में नीति और शक्ति होती है।"

प्रभात— "शक्ति जब नहीं होती तो रो कर सब्र करना पड़ता है।"

प्रेरणा— "तो फिर सन्तोष करो और लिखो।"

प्रभात— "आँसुओं पर सन्तोष कर लिखता तो रहता ही हूँ।"

प्रेरणा— "यही तुम्हारे जीवन का सत्य है।"

"अच्छा, कलाकार! तुम लिखो, मैं अभी आई" कहती हुई प्रेरणा चली गई। वह सीधी अपने कमरे में गई। विकास को कमरे में न पा कैलाश के कमरे में पहुँची। कैलाश कमरे में चिन्तित से घूम रहे थे। प्रेरणा को देखते ही उन्होंने आदर से कहा— "प्रेरणा! यह क्या, तुम्हारा मुँह जल कैसे गया?"

प्रेरणा— "जला हुआ शरीर देख कर आश्चर्य करते हो! ये दाग़ तो एक दो दिन में ठीक हो ही जायेंगे, पर क्या तुमने कभी जले हुए हृदय

देखे हैं। क्या तुमने कभी वे घाव देखे हैं जिनका मरहम मनुष्य की कठोर मुट्ठी में बन्दी है। कैलाश बाबू! क्या तुमने कभी वे आँखें देखी हैं जिनके आँसू कभी रुकते हीं नहीं, जो अपनी ज़िन्दगी से अपना गला घोटते हैं।"

कैलाश— "इस दुनिया में सब देखने पर भी मनुष्य कुछ देखने से चूक जाता है। बताओ प्रेरणा! वह कहाँ है?"

प्रेरणा— "चलो दिखाऊँ। लेकिन चुपके से देखना, कहीं दुःख जाग न जाये।"

प्रेरणा कैलाश को साथ ले उस कमरे में पहुँची जहाँ प्रभात को लिखता छोड़ आई थी। प्रभात की ओर संकेत करते हुए उसने धीरे से कहा— "देखते हो इसे हम दोनों के आने का पता तक नहीं, यही वह साकार दुःख है।"

कैलाश ने देखा कि प्रभात की कलम कागज़ पर रुकी हुई है। उसकी आँखें कागज़ को इस तरह देख रही हैं मानो हृदय उड़ेलना चाहती हैं। कैलाश ने धीरे से कहा— "प्रभात!"

उत्तर में प्रतिध्वनि नीरवता से टकरा कर लौट आई। कैलाश ने ज़ोर से आवाज़ दी और आगे बढ़े। पास पहुँच कर उन्होंने चीख कर कहा— "प्रभात की तो आँखें फटी हुई हैं! इनमें कुछ है भी या नहीं?"

प्रेरणा पगली की तरह चीत्कार करती हुई प्रभात को देखकर गिर पड़ी, और हिड़की मारकर रोती हुई बोली— "देखने वाले के लिये इसमें बहुत कुछ है। देखो यह दर्द और दुनिया का न्याय है! विचारा लिखता ही लिखता मर गया!"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"प्रेरणा! वह मर कर भी इस युग को सब कुछ दे गया। भविष्य हमारे युग की प्रशंसा इन चार पुस्तकों के आधार पर ही करेगा। यह क्या! तुम रो रही हो प्रेरणा! आँसू बहाने से प्रभात अब वापिस नहीं आ सकता। आँसू रोको और अन्धे होने का बहाना करने वालों की आँखें खोलो! अपने विद्यालय का विकास करो! जो बीज प्रभात ने बोया है उसे सींचो! वास्तव में मिटता कुछ नहीं, आँखों से ओझल हो जाता है। ढूँढने वाली आँखों को वह किसी न किसी रूप में मिल ही जाता है। यह विद्यालय ऐसा कल्पवृक्ष है जिससे सब कुछ मिल सकता है।"

प्रेरणा— "कामिनी की सेवाओं से हरिजन विद्यालय का विश्व में एक महान् स्थान बनता जा रहा है। ज्योति के बाद कामिनी से विद्यालय जगमगा उठा है। आज हमारा विद्यालय कलाओं का केन्द्र है। साहित्य, संगीत और कला के बेजोड़ विद्यार्थी इस विद्यालय के दीपक हैं।"

विकास— "केवल साहित्य से ही मानव की पूर्ति नहीं होगी प्रेरणा! जीवन के लिये राजनीति, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, चिकित्सा, कला आदि सभी की आवश्यकता है।"

प्रेरणा— "सभी की व्यवस्था की जा रही है। वैज्ञानिक की अथक लगन से विज्ञान की रुचि के विद्यार्थियों की भी हमारे यहाँ कमी नहीं।"

विकास— "छूत की बीमारी से तो अब हमारा विद्यालय बिल्कुल अछूता है न?"

प्रेरणा— "बिल्कुल तो नहीं, पर भेदभाव बहुत कुछ कम होता जा रहा है। बालक और बालिकायें पवित्रता से साथ पढ़ते हैं। एक धनी का बेटा हमारे विद्यालय में स्वयम् को निर्धन से बड़ा नहीं समझता, और ना ही निर्धन अपने को छोटा मानता है। महेश्वरी प्रसाद रईस का पुत्र पूर्णिमा प्रसाद हमारे विद्यालय में भेदभाव से रहित राजनीति का एक होनहार

विद्यार्थी है। एक बिचारी भंगन की लड़की आमना साहित्य की अद्वितीय छात्रा है। वह कामिनी को बहुत प्यारी है। आमना भी कामिनी को देवी की तरह पूजती है। गाना, नाचना सभी कुछ सीख लिया है आमना ने।"

विकास— "किन्तु सेवा करना तो नहीं छोड़ा उसने। मैला साफ़ करते हुए उसे घृणा तो नहीं होती। यदि हमारी शिक्षा से मनुष्य अकर्मण्य बन गया तो उन्नति छटपटा उठेगी।"

प्रेरणा— "हमारी शिक्षा की यही तो सुन्दरता है कि विद्यार्थी कोई भी सेवा करता हुआ नहीं शर्माता। आमना अपना काम उसी तरह करती है जिस तरह भंगन की बेटी मानव की गन्दगी भंग करती है। पूर्णिमा प्रसाद सबेरे उठकर अपने हाथ से सारे विद्यालय में बुहारी देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि अब इस विद्यालय में सब स्वावलम्बी हैं। इस समय शान्ति का साम्राज्य है विद्यालय में। दुःख है तो बस प्रभात के अभाव का।"

विकास— "संसार में अभाव भ्रम है, और अभाव की पूर्ति भी भ्रम है। गगन को देखो, तारिका टूट कर शून्य में लीन हो जाती है लेकिन गगन की दिवाली जगमगाहट बन्द नहीं होती। न जाने कितने प्रभात धरती के इतिहास में छिपे पड़े हैं, किन्तु क्या टूटे हुए तारों का लेखा कोई लिख सका है? पौधा नष्ट हो जाता है पर बीज नष्ट नहीं होता। आकृति घुल जाती है, पर तत्व घुल कर नहीं मिटते। चिह्न छोड़ती हुई दुनिया की गाड़ी चलती रहती है और मिटते रहते हैं पीछे छोड़े हुए निशान।

"मनुष्य वही है जो हर स्थिति में स्वयम् को सँभाल कर उन्नति करता रहे। जीवन में झटके आते हैं, उन झटकों से मरना मनुष्य की अवनति है। चलो, हम भी चल कर विद्यालय में काम करें, केवल बातों से बात नही बनेगी।"

विकास और प्रेरणा विद्यालय के उद्योग भवन में पहुँचे। प्रेरणा यरवदाचक्र पर सूत कातने लगीं और विकास खादी बुनने लगे। प्रेरणा और विकास को कातते और बुनते देख बाल्टी बनाती हुई आमना ने आकर कहा— "आप इतना श्रम न करिये, हमारे होते हुए आप को बुढ़ापे में इतनी मेहनत करनी पड़े यह हमारे लिये लज्जा की बात है। मैं स्वयम् कात बुन कर अपनी आवश्यकता से दुगुना कपड़ा तैयार करती हूँ। मैं ही नहीं, यहाँ प्रायः सभी मेरी तरह कातते बुनते हैं। आप जितना कपड़ा चाहें पहनिये और उन्हें दीजिये जिनके पास कपड़े नहीं हैं।"

विकास— "तुम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होती हो, सेवा करती हो, और कात बुनकर कपड़ा भी तैयार कर लेती हो।"

प्रेरणा— "यही नहीं, दो घण्टे विद्यालय में पढ़ाती भी हैं।"

आमना— "यह सब आप की कृपा का फल है। आपने पढ़ने का अवसर दिया तो हम इस योग्य बन गये, अब तक तो समाज में पाप की तरह नर्क भोगना ही समाज ने हमें सिखाया था।"

विकास— "अब वह दिन दूर नहीं जब समाज का यह अभिशाप कहीं भी न रहेगा।"

"अभी मंज़िल बहुत दूर है बाबू जी!" कहते कहते आमना ने बुनना शुरू किया। किन्तु बुनते ही बुनते वह रो पड़ी।

विकास— "तुम रो क्यों रही हो आमना! क्या बात है?"

आमना— "कुछ नहीं बाबू जी!"

विकास— "कुछ बात अवश्य है, आँसू व्यर्थ ही नहीं निकलता।"

आमना— "आँसुओं का मूल्य ही क्या है?"

विकास— "आँसू का मूल्य चाहे न हो पर उस में शक्ति बहुत होती है। आँसू की आग जब धधकती है तो बुझाते नहीं बुझती। बोलो, तुम्हारे आँसू क्यों निकले आमना ! मेरे विद्यालय में कोई दुःखी हो यह मेरे लिये अभिशाप है।"

आमना— "आप और आप के विद्यालय के कारण मुझे कोई दुःख नहीं, दुःख है तो अपने भाग्य का। मैं मन ही मन में पछताती हूँ कि भंगी की बेटी होकर मैं पढ़ी क्यों ?"

विकास— "क्यों कह रही हो ऐसी बात ?"

आमना— "क्यों कि हृदय ने कहने को विवश किया। शिक्षा के साथ साथ मेरी आकांक्षायें भी जाग उठीं हैं बाबू जी ! पर मैं देखती हूँ कि अब मेरी भावनाओं की अच्छी तरह होली जलेगी। जब मैं गालियाँ खाती हुई सिर्फ पखाना उठाती थी, घर घर से माँग कर भूठी रोटियाँ टोकरी में इकठी करती फिरती थी, तब मुझे कुछ महसूस नहीं होता था। लेकिन अब जब मैं अपनी किसी बहिन को सेठानी से गाली सुनते, मैला ढोते देखती हूँ तो मुझे पीड़ा होती है।"

विकास— "बस यही दुःख है तुम्हें ?"

आमना— "नहीं और भी है।"

विकास— "तो तुम अपने दिल की पूरी बात क्यों नहीं कहतीं ?"

आमना— "जो इच्छा पूरी नहीं हो सकती उसे प्रकट करने ही से क्या लाभ ?"

प्रेरणा— "आमना ! तू बता तेरी क्या इच्छा है।"

आमना— "बहिन जी ! अगले मास में मेरी शादी एक अपढ़ शराबी से कर दी जायेगी।"

विकास— "क्या! तुम्हारी शादी और एक बेपढ़े शराबी से! यह नहीं हो सकता। कौन है जो तुम्हारी शादी शराबी से करना चाहता है?"

आमना— "रुपया।"

विकास— "क्या?"

आमना— "हाँ बाबू जी! मेरी माँ को रुपया देकर उस मालदार शराबी ने मुझे खरीद लिया है।"

विकास— "और तुमने बिकना स्वीकार कर लिया! तुमने पढ़ कर क्या यही सीखा?"

आमना— "सीखा तो यह नहीं बाबू जी। अपनी माँ को पढ़ाई की कीमत अदा कर रही हूँ। वे केवल पैसे से प्रसन्न होती हैं।"

विकास— "यह कभी नहीं हो सकता। प्रेरणा! बाल्मीकि जी को बुलाओ। तुम जाओ पढ़ो आमना! हम सब ठीक कर लेंगे।" बुनते हुए विकास ने कहा।

आमना चली गई और बाल्मीकि जी आये। बाल्मीकि जी को देखते ही बड़े आदर से बोलते हुए विकास और प्रेरणा खड़े हो गये और फिर उन्हें साथ ले अपने कमरे में चले आये। बाल्मीकि जी को प्रेम से अपने पास बैठाते हुए विकास ने कहा— "आमना के बारे में आपकी क्या राय है?"

बाल्मीकि— "बहुत ऊँची राय है, बड़ी होनहार लड़की है।"

विकास— "तो क्या आप इसकी शादी किसी चरित्रभ्रष्ट शराबी से करना पसन्द करेंगे?"

बाल्मीकि— "मैं तो पसन्द नहीं करूँगा।"

विकास— "लेकिन उसकी शादी एक ऐसे ही भंगी से होने वाली है। उसे रोको और आमना की शादी किसी योग्य वर से करो।"

बाल्मीकि— "आमना के लायक़ लड़का तो मेरी निगाह में है, पर वह होने वाली बात नहीं दीखती।"

विकास— "न होने के भय से मन में सोचकर ही हार बैठना बुद्धिमानी नहीं। पागल के गले में मोतियों की माला डालना मूर्खता है। शराबी के साथ आमना की शादी करना फूल के ऊपर थूकना होगा। बताओ कौनसा लड़का तुम्हारे खयाल में है?"

बाल्मीकि— "पूर्णिमा प्रसाद।"

प्रेरणा— "बहुत ठीक सोचा आपने, मैं भी मन ही मन में यही सोच रही थी। आपने मेरे मुँह की बात छीन कर कह दी।"

बाल्मीकि— "पर यह बात बननी बहुत कठिन है। महेश्वरी प्रसाद रईस अपने लड़के की शादी एक दुराचारिणी भंगन की लड़की से करना कभी स्वीकार नहीं करेंगे।"

प्रेरणा— "पर बेटी तो दुराचारिणी नहीं। वह तो गाँव में आज शायद सबसे श्रेष्ठ लड़की है।"

विकास— "प्रेरणा! तुम पूर्णिमा प्रसाद का हृदय टटोलना। अगर उसमें कोई जगह हो तो यह सम्बन्ध हो ही जायेगा।"

बातचीत समाप्त होने ही वाली थी कि कामिनी घबराई हुई सी आई और बोली— "मेरी माँ विद्योत्तमा को एक नवाब ने छुरे से घायल कर दिया है। इस समय कोई भी उनके पास उनका नहीं। एक वेश्या का बुढ़ापे में कोई नहीं होता विकास बाबू! मुझे उनकी मदद के लिये ले चलो। उन्होंने बचपन में मेरी बहुत सेवायें की हैं, मैं बुढ़ापे में उन की सेवा करना चाहती हूँ। उन्हें बाज़ार की उस दुर्गन्ध से हटा कर यहाँ

लाऊँगी। समाज के पापों से घिनौनी अपनी माँ को इस सुगन्धित वायु में शान्ति से रक्खूँगी। कैलाश बाबू से मैंने कहा, वे कहते हैं— 'यह विद्यालय विकास बाबू का है। मैं तो उनकी आज्ञानुसार यहाँ सेवा करता हूँ। यदि विकास बाबू आज्ञा दें तो तुम अपनी माँ को यहाँ अवश्य ले आओ'।"

विकास— "तुम्हें अब से बहुत पहले उन्हें यहाँ ले आना था। बहुत भूल की हमने जो अब तक उस बाज़ार को नही बदला। मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। तुम्हारी माँ और मेरी माँ में कोई अन्तर नहीं कामिनी!"

कैलाश, विकास, प्रेरणा और कामिनी उस बाज़ार में पहुँचे जिसमें जवानी हँसने का बहाना कर रही थी। इसी बाज़ार में विद्योत्तमा का कमरा है। "बस यहीं" कहती हुई कामिनी आगे आगे और पीछे पीछे तीनों ज़ीने पर चढ़े। ऊपर पहुँच कर देखा कि झाड़फानूसों के एक सजे हुए कमरे में एक अकेली महिला कराह रही है।

कामिनी दौड़ी हुई गई और "माँ!" कह कर उससे चिपट गई। विद्योत्तमा के आँसू एकदम उमड़ पड़े। उसने रोते हुए कहा— "तुम आ गईं बिटिया! बहुत अच्छा हुआ, मरने से पहले एक रहस्य खोलना चाहती हूँ। तुम मेरी बेटी नहीं हो। देश में एक बार दुर्भिक्ष पड़ा था। आदमी के खाने के लिये पेड़ों की छालें तक महँगी हो गईं थीं। मैं उस समय जवान थी। मैं एक ऊँचे खानदान की बेटी थी। दुर्भिक्ष के प्रकोप ने खानदान का खानदान खा डाला। फिर उस गाँव में बाढ़ आई। मेरा एक भाई भी था जो बाढ़ में बह गया। मेरे भाई के दो बच्चे थे, एक तू और एक लड़का जिसका नाम विकास था। वह अपनी माँ के साथ एक दूसरी नाव में बैठा था, और तू मेरे साथ थी। तेरी माँ और तेरा भाई भी उसी बाढ़ में बह गये होंगे।

"मैं तुझे लेकर दर दर भीख मांगती डोली। और फिर एक दिन यह हुआ कि भीख देने वाले मेरी जवानी को भीख देने लगे। मैं मन मार कर अपना तन बेचने लगी। एक नवाब ने मुझे अपने पैसे से खूब नोचा, और जब तू जवान हुई तो उस नवाब ने तुझे मुझसे माँगा। मैं दस हज़ार रुपए में कैलाश बाबू के हाथ तुझे बेच चुकी थी, इसलिये कि मुझे कैलाश में इन्सानियत दिखाई दी। कैलाश बाबू मेरे यहाँ बहुत बार आये, पर गाना सुनते और चले जाते। औरों की तरह वह कुत्ते कभी नहीं बने। धीरे धीरे तुझे उन से और उन्हें तुझ से प्यार हो गया। मैंने तुझे इस खूनी बाज़ार से निकाल कैलाश की छाया में छोड़ दिया।

"इससे नवाब साहब की आँखों में खून भरा रहा, पर मेरी जवानी ने उन के जोश को ठण्डा ही रक्खा। जब मेरी जवानी ढलने लगी तो नवाब साहब बराबर के कमरे वाली की लड़की पर नज़र रखने लगे। मेरे बराबर का कमरा शहर की महशूर वेश्या बिजली का है। वह नवाब साहब को मेरे यहाँ देख कर जलती थी। अब जब वे उसकी लड़की पर दीवाने हो गये तो बिजली ने शर्त रक्खी कि विद्योत्तमा के मरने के बाद मेरी लड़की तुम्हें मिल सकती है।

"फिर क्या था, नवाब साहब का खूनी छुरा उसकी ओर दौड़ पड़ा जिसका नवाब साहब आलिंगन करते थे।

"नवाब साहब ने छुरा मार तो दिया पर मारते ही वर्षों की प्रीति ने उनसे कहा— 'तूने भारी गुनाह कर डाला।' वे मुझ से माफी माँगने लगे। मनुष्य पाप करने को तो कर जाता है, पर पीछे पछताता भी बहुत है। नवाब साहब बहुत पछताये। उनके आँसू देख कर मुझे भी ऐसा लगा जैसे उन्होंने कोई पाप नहीं किया।

"इसके बाद नवाब साहब यह कहते हुये चले गये कि 'अब दुनिया मुझे कभी नहीं देखेगी।'

"पुलिस आई, मैंने कह दिया कि नवाब साहब तो यहाँ महीनों से नहीं आये। सुना है कि नवाब साहब का कहीं पता नहीं। अवश्य ही उन्होंने आत्महत्या कर ली होगी। वे जितने बुरे थे उतनी ही उनमें अच्छाइयाँ भी थीं। यह ठाठबाट जो कुछ दीख रहा है सब नवाब साहब की कृपा है। मेरे पास इस समय हज़ारों रुपये हैं। मेरी इच्छा है कि ये रुपए नारीवर्ग के उत्थान में लगें।"

विद्योत्तमा की कहानी से कमरे में गहरी गम्भीरता छा गई। सब मौन थे और सभी की आँखों में आँसू! सब निर्निमेष दृष्टि से विद्योत्तमा को देखते रह गये। अन्ततोगत्वा मौन भंग हुआ और आँसू पूछते हुए कामिनी ने कहा— "तुम मेरे लिये माँ से भी बड़ी हो! तुमने तन बेच कर मुझे पाला है माँ! छोड़ो अब इस विषैले बाज़ार को।"

विद्योत्तमा— "अब कहाँ जाऊँगी बेटी! जिस बाज़ार में मैं रोती हुई हँसने का बहाना करती रही, मुझे घृणा की दृष्टि से देखने वाले देवता जिस बाज़ार में मेरी कमनीयता से चिपके रहे, उस बाज़ार से पवित्र क्या कोई बाज़ार दुनिया में है? यहाँ पाप और पुण्य की पहिचान का संगम है बेटी! जिस बाज़ार ने मुझे रोटी दी उस बाज़ार को छोड़ कर अब उस दुनिया में जाकर क्या लूँगी, जहाँ मुझे इज्ज़त से पेट भरने को मुट्ठी भर चने भी न मिले, जहाँ जाकर मैं अब घृणा से देखी जाऊँगी। मैं अब अन्त समय इस बाज़ार को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी बेटी!"

विकास जो मन ही मन में फूट फूट कर रो रहा था अब बोले बिना न रह सका। उसने तड़पते हुए कहा— "तुम्हें चलना ही पड़ेगा। तुम शान्ति से जी न सकीं, शान्ति से मर तो सकोगी। एक ऊँचे घराने की बेटी लावारिस की तरह नहीं मर सकती।"

विद्योत्तमा— "मेरी लाश का वारिस बनने वाला संसार में घृणा से देखा जायेगा, पापी कहलायेगा। इसलिये मैं लावारिस ही मरना

चाहती हूँ। लो ये रुपये और चले जाओ मुझे छोड़कर। यह सब रुपया पापियों के दुःख दूर करने में लगा देना।"

विकास— "मेरा नाम विकास है माँ! शायद मैं ही कामिनी का भाई और कुटुम्ब का वह शेष ध्वंस हूँ जो बाढ़ में तुमसे बिछड़ गया था।"

विद्योत्तमा ने विकास को बड़े ध्यान से देखा और चीत्कार कर कह उठी— "विकास!"

वातावरण और गम्भीर हो गया। विद्योत्तमा ने हठ करते हुए कहा— "तुम यहाँ से हट जाओ! मैं नहीं चाहती कि कोई तुम्हारी ओर उङ्गली उठाकर कहे कि ये उस कुटुम्ब के हैं जिस कुटुम्ब की औरत रंडी थी।"

विकास— "इस छोटे कुटुम्ब से बड़ा सारा मनुष्य-समूह भी इन्सान का सब से बड़ा परिवार है। यदि मानव जाति की कोई स्त्री वेश्या बनने को विवश होती है तो सारी मानव जाति पर कलंक आता है। यदि संसार में कोई लावारिस लाश सड़ती है तो समझना चाहिये कि सारी मानव जाति मर चुकी। बदनामी के डर से मनुष्यता का त्याग पाप है।"

गम्भीर वातावरण में सहसा नवाब साहब गर्दन झुकाये हुए वहाँ आये। वे कुछ देर तक आँखों पर रुमाल रक्खे हुए मौन खड़े रहे और फिर भरे हुए गले से बोले— "देवि! मैं कह कर गया था कि अब मुँह नहीं दिखाऊँगा, किन्तु मौत ने मुझे ललकार कर कहा कि मेरी गोद में तेरे जैसे पापी के लिये जगह नहीं। मेरे दिल ने कहा कि तू एक औरत पर अत्याचार करके मर रहा है, पीछे लौट और उसी देवी की गोद में डूब जा! मुझे क्षमा कर दो देवि! उठो देवि! छोड़ दो यह कमरा और

चलो मेरे महल में। आज से तुम एक नवाब की बीवी हो। उसकी सारी दौलत तुम्हारी है। आज से मैं सिर्फ़ तुम्हारा रह कर भले कामों में ज़िन्दगी बिताऊँगा।"

विद्योत्तमा— "नहीं नवाब साहब! 'मैं महल में जा कर आपकी दौलत की हक़दार बनना नहीं चाहती, इतना अवश्य चाहती हूँ कि आपकी गोद में मरूँ।"

नवाब साहब— "विद्योत्तमा! तुम अपने लिये नहीं, मेरी शान्ति के लिये मेरे साथ चलो।"

"आपकी शान्ति के लिये? तो ले चलो जहाँ चाहो वहाँ मुझे।" विद्योत्तमा ने ढलती रात की तरह कहा।

नवाब साहब ने सहारा देकर विद्योत्तमा को उठाया, वह एक हाथ उनके कन्धे पर और दूसरा कामिनी के कन्धे पर रखकर चली।

किन्तु दो क़दम चली होगी कि अपना सर नवाब साहब के सीने पर गेरते हुए उसने कहा— "यह दुनिया क्या है ईश्वर!"

और फिर आँखें मिच गईं। नवाब साहब ने 'विद्योत्तमा!' कहते हुए उसे अपनी गोद में उठाया, और एकदम गम्भीर होकर बोले— "कामिनी! एक कागज़ और कलम देना!"

विकास ने जेब से कागज़ और कलम निकाल नवाब साहब को दिया। नवाब साहब ने उस पर लिखा— "मेरी सारी दौलत की मालिक बेटी कामिनी है।"

हस्ताक्षर करके कागज़ कामिनी को दे नवाब साहब विद्योत्तमा को गोद में उठाये नीचे उतरे और फिर कार में बैठ स्वयम् गाड़ी गति में लाने लगे।

विकास और कामिनी ने भी गाड़ी में चढ़ना चाहा, लेकिन नवाब साहब ने उन्हें रोक दिया। इससे पहले कि विकास दुबारा कुछ कहे नवाब साहब अकेले विद्योत्तमा को गाड़ी में लेकर चल दिये।

थोढ़ी देर तक तो कामिनी, कैलाश आदि सन्नाटे में खड़े सोचते रहे और फिर टैक्सी में बैठ उधर ही चल पड़े जिधर गाड़ी लेकर नवाब साहब गये थे।

कार के पहिये के निशान के सहारे चलते चलते टैक्सी गंगा किनारे वहाँ जाकर रुकी जहाँ नवाब साहब की कार तो खड़ी थी लेकिन नवाब साहब और विद्योत्तमा का शव उसमें न था।

थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि दो लाशें गंगा में ऊपर तैर रही हैं।

सब विवश खड़े हुए देर तक तैरते हुए शव देखते रहे, और फिर लाचारी के श्वास लेते हुए लौट चले। राह में वही रौनक थी, वही रंग था, वही तान थी। लेकिन कामिनी और विकास अतीत की कोई भूली तान गुनगुनाते जा रहे थे— 'मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? कहाँ जाऊँगा? आखिर यह कैसा बाज़ार है? कोई मर जाओ पर दूकानें वैसे ही खुली रहती हैं। वही बाज़ार है, वही चमक दमक, पता नहीं यह क्या लीला है, किसकी लीला है?''

मन ही मन में गुनगुनाते हुए चारों पथिक विद्यालय वापिस आगये। कुछ दिन बीती बातों में घूमने के बाद फिर सब ज़िन्दगी की उसी मंज़िल पर चलने लगे।

* * *

''क्यों प्रेरणा! आमना और पूर्णिमा प्रसाद के सम्बन्ध की बातचीत चली?'' विकास ने 'मानव जाति की उन्नति' नामक पुस्तक पढ़ते हुए कहा।

प्रेरणा— "पूर्णिमा प्रसाद की बातों से पता चलता है कि वे अभी विवाह के लिये तैयार ही नहीं हैं, लेकिन सुना है कि महेश्वरी प्रसाद अपने बुढ़ापे को देखते हुए लड़के की शादी शीघ्र ही करना चाहते हैं।"

विकास— "तो फिर क्यों न उनसे मिलकर कहा जाये कि वे अपने सुयोग्य पुत्र प्रसाद की शादी सुयोग्य कन्या आमना से कर लें।"

प्रेरणा— "कहने के लिये किसे भेजूँ ? जाने वाला ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो गाली भी खा सके।"

विकास— "मेरे खयाल से बाल्मीकि जी को ही भेजना उचित होगा। उन्हें सेठों की गाली खाने का बहुत अभ्यास है।"

प्रेरणा— "तो फिर चलो बाल्मीकि जी के पास चलें।"

प्रेरणा और विकास उठकर बाल्मीकि जी की तरफ चल दिये। कुछ ही दूर चले होंगे कि आमना और प्रसाद आते हुए दिखाई दिये। अवसर पाकर प्रेरणा ने उन्हें टोक दिया। मुस्कराती हुई बोली— "जोड़ी बहुत अच्छी है, मेरे खयाल से तुम दोनों शादी कर लो।"

सुन कर आमना और प्रसाद मुस्करा दिये। हल्की लाज की झलक की झलकती हुई मुस्कान ही में आमना ने कहा— "पैरों की धूलि क्या कभी मुकट-मणि भी बन सकती है ! कहाँ मैं एक पखाना ढोनेवाली की बेटी और कहाँ ये बड़े सेठ के लाडले बेटे !"

प्रसाद— "बड़ा होना भी मुझे आज पाप लग रहा है, क्योंकि आमना जैसी रत्नगर्भा धूलि मुझे नहीं मिल सकती।"

प्रेरणा— "यदि चाह सच्ची है तो क्या नहीं मिल सकता !"

इतना कह प्रसाद और आमना के सामने पथ-रेखा खींचती हुई सी प्रेरणा विकास के साथ आगे बढ़ गई। और आमना प्रसाद के साथ छात्रावास की तरफ चली।

दोनों की चाल से ऐसा लग रहा था जैसे एक दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं पर झिझक कहने नहीं देती। आखिर आमना ने ज़बरदस्ती संकोच छोड़ते हुए कहा— "जो मैं बहुत बार मन ही मन में सोचा करती थी, वह आज प्रेरणा बहिन जी ने कह दिया। लेकिन सोचा हुआ क्या कभी पूरा भी होता है? हमारा आपका साथ दो चार दिन का और है।"

प्रसाद— "क्यों, फिर तुम कहाँ चली जाओगी?"

आमना— "जहाँ शादी होकर लड़की जाया करती है।"

प्रसाद— "चलो अच्छा हुआ! शादी की जो थोड़ी बहुत इच्छा थी वह भी सदा के लिये समाप्त हो जायेगी।"

आमना— "क्या आप अविवाहित ही रहेंगे?"

प्रसाद— "नहीं तो फिर क्या करूँगा? किससे शादी करूँगा? क्या उससे जिसे हृदय स्वीकार नहीं करता?"

आमना— "हृदय किसे स्वीकार नहीं करता और किसे स्वीकार करता है?"

प्रसाद— "हृदय जिसे चाहता है वह किसी दूसरे की होने जा रही है और हृदय जिसे नहीं चाहता पिता जी मेरे गले से बाँधना चाहते हैं।"

आमना— "बँधना न बँधना तो एक शिक्षित के अपने हाथ में है।"

प्रसाद— "तभी तो पैरों में ज़ंजीरें नहीं डालूँगा।"

आमना— "इसका यह अर्थ तो नहीं कि विवाह किया ही न जाये। शादी तो जीवन में आवश्यक है।"

प्रसाद— "चाहे मिट्टी ही से की जाय, कर अवश्य लेनी चाहिये?"

आमना— "पैसे वाली दुलहन क्या कभी मिट्टी की होती है? मिट्टी की दुलहन तो महलों के पीछे नाली के किनारे पड़े छप्पर में रहती है।"

प्रसाद— "छप्पर को छोड़ कर जो महलों में आती है वह महलों का मूल्य समझ सकती है। लेकिन जो महल से मकान में आती है वह महल के घमण्ड में अन्धी होती है? इसलिये मैं धन की मूर्ति से शादी करने का विचार छोड़ चुका हूँ, और छप्पर की चाँदनी मुझे मिल नहीं सकती।"

आमना— "छप्पर की चाँदनी को छप्पर की दुर्गन्ध के कारण छोड़ तो नहीं दोगे? यदि तैयार हो तो आमना को अपनी बनालो!"

प्रसाद सुनकर मौन हो गये। आमना ने उन्हें गम्भीरता में देख अश्रुप्रपात में कहा— "क्यों, काँप गये! इसलिये कि मैं एक भंगन की बेटी हूँ! इसलिये कि जाति का अहंकार धिक्कार रहा है!"

प्रसाद— "जाति का अहंकार तो नहीं धिक्कार रहा, पिता जी की भावनाएँ ज़रूर आ खड़ी हुई हैं। वे शायद इस से दुखी होंगे। फिर भी मैं उन पर अपनी इच्छा अवश्य प्रकट करूँगा, सम्भवतः वे मान जायें। और यदि वे नहीं माने तो मैं जीवन भर शादी न करने का निश्चय कर चुका हूँ।"

बातचीत बीच में अटकी रही। प्रसाद आमना को छात्रावास में छोड़ चल दिये। कुछ देर तक तो वे अपने आप से तर्क करते रहे और फिर मन ही मन में सोचते हुए गाँव की ओर चल पड़े।

विचारों में डूबे हुए धीरे धीरे चल कर प्रसाद घर पहुँचे। बैठक में महेश्वरीप्रसाद एक बड़े पलंग पर लेट रहे थे। पुत्र को देखते ही पिता प्यार से बोले— "आ बेटा! मेरे पास बैठ जा!"

प्रसाद पिता के पास बैठ गये, और पिता के पैर दबाने लगे। पिता अपने लाडले बेटे से बहुत ही प्रसन्न थे और अब तो उन्हें उसकी योग्यता पर बहुत भरोसा था। उन्होंने पुत्र की कमर पर हाथ फेरते हुए कहा— "बेटा! मैं तो अब बूढ़ा हो गया। पता नहीं किस दिन बुलावा आ जाये। अब तुम ही सब सँभालोगे बेटा! तुम्हारा घर केवल ये चार दीवारें ही नहीं हैं, यह सारा गाँव तुम्हारा घर है। कहने को तो हम इस गाँव में बड़े हैं, लेकिन सच तो यह है कि हरिराम बापू के बाद कोई इस गाँव में बड़ा है ही नहीं। बड़ा वही है जो बड़े छोटे का भेदभाव न रक्खे। मेरा मतलब यह है कि तुम बड़े छोटे का भेद भूलकर सारे गाँव की सेवा करना। एक बात और, तुम्हारी शादी भी अब हो ही जानी चाहिये।"

प्रसाद— "पिता जी! शादी के बिना भी तो जीवन चल ही सकता है। व्यर्थ शादी के बन्धन में बँधना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

बातों के बीच में ही बाल्मीकि जी भी 'जयराम जी की' करते हुए वहाँ आ धमके। उन्हें देखते ही प्रसाद ने उठकर उनका स्वागत किया। स्वागत के उत्तर में बाल्मीकि जी हाथ जोड़ते हुए नीचे बैठने लगे। यह देख महेश्वरीप्रसाद ने उठकर उन्हें हाथ पकड़ कर उठाया और यह कहते हुए कि "आप यहाँ बैठिये!" अपने पास बैठा लिया।

प्रसाद पिता की इस महानता पर मुग्ध हो गया। बाल्मीकि भी महेश्वरीप्रसाद के इस व्यवहार से गद्‌गद्‌ हो गये। उन्होंने सेठ जी की तरफ श्रद्धा से देखते हुए कहा— "आज मुझे ऐसा लग रहा है जैसे देवता के मन्दिर में बैठा हूँ।"

महेश्वरीप्रसाद— "देवता किसी दूसरी दुनिया में नहीं रहते, इस दुनिया में जो सच्चा मनुष्य है वही देवता है।"

बाल्मीकि— "मनुष्य की खोज में इसी गाँव में मेरे बाल

सफेद हो हो कर झड़ गये। लेकिन इस गाँव में सच्चा मानव एक ही था, और वह था हरिराम बापू। या दूसरे मनुष्य के दर्शन मैं आज कर रहा हूँ।"

महेश्वरीप्रसाद— "हरिराम की मृत्यु के बाद मैं मनुष्य बन कर मरना चाहता हूँ।"

बाल्मीकि— "दुनिया बदलती जा रही है सेठ जी! सदियों से गड्ढे में गिरा हुआ मनुष्य ऊपर उठने लगा है। आज मनुष्य ने मनुष्य को दुःख की पहिचान करादी है। मानव की जागृति से पूंजीपतियों की दीवारें गिरती जा रही हैं और उस ज़मीन पर खड़ी हो रही है मानवता की दीवार। कुछ बुद्धिमान स्वार्थियों ने मानव को जन्म का पापी पुकार कर युगों तक इन्सानों पर राज किया। लेकिन अब शिक्षा के प्रकाश ने मनुष्य की आँखें खोल दी हैं। आज मनुष्य भंगी चमार का भेद अभिशाप समझने लगा है।"

महेश्वरीप्रसाद— "हाँ, यह तो है, पर भंगी चमार भी अब सर पर चढ़ते हैं। उनकी वह सेवा की भावना अब भागती जा रही है।"

बाल्मीकि— "हर अच्छी बात में कुछ न कुछ दोष भी होता है सेठजी! आप की कृपा से किसी दिन मनुष्य अपनी हर मूर्खता को त्याग देगा।"

महेश्वरीप्रसाद— "अच्छा बाल्मीकि जी! अब 'पूनम' की शादी की सलाह है। इन गर्मियों में ही लगन बनता है।"

बाल्मीकि— "बड़ी खुशी की बात है सेठ जी! पर प्रसाद की शादी किसी बड़ी पढ़ी लिखी लड़की से होनी चाहिये।"

महेश्वरीप्रसाद— "लड़की पढ़ी लिखी तो नहीं है, हाँ दहेज खूब आयेगा।"

बाल्मीकि— "सेठ जी! दहेज तो दो दिन का होता है। किन्तु लड़के और लड़की का जीवन भर का सम्बन्ध है।"

महेश्वरीप्रसाद— "यह तो तुम ठीक कहते हो, पर हमारी जाति में तो लड़कियों का पढ़ना बुरा समझा जाता है।"

बाल्मीकि— "लड़की का पढ़ना तो बुरा नहीं सेठ जी! और यह जातपात की बात तो अब छोड़ देनी चाहिये।"

महेश्वरीप्रसाद— "मैं तो मानता हूँ, पर अभी सब तो नहीं मानते।"

बाल्मीकि— "एक को देखकर दूसरे की हिम्मत होती है। आप शुरू करिये, फिर सब करने लगेंगे।"

महेश्वरीप्रसाद— "लेकिन मैं तो सेठ कर्मचन्द जी को ज़बान दे चुका हूँ।"

बाल्मीकि— "वह ज़बान बदलने में कुछ हानि नहीं जिससे कल्याण होता हो। मैं आप को ऐसी लड़की बताता हूँ जैसी लड़की इस देश में शायद दूसरी नहीं होगी।"

महेश्वरीप्रसाद— "बताइये! शायद मेरा खयाल बदल ही जाय।"

बाल्मीकि— "आप प्रसाद की शादी आमना से कर दीजिये!"

महेश्वरीप्रसाद— "कौन आमना?"

बाल्मीकि— "हमारे विद्यालय की एक होनहार छात्रा, जिसने एम. ए. करके डॉक्ट्रेट की योग्यता प्राप्त कर ली है, जिस में कोई कमी नहीं, एक कमी शायद ईश्वर ने भूल से छोड़ दी है।"

महेश्वरीप्रसाद— "वह क्या?"

बाल्मीकि— "यही कि वह एक भंगन की बेटी है।"

महेश्वरीप्रसाद— "तो क्या तुम मेरे लड़के की शादी भंगन की बेटी से करना चाहते हो ? जानते हो इसका परिणाम ! जाति मेरा हुक्का पानी बन्द कर देगी ।"

बाल्मीकि— "आप घबराइये नहीं, आज करोड़ों कण्ठों की राष्ट्रीय आवाज़ के सामने जाति की आवाज़ कण्ठ से निकलने से पूर्व ही मर जायेगी ।"

पूर्णिमाप्रसाद जो अब तक चुप बैठा था अब अवसर पाकर बोल उठा— "पिता जी ! वह लड़की सचमुच बहुत योग्य है। मेरी इच्छा भी उसी से शादी करने की है। अन्न को क्या कोई इसलिये फेंक देता है कि वह खाद से पैदा होता है ?"

महेश्वरीप्रसाद— "क्या तू भी यही चाहता है ? तो फिर मैं बीच में रोड़ा बनना नहीं चाहता। बहू के साथ ज़िन्दगी तुझे काटनी है, मुझे नहीं। जिससे तेरा जी चाहे विवाह कर ले। लेकिन मैं बाप दादा की हँसी उड़ने से पहले ही मरना चाहूँगा।"

प्रसाद— "यह नहीं हो सकता पिता जी ! आप का हृदय दुखा कर मुझे अपना कोई सुख नहीं चाहिये। आप जिसमें प्रसन्न हों वही मुझे स्वीकार है।"

महेश्वरीप्रसाद— "पूनम ! मैं तुझे समझता हूँ, तू मेरे घर का एक ऐसा होनहार दीपक है जिससे घर और बाहर दोनों जगह प्रकाश होगा। जब तू बच्चा था तो एक ज्योतिषी ने तेरा हाथ देखकर कहा था कि यह बालक एक दिन दुनिया का सबसे बड़ा आदमी होगा। मैं प्रगति के पथ पर बढ़ते हुए तेरे पैरों में ज़ंजीरें नहीं डालना चाहता। बाल्मीकि जी ! पूनम की शादी आमना ही से होगी। जाति के अहंकार की अनीति आज मेरे ही हाथों से दफनाई जायेगी।"

प्रसाद— "क्या आप प्रसन्नता से कह रहे हैं ?"

महेश्वरीप्रसाद— "मैं यह बेटे के प्यार के कारण नहीं कह रहा हूँ, राष्ट्रीयता की हुङ्कार से मेरा हृदय हिल गया है। जाति केवल मानव-जाति है। कर्म के अनुसार छोटी और बड़ी जाति मानना मानव का पतन है।"

बाल्मीकि— "आज यह गाँव गर्व से धन्य हुआ। मैं आपके पास यह प्रस्ताव लाता हुआ डर रहा था। व्यर्थ ही मनुष्य आशंका से सत्य को छिपाता है। हाँ तो सेठ जी विवाह के लिये हमारे पास केवल लड़की ही है।"

महेश्वरीप्रसाद— "तो और मुझे क्या चाहिये, सब ईश्वर की कृपा है यहाँ तो। जिसने बेटी दी उसने सब कुछ दे दिया। विवाह में किसी प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं, लेकिन एक प्रदर्शन अवश्य होगा कि शादी में छोटे बड़े सब बराबर के नाते से इकट्ठे हों।"

बाल्मीकि— "तो यह शादी हरिजन मन्दिर में ही होगी।"

महेश्वरीप्रसाद— "उससे पवित्र स्थान और कौन सा होगा। वह हरिजन मन्दिर नहीं, मनुष्य का मन्दिर है, जहाँ इन्सानियत की ज्योति जगमगाती है।"

* * * *

आज आमना और प्रसाद की प्रसन्नता की सीमा नहीं है। जिसकी चाह हो यदि वह मिल जाये तो उसे स्वर्ग मिल जाता है। प्रसाद को आज आकांक्षाओं की निधि आमना मिलने वाली है। आमना को आज प्रसाद में प्रभु मिलेंगे। वह आज फूली नहीं समा रही है, और समाये भी कैसे, उसकी साधना पूरी जो हुई है। उसे आज अपने पढ़ने का फल मिल रहा है।

"चलो आमना! मण्डप में सब इकट्ठे हो गये। अरे तुम अभी साड़ी ही नहीं बाँधकर चुकीं!" प्रेरणा ने बुज़र्गी दिखाते हुए कहा।

"दुलहन को अच्छी तरह सजा लें, तब ले चलेंगी बहिन जी!" विद्यालय की एक छात्रा रजनी ने आमना के जूड़े में गुलाबी गुलाब का फूल गूँथते हुए कहा।

"जल्दी से सजाकर ले आओ, सब प्रतीक्षा में हैं" कहकर मुस्कराती हुई प्रेरणा मण्डप की ओर चली गई और विद्यालय की छात्रायें स्नेह में डूबी हुई आमना का शृङ्गार करती रहीं।

"यह साड़ी बहुत शोभा नहीं देती रजनी!" "तो फिर वह गुलाबी रेशम की साड़ी ला ललिता! जो मोहिनी ने ढाके का रेशम कातकर बुनी थी, जिसमें तूने सोने के सुनहरी फूल काढ़े थे।" "नहीं, वह भी नहीं। लो यह पहिनाओ! यह कामिनी बहिन जी ने रेशम में सोने का तार मिलाकर बुनी है। वे अभी अभी मुझे यह साड़ी देकर मण्डप की तरफ गई हैं, और कह गई हैं कि यह साड़ी पहिना कर आमना को मण्डप में ले आओ।"

सखियों ने आमना का शृङ्गार बड़े प्रेम से किया। आमना सजकर आज ऐसी लग रही थी जैसे इन्द्राणी धरती पर उतर आई है। बड़े बड़े बारीक घुंघराले बाल, जिनमें गुँथे हुए प्रकृति के आभूषण पुष्प, ललाट पर रोली का कलात्मक टीका, माँग में स्वर्ण-रस मिश्रित सुनहरी कुंकुम, आँखों में लज्जा को चञ्चल करने वाला काजल, कपोलों पर कुदरत की तूलिका से भरी हुई लाली, अधरों पर दाँतों की कौंध से दमकती हुई मुस्कान, एवं वाह्य सौन्दर्य पर झलकती हुई सौम्यता का पूर्ण सौन्दर्य देखकर कौन कह सकता है कि यह भंगन की वही बेटी है जो छः साल की सड़क पर भुवारी देती फिरती थी।

छात्राओं की छाया-शिविका में सवार सौन्दर्य की अलबेली आमना खिसकती हुई चाँदनी सी मण्डप में पहुँची। उसके हृदय में लज्जा और

प्रसन्नता से स्पन्दन हो रहे थे। चित्त में चावों की घिचपिच थी। वह मन ही मन में असंख्य आशाओं के जाल बुनने में व्यस्त थी।

प्रसन्न प्रसाद को मण्डप में बैठा देख आमना सहसा और भी जगमगा उठी, और जगमगा उठा वह मण्डप जिसमें आज समाज मानव का मानव से सम्बन्ध जोड़ेगा, शताब्दियों से चली आती हुई अनीति की राह बदलेगी।

मानवीय पद्धति से मानव का सम्बन्ध सम्पन्न करने के लिये अग्नि देवी भी उपस्थित हो गई। प्रसाद और आमना विवाह के लिये आसन पर विराजमान हो गये।

आँचल से पल्ला बाँधा ही जा रहा था कि आवाज़ आई— "ठहरो!"

सब आश्चर्य से जिधर से आवाज़ आई थी उधर ही देखने लगे। किन्तु सभी को आश्चर्य चकित देख, और कहने वाला कोई न पा सब भ्रम समझ फिर आँचल से पल्ला बाँधने लगे। लेकिन फिर आवाज़ आई— "ठहरो! यह अधर्म हो रहा है।" और यह कहते हुए मण्डप ही में से साधूवेश में एक अपरिचित महात्मा उठकर खड़े हो गये।

आश्चर्य से सबकी आँखें उन महात्मा की ओर जा गड़ीं। चन्दन चित्रित उच्च ललाट, और हृष्ट पुष्ट शरीर को देखकर कोई भी यह सरलता से समझ सकता है कि महात्मा दृढ़ विश्वासी है।

प्रसन्नता में सहसा महा अपराध की तरह महात्मा को दृढ़ता से खड़ा देख आमना ने अन्तरात्मा की पुकार से कहा—"आप कौन हैं महात्मा! जो इस शुभ कार्य में अशुभ से उपस्थित होकर अपराध करना चाहते हैं?"

महात्मा— "अपराधी मैं नहीं, अपराधी तू है, जो शिक्षा के अहंकार में अपनी औक़ात को भी भूल गई। तू ही है जिसने सारे समाज को अंधा

बना दिया। ये आज अन्धों की तरह बैठे हैं, ये ऐसे अन्धे हुए कि आँखें होते हुए भी मुझे नहीं पहिचानते। मैं धर्म हूँ, धर्म!"

"नमस्कार धर्म देवता! ये सब अन्धे हैं, लेकिन आपको तो दीखता है न! तभी तो आपने रंग में भंग डाली।" आमना ने चिढ़ते हुए चिढ़ाने को कहा।

धर्म— "तेरी यह मजाल कि धर्म का उपहास करे! चार अक्षर क्या पढ़ गई देवताओं का भी तिरस्कार करने लगी। तू एक भंगन की बेटी है, तेरी शादी उच्च कुल में नहीं हो सकती।"

"क्यों नहीं हो सकती जब हम दोनों चाहते हैं, यह सारा समाज चाहता है।" प्रसाद ने क्रोध से कहा।

धर्म— "इसलिये कि यह धर्म-विरुद्ध है।"

आमना— "धर्म किसने बनाया महात्मा!"

धर्म— "ईश्वर ने।"

आमना— "झूठ है। समाज अपने सुख के लिये जो व्यवस्था बना लेता है वही धर्म है। यदि धर्म ईश्वर ने बनाये हैं तो सारे संसार में एक धर्म क्यों नहीं है? इतिहास साक्षी है कि धर्म बदलता रहा है। धर्म वही है जिससे मनुष्य को सुख मिले। यह धर्म नहीं कि मानव मानव पर अत्याचार करे, किसी को भंगी और किसी को चमार कहकर चन्दन लगाता रहे।"

धर्म— "यह धर्म का अत्याचार नहीं, भाग्य का फल है। जो जैसे पाप करके मरता है वह वैसे ही फलों के लिये जन्म लेता है। इसीलिये तो शूद्र के लिये शास्त्रों का पढ़ना निषेध है। क्योंकि शूद्र का जन्म यहाँ पढ़ने लिखने के लिये नहीं हुआ, नर्क भोगने के लिये होता है।"

आमना— "नर्क भोगने के लिये नहीं, धर्म की अनीति सहने के लिये। पंडितों ने सोचा कि अगर सब शास्त्रज्ञ हो गये तो हमारी महानता घट जायेगी, इसलिये मानव जाति के एक बड़े समूह को मूर्ख बनाये रक्खा। लेकिन इस मूर्खता का कलंक अब मिटकर ही रहेगा।"

धर्म— "यह विवाह नहीं हो सकता।"

प्रेरणा जो अब तक मौन बैठी धैर्य से सब सुन रही थी, अब हुंकारती हुई उठी और बोली— "महात्मा! मुद्दत से आप मनुष्य पर धर्म का अत्याचार करते चले आये हैं। आप भंगी की बेटी को मिट्टी की मूर्ति समझकर पैरों तले रौंदते रहे, क्या यह धर्म है? जिन शास्त्रों की तुम दुहाई देते हो वे उस समय के लिये उपयोगी विधान हो सकते हैं।"

धर्म— "उस समय के लिये ही नहीं, मानव का विधान ही वह है। उससे भटक कर मानव मिट्टी की मूर्ति ही बनता है।"

प्रेरणा— "धर्म का अर्थ है समाज की सुन्दर व्यवस्था, तो क्या समाज से भेद भाव का कलंक धो कर की हुई इस नयी रचना को आप पाप समझते हैं? शिक्षा की ज्योति से जगमगाती हुई आमना क्या किसी पुश्तैनी उच्चकुल की लड़की से कम है? आप धर्म हैं देवता! मानव जाति को उस अधर्म से मुक्त होने दीजिये जिसने उसे ऊँच नीच की फाँसी पर लटका दिया।"

धर्म— "तो क्या उन शास्त्रों को किसी गर्त में धर दें जो मानव की उन्नति के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं?"

प्रेरणा— "कौन कहता है उन्हें गड्ढे में फेंक दो! हमारे हरिजन विद्यालय के अतिरिक्त शायद ही और कहीं शास्त्रों का आपको अधिक मान मिले। वेद और शास्त्रों के विद्यार्थी जितने हमारे विद्यालय में हैं उतने क्या कहीं आप ने देखे हैं?"

धर्म— "जिस विद्यालय में शास्त्रों का आदर्श है उस विद्यालय में यह अधर्म क्यों हो रहा है ?"

सहसा शास्त्र विशेषज्ञ एक विद्यार्थी ने उठ कर कहा— "क्यों कि यह शास्त्र विरुद्ध विवाह नहीं है। धर्म को अभी अध्ययन की आवश्यकता है।"

धर्म की आँखें लाल हो गईं, उसने गर्जते हुए कहा— "मूर्ख! मुझे शास्त्र पढ़ाने आया है। शास्त्रों पर तो मेरा पैतृक अधिकार है। पीढ़ियाँ बीत गईं, लेकिन हमारा हक़ नहीं मिटा। हमारा ख़ानदान पंडित की सर्वोच्च पदवी पर बराबर बिराजता आ रहा है। हमारे दादा पड़दादा हमें कह गये हैं तुम धर्म देवता हो। वंश परम्परा के अनुसार हम धर्म के पंडित हैं।"

विद्यार्थी— "विद्या किसी के बाबा की सम्पत्ति नहीं होती। यह धन जो तपस्या से पढ़े उसी को मिल जाता है। विद्या किसी विशेष वंश की ही बपौती नहीं। केवल कुछ मन्त्र रट कर बगल में पोथी दाबकर ही कोई पंडित नहीं हो जाता। विद्या ही से व्यक्ति ऊँचे कुल का कहलाने का हक़ रखता है। मनुस्मृति में लिखा है कि :—

'शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥'

अर्थात् गुण कर्म स्वभाव के अनुसार नीच कुल का व्यक्ति ऊँचे कुल का और ऊँचे कुल वाला नीचे कुल का हो जाता है। और मनु, विदुर तथा महर्षि व्यास जैसे महाशास्त्रकारों का कहना है कि 'धर्म धर्म' चिल्लाने वाला ठग महात्मा नहीं होता। महात्मा वही मानना चाहिये जिसके आचरण अच्छे हों। केवल जन्म के आधार पर वर्णव्यवस्था मान मानव जाति पर अत्याचार करना उचित नहीं। आमना और प्रसाद का विवाह शुद्ध

शास्त्रोचित है। इतिहास में ऐसे अनेक आदर्श विवाह मिलते हैं। शास्त्रों का अर्थ अनर्थ नहीं। इस 'ब्राह्म' विवाह को अधर्म कह कर रोकना पाप है। मनु ने अनुलोम विवाह की अनुमति दी है।'

धर्म— "तुम्हारी नयी नयी व्याख्याओं से शास्त्रों के अक्षर नहीं बदल सकते। मेरा तिरस्कार करके पंडित कहलाने वाले समाज के नये व्यवस्थापको! कान खोल कर सुन लो, वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य समाज की नीव हट जायेगी और मनुष्य के सामने कोई व्यवस्था नहीं होगी।"

प्रसाद— "उस समय हम समय के साथ बदल जायेंगे। समय के साथ बदलना, और समय को बदलना यही तो राजनीति है। ये जितने महानुभाव यहाँ आज विराजमान हैं उनमें से आप के अतिरिक्त क्या कोई इस मत का है कि यह विवाह असंगत है?"

धर्म— "ये सब आज तुम्हारे मत के इसलिये हैं कि तुम्हारे पास राजनीति का चमत्कार है।"

"राजनीति नहीं, नैतिकता और मानवता का कहो धर्मदेवता! मैं करबद्ध विनय करती हूँ कि धर्म की संकीर्ण मनोवृत्ति छोड़ दो, इससे मानव जाति दुर्बल होती है।" आमना ने सरल भाव से कहा।

किन्तु धर्म अडिग रहा, वह टस से मस नहीं हुआ। वह चट्टान की तरह चेतन था। उसने अटल विश्वास से कहा— "यह विवाह अधर्म है, तुम चाहे सब एक स्वर में बोलो, लेकिन मैं इसका विरोध सदा करता रहूँगा। मैं ऐसी शादी में शामिल होना अधर्म मानता हूँ। इसलिये मैं विरोध करता हुआ यहाँ से जाता हूँ।"

क्रोध और अभिमान से आँखें निकालते हुए धर्मदेवता जंगल की तरफ चल दिये। संसार में सब को प्रसन्न करना क्या सम्भव है? मनुष्य

चाहता हुआ भी सब को प्रसन्न नहीं कर सकता। उस मण्डप में किसी की इच्छा नहीं थी कि धर्म देवता असन्तुष्ट हों, लेकिन फिर भी हुए। दुनिया में बहुत ऐसे होते हैं जो बहुत मनाने पर भी नहीं मानते। कितना ही कहो किन्तु उनकी नज़र टेढ़ी ही रहती है।

धर्मदेवता के चले जाने पर पल भर के लिये सन्नाटा छा गया। और क्षण भर विकास मन में यह सोचते रहे कि "अपनी तरफ से तो हमने उनका तिरस्कार नहीं किया, यदि फिर भी नाराज़ हो गये तो हम क्या करें ?" किन्तु दूसरे ही क्षण वे बोले— "विचार में क्या पड़ गये? विवाह का कार्य-क्रम शुरू करो ! कामिनी ! मंगल गीत गाओ !"

मंगल गीत गाये जाने लगे। प्रकृति प्रसन्नता से झूम उठी। उसके स्पन्दनों से नृत्य और गीत झर रहे थे। सत्य जब प्रकट होता है तो प्रकृति झूम ही उठती है। आज संसृति में आदर्श विवाह हो रहा है, फिर भला प्रकृति क्यों न गाये। पौधों से फूल बरसे, पराग उड़ा, मकरन्द झरने लगा। भाँति भाँति के मनोहर स्वर प्रकृति के कण से गूँज उठे।

प्रकृति के शुद्ध श्लोक वाचन में आमना और प्रसाद का परिणय संस्कार सम्पन्न हो गया। नवदम्पति को आशीर्वाद देते हुए विकास ने कहा— "आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि आज मनुष्य का मनुष्यता से सम्बन्ध हुआ है। यह आदर्श विवाह केवल विवाह ही नहीं है, अपितु मानव जाति का दीपक है। इससे मनुष्य-जाति संगठित, शक्ति-सम्पन्न और आनन्दमयी होगी। मानवता के मधु का यह शाश्वत स्रोत है। वर्षों पहले बोया हुआ वह पौधा जिसे मनुष्य के क्रूर हाथ बार बार उखाड़ फेंकते रहे और मनुष्य के कोमल हाथ जिसे बार बार अपनी समाधि पर बोते रहे, आज आँसुओं की सिँचाई के फल स्वरूप उस पर फूल का सुन्दर जोड़ा खिला है। फूल का यह जोड़ा

बहुत सुगन्धित और पवित्र है। अब इस बगीचे की सुन्दरता कुसुमकली के इसी जोड़े से बढ़ेगी।

"बगीचे के जो फूल खिलकर बूढ़े हो जाते हैं, वे काल के हाथों तोड़ लिये जाते हैं। हम तो अब बूढ़े हो गये। सुनहरी सृष्टि के चित्रकार अब तो प्रसाद और आमना ही हैं। मुझे इन पर भरोसा है। मनुष्य मर जाता है किन्तु आशा नहीं मरती। मैं अवश्य मरूँगा लेकिन मेरी महत्त्वाकांक्षा नहीं मरेगी। मनुष्य विकास की किरण इस तरह बढ़ती है कि नया पथिक उसे पकड़ता रहे और पिछला पथिक उसमें खोता जाये। जब कोई पथिक नये पथिक को किरण पकड़ाये बिना खो जाता है तो पतन को आगे बढ़ने का अवसर मिल जाता है और गति रुक जाती है। किन्तु मुझे गर्व है कि मैंने वे हाथ तैयार कर लिये जिन हाथों में दुनिया छोड़ मैं रहस्य में मिल जाऊँगा।

"हम सब के अथक प्रयत्नों से मानवता का जो सत्य आज प्रकट हुआ है वह पुण्य है। यह पुण्य मानव को सुख देगा और पाप से बचायेगा। बेमेल सम्बन्ध असम्बन्ध होता है। मनुष्य पाप नहीं करता, समाज की अस्वाभाविक व्यवस्था उस से पाप कराती है। जो अशिक्षित है वही शूद्र है और जो शिक्षित है वही उच्च। आज हमारे बनाये हुए इस संसार में कोई नीच नहीं। इस नये दूल्हे और दुलहन से संसार सौरभमय हो यही शुभकामना छोड़कर मैं अब नयी यात्रा करूँगा। बहुत देखी यह दुनिया, किन्तु कोई ऐसी दुलहन नहीं मिली जो दुनिया की नयी सुन्दरता पर रीझ कर खो न दी हो।"

आशीर्वाद वाचन करते करते विकास ने देखा कि आकाश में धुवाँ उड़ रहा है और दूसरे ही क्षण देखा कि आग की लपट भी हवा में उड़ी। तथा तीसरे ही क्षण शोर मचा गया— "दौड़ो! वैज्ञानिक के भवन में आग लग गई।"

सब उधर ही दौड़ पड़े। विकास ने दौड़ते हुए चीख कर कहा—"वैज्ञानिक कहाँ हैं?" "कई दिन से वे भवन ही में कुछ आविष्कार कर रहे थे" प्रेरणा ने उत्तर दिया। किन्तु इन सबसे पहले प्रसाद और आमना दौड़ कर आग के निकट पहुँच गये।

हवा से आग फैलती जा रही थी और वैज्ञानिक के भवन के सब दर्वाज़े बन्द थे। प्रसाद बराबर की छत पर चढ़ कूद कर वैज्ञानिक के भवन की पिछली छत पर आ गये और फिर छत से कूद भवन का पिछला दर्वाज़ा खोल दिया। सबसे पहले आमना और फिर भीड़ दर्वाज़े में घुसी। प्रसाद ने चिल्ला कर कहा— "भीड़ अन्दर न आकर आग बुझाये, नहीं तो यहाँ आने से सब भस्म हो जाओगे। इस कमरे में बारूद भरी हुई है।"

"तो तुम बाहर क्यों नहीं आते?" आमना ने अन्दर घुसते हुए कहा और भीड़ ने बाहर लौटते हुए।

"इसलिये कि वैज्ञानिक को आग से निकालना है!" अन्दर की ओर इधर उधर दौड़ते हुए प्रसाद ने कहा।

"वैज्ञानिक! वैज्ञानिक!! वैज्ञानिक!!!' आमना और प्रसाद ने पागलों की तरह भयंकर खतरों में चीखना शुरू किया।

प्रसाद और आमना ने देखा कि भयंकर आकृति में अधजला वैज्ञानिक अट्टहास करता आ रहा है। झुलसते हुए श्वासों में भयंकरता से हँसता हुआ वह बोला— "काँप उठे! डर गये इस आग से! किन्तु मैं आग से नहीं डरता। मैं जल गया, मुझे चिन्ता नहीं, चिन्ता है तो यह कि मैंने रहस्य खोज लिया था, किन्तु उसी खोज में से अग्नि धधक उठी। पता नहीं यह भयंकर आग क्या करना चाहती है। जब यह आग धधकी, तभी मैंने इसे बुझाने की कोशिश की, अपनी दोनों भुजाओं में ज्वाला को समेट लिया, किन्तु मेरे ही आविष्कारों ने अग्नि की मदद

की। बारूद में आग लग गई, ज्वाला प्रचण्ड हो उठी, मेरा सारा शरीर फूँक डाला। थोड़ी ही देर में यह शरीर नष्ट हो जायेगा।"

प्रसाद— "आपका शरीर ही नष्ट नहीं हो जायेगा, मुझे लग रहा है जो कुछ अब तक का निर्माण है वह सब भी राख होना चाहता है। देखते नहीं आग बढ़ती जा रही है, इस आग को किसी तरह रोको!"

वैज्ञानिक— "ये हाथ जल कर बेकार हो चुके हैं, इस आग के बुझाने का एक ही उपाय है, और वह है मेरे साथ तुम्हारी मौत। तुम्हें मेरे बताने के अनुसार आग के निकट ही यन्त्र चलाते रहना होगा।"

प्रसाद "मैं तैयार हूँ। यदि यह आग शान्त नहीं हुई तो सारा गाँव जल कर राख हो जायेगा। वर्षों के श्रम से जो रचना हुई है वह मिट जायेगी।"

"तो फिर चलो", कहता हुआ वैज्ञानिक प्रसाद को बिल्कुल आग के निकट ले गया! वैज्ञानिक ने जिस तरह बताया प्रसाद और आमना उसी तरह यन्त्र घुमाने लगे। कल से कल मिलती चली गई और कुवों का पानी आग पर बरसने लगा। आमना और प्रसाद पसीनों में नहा गये, पर आग तिल तिल करके घट रही थी।

घुमाते घुमाते एक झटके के साथ सहसा यन्त्र टूट गया और आमना मूर्च्छित हो गई। वैज्ञानिक ने चीख कर कहा— "अब कोई उपाय नहीं है, बाहर भागो जल्दी, जितनी दूर भाग कर जा सको भाग जाओ!"

आमना को उठाते हुए प्रसाद ने कहा— "तुम भी निकलो यहाँ से।"

वैज्ञानिक— "मेरा निर्माण ही मेरा घर था और मेरा निर्माण ही मेरी चिता है। मैं तो इसी में जलूँगा, किन्तु एक सन्देश लेते जाओ, कि मनुष्य इस आग को विज्ञान की पराजय मानकर हार न बैठे,

यह छोटी सी पुस्तिका लेते जाओ। इसमें मेरी खोज की विधियाँ हैं। मनुष्य यदि इससे आगे बराबर खोजता रहा तो एक दिन वह मेरे भस्मसात शरीर को निश्चित ज़िन्दा कर लेगा। मैं एक बार मनुष्य की पूर्ण विजय देखने के लिये ज़िन्दा होना चाहता हूँ। अब तुम जाओ!"

अपाहिज वैज्ञानिक वहीं अपने निर्माण को जलता हुआ देख अट्टहास करता रहा और प्रसाद पुस्तिका जेब में रख आमना को उठाये हुए दौड़ कर बाहर निकले। बाहर दूर दूर तक जनता की भीड़ भरी हुई थी। गंगा से अग्निकाण्ड तक जनता की पंक्तियाँ बँधी हुई थीं। मशीन से भी तीव्र गति से एक दूसरे के हाथों के पथ से गंगाजल आग बुझाने को दौड़ रहा था। विकास और प्रेरणा पसीने में लथपथ कुँवे से पानी पर पानी खींच रहे थे। कैलाश और सुमति रेत की टोकरियाँ भर भर कर आग पर डाल रहे थे।

किन्तु कामिनी विद्यालय की सबसे ऊँची छत पर चढ़ी हुई हृदय और कण्ठ को एक कर पंचम स्वर से मेघ राग अलाप रही थी। रागालाप में वह स्वयम् को भूल चुकी थी। उस पगली के कण्ठ का अलाप इतना लम्बा था कि स्वर बादलों से जा मिला। राग के आकर्षण में खिंच कर बादल दल आग के ऊपर मँडरा उठे! कामिनी, राग, और बादल आज मिलना चाहते थे। अलापते अलापते कामिनी को चक्कर आया और बिजली की तरह तड़पती हुई आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

और साथ ही आकाश से धूँ धूँ करती वर्षा होने लगी। इधर धधकती हुई आग और उधर बरसता हुआ तूफानी पानी देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो आग और पानी का घोर युद्ध हो रहा हो। धुवाँ, आग, पानी, कोलाहल! जान पड़ता है प्रलय से जनता का घमासान हो रहा है। पर वाह रे मनुष्य! वाह! जीवन हो तो ऐसा, जनता हो तो ऐसी! कितनी प्रबल है इसकी शक्ति! भयङ्कर आग

पर ऐसे बरस रही है जैसे आग को पी जायेगी। जिसे देखो वही आग पर बादल सा बरस रहा है।

ऊपर से बादल और नीचे से जनता, आग बीच में घिर लपक लपक कर ठण्डी हो गई। नाश होता होता रह गया। न जाने किस पुण्य से मनुष्य की सृष्टि जलने से बाल बाल बच गई।

ज्वाला शान्त हो गई। राख, कोयले और जले हुए खँडहर में सन्नाटा फुफकार रहा था। आगे आगे विकास और प्रेरणा तथा पीछे पीछे आमना, प्रसाद तथा कैलाश उदास मुद्रा में राख के ढेरों को इस तरह देखते हुए घूम रहे थे जैसे कुछ ढूँढ रहे हैं।

"पल भर में सारी रचना जल कर राख रह गई।" विकास ने आह भरते हुए कहा।

प्रेरणा— "इसी राख में कहीं उस महापुरुष की भी राख होगी जिसने मनुष्य को बहुत सी शक्तियाँ देकर ऊँचा उठाया।"

विकास— "मनुष्य के विकास का आज एक हाथ टूट गया। विज्ञान मानव-जीवन का मानवीय साधन है, उसका सदुपयोग ही तो मनुष्य का स्वर्ग है।"

राख में घूमते घूमते विकास ने एक जला हुआ भयंकर अस्थिपञ्जर देखा। उसी पर एक जला हुआ कागज़ पड़ा था, जिस पर जले हुए अक्षर पढ़ने में नहीं आते थे। किन्तु अनुमान होता था कि यह वैज्ञानिक का ही कुछ लेख है। तो फिर अवश्य ही यह ठठरी वैज्ञानिक की ही है। विकास ठिठक कर वहीं ठहर गये। उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े। कुर्ते के पल्ले से आँसू पूछते हुए लम्बा श्वास लेकर उन्होंने कहा— "जिसके इङ्गित पर आग और पानी नाचते थे, आज उसकी ऐसी दशा! उस विराट की लीला भी कैसी विचित्र है! संसार में महाशक्ति भी काल

से नहीं बचती। यह दुनिया क्या है— राख का खिलौना, कागज़ की गुड़िया, बुलबुलों की तस्वीर, जिसने मनुष्य को नचा रक्खा है। यह सुन्दर रचना रेत की दीवार ही तो है, जो स्वयम् ही गिर पड़ती है।"

प्रेरणा— "राख का मनुष्य और मनुष्य की राख, यही तो सृष्टि-क्रम है। सचमुच वैज्ञानिक विश्वास का महान आदर्श एवं महायोगी था, जिसने सिद्धि के चरणों में अपना अन्तिम अपनत्व भी चढ़ा दिया।"

वैज्ञानिक की ठठरी पर आँखों का अर्घ्य चढ़ाते हुए सब ठठरी के समीप राख के ढेर पर बैठ गये। विकास सफेद चादर से जला हुआ शव ढकने को झुके। ठठरी पर कफ़न डालते हुए विकास की आँखों से आँसू भी गिर पड़े। आँसू गिरने के साथ ही साथ उसके मुँह से निकला— "लगन और विश्वास हो तो ऐसा!"

विकास यह कह ही रहे थे कि कानों में आवाज़ आई— "कामिनी विद्यालय के पीछे की दीवार के सहारे मूर्च्छित पड़ी हैं, उनके सर से खून बह रहा है।"

सुनते ही सब उधर दौड़ चले। पास पहुँचे तो देखा कि कामिनी मरणासन्न दशा में मूर्च्छित है। उसके सर के रिसते हुए खून से उसका सारा सर और मुँह सिन्दूर-स्नात हो रहा है। देखते ही कैलाश को ऐसे लगा जैसे वह ज़िन्दा जला दिया गया। कैलाश, प्रेरणा, सुमति और विकास ने मूर्च्छित कामिनी को हाथों पर उठा लिया, और कमरे में ले आये।

डॉक्टर ने आकर कामिनी को देखा और निराशा से कहा— "हालत बहुत खराब है, जैसी ईश्वर की इच्छा होगी।"

दवा देकर डॉक्टर चला गया। प्रेरणा, आमना, सुमति, कैलाश, विकास आदि उदास बैठे कामिनी को देखते रहे। कई घण्टे तक

कामिनी मौन पड़ी विचित्र तरह से श्वास लेती रही। लगभग रात के तीन बजे होंगे जब कामिनी ने ज़रा आँख खोली।

आँख खोलते ही उसने हल्की आवाज़ में कहा— "आग बुझी या नहीं?"

प्रेरणा— "आग बिल्कुल शान्त हो गई कामिनी!"

कामिनी— "वैज्ञानिक कहाँ है?"

प्रेरणा— "इसी मिट्टी में कहीं खो गये हैं।"

कामिनी— "यह मिटी हुई दुनिया फिर से बनाई जा सकती है, यदि बनाने वाला न मिटे तो। मुझे चिन्ता आग की इतनी नहीं, वैज्ञानिक के जलने की अधिक है।"

आमना— "वैज्ञानिक का भौतिक शरीर चाहे आज धूलि में मिल गया हो, लेकिन उनकी आत्मा इस पुस्तिका में अमर है। मरने से पहले वे यह ज्ञान संसार के हाथों में सौंप गये हैं।"

कामिनी— "मनुष्य पुस्तक में अपनी पूरी बात कभी नहीं लिख पाता। पुस्तक सदा अधूरी रहती है। जीवन की पुस्तक क्या कोई पूरी लिख सकता है!"

आमना— "एक नहीं तो दूसरा मनुष्य पुस्तक पूरी करने का प्रयत्न करेगा।"

कामिनी— "यह आशा ही तो जीवन की सहचरी है। अच्छा आमना! तू वह गीत गा जो प्रभात लिखता लिखता मरा था। गा वह अधूरा गीत! उस अधूरे गीत में भरी हुई संसार की सम्पूर्ण निर्ममता से दया के तार झंकृत करदे! अब मैं गा नहीं सकती। मैं गा नहीं सकती तो जी भी नहीं सकती। इन श्वासों की टूटती सी झनकार अब बहुत थोड़ी देर की है।"

कहते कहते कामिनी कभी अच्छी तरह बातें करती और कभी बहकने लगती। "कैलाश बाबू! मैं तुम्हें छोड़ कर जा रही हूँ। क्या करूँ? लाचार हूँ। तुम मुझे याद करके रोना मत, दुनिया में मन लगाना! प्रभात! ठहरो, मैं तुम्हें तुम्हारे गीत सुनाने वहीं आ रही हूँ। तुम दुनिया से अतृप्त गये हो न! मैं तुम्हें तृप्ति देने आती हूँ। क्या कहते हो, नहीं, मेरे पास न आना, मैं पाप हूँ, इसलिये जो कि मुझ से सदा घृणा करते रहे मैं उन से सदा प्रेम करता रहा। क्या कहा, संसार में वही धर्मात्मा है जो पैसे वाला है, वही पुण्यात्मा है जो धोखा देना जानता है। वे दिन बीत चुके प्रभात! देखो तो अब दुनिया कितनी सुन्दर है! किन्तु अब तुम तो हो ही नहीं, मैं भी नहीं रहूँगी क्या? यह दुनिया सुन्दर तभी होती है जब सुन्दर देखने वाला मर जाता है। तो क्या सुन्दरता सदा विधवा रहती है? सच कहते हो, सौन्दर्य का दूसरा नाम आँसू है। अच्छा आमना! तू वीणा बजा, मैं गाऊँगी।"

आमना ने वीणा उठाई, कामिनी गाने को उत्सुक हुई। किन्तु तार टूट गये।

एक साथ आवाज़ गूंजी— "कामिनी!"

११

"यह दुलहन ! कितनी सुन्दर और मादक है ! किन्तु कुछ नहीं, जवानी की मदिरा बुढ़ापे की कसैली हवा में उड़ जाती है। बुढ़ापा आगया, पर प्रश्न अभी अधूरे हैं। वाह रे दुनिया बनाने वाले ! तू ही बनाता है और तुझे ही बिगाड़ते देर नहीं लगती। तो तू आखिर क्या है ? कहाँ है तेरा घर ?" जीवन से ऊबे हुए विकास ने मन ही मन में कहा। वे और भी अपने आप से न जाने क्या क्या कहते रहते कि प्रेरणा ने आकर उनका ध्यान दो तरफ बाँट दिया।

प्रेरणा पास बैठकर विकास के सफ़ेद बालों पर हाथ फेरते हुए बोली— "किस चिन्ता में डूब रहे हो स्वामी !"

विकास— "कुछ नहीं, प्रेरणा ! जीवन में चिन्ता के अतिरिक्त और है ही क्या ! यहाँ मनुष्य खोया हुआ कुछ खोजता ही रहता है।"

प्रेरणा— "जीवन चिन्ता के लिये नहीं, स्वाद के लिये है नाथ!"

विकास— "जीवन की आकांक्षा यही होती है किन्तु मनुष्य राख से चपटा रहता है।"

प्रेरणा— "राख से सुन्दर क्या कुछ है ! मिट्टी को असत्य समझना भूल है।"

विकास— "तो फिर राख ही क्यों न रमा लें ?"

प्रेरणा— "राख का पुतला राख लपेट कर आत्महत्या करना चाहता है !"

विकास— "जीवन इस तरह अखरने लगा है कि जीने को जी नहीं चाहता। इस मिट्टी की मूर्ति से मैं अब ऊब गया हूँ।"

प्रेरणा— "दुनिया से ऊबना आनन्द से ऊबना है।"

विकास— "मनुष्य इससे ऊबे नहीं तो क्या करे ? मनुष्य बनाता है और प्रकृति उसे नष्ट कर देती है। दुनिया के हर निर्माण पर मृत्यु का नृत्य है।"

प्रेरणा— "तो क्या मृत्यु के भय से मनुष्य को आत्महत्या कर लेनी चाहिये ? चेतना के क्षणों की हत्या करना अधर्म है। जब तक जीवन है तब तक कर्म करना मनुष्यता है। आपकी कर्मनिष्ठा का परिणाम यह लहलहाता हुआ युग है।"

विकास— "यह लहलहाता हुआ युग तो है किन्तु वे माली कहाँ हैं जिनके बलिदानों पर यह युग जगमगाया ? कहाँ हैं हरिराम बापू ? कहाँ है रामप्रसाद ? कहाँ है प्रभात ? कहाँ है कामिनी ? कहाँ हैं वे वैज्ञानिक ? वे बलिभूत आज कहीं नहीं। उन शहीदों की यादगार भी आज मिट चुकी है।"

प्रेरणा— "नहीं देव ! वे देवता अमर हैं। महापुरुष कभी नहीं मरते। उनका आत्मा ही तो यह सुन्दर निर्माण है। इस निर्माण में आज कितने ही हरिराम हैं, कितने ही रामप्रसाद हैं, कितने ही वैज्ञानिक हैं, कितने ही प्रभात हैं और कितनी ही कामिनी हैं। वे शहीद कितने

ही आत्मभू आत्मावलम्बी बना गये हैं। उनके जीवन का एक एक पल शत शत कल्प से भी बढ़ा हुआ है।"

विकास— "किन्तु उनका एक एक पल अश्रमिश्रित रक्तबिन्दुओं से भरा हुआ था, क्या कभी किसी ने यह सोचा ?"

प्रेरणा— "मनुष्य को दूसरे की बात सोचने का अवसर ही कहाँ मिलता है ? वह अपनी समस्याओं में ही इतना उलझा रहता है कि दयालु कहलाने का उसे समय ही नहीं मिलता। न जाने क्यों मनुष्य व्यर्थ ही दूसरे की दया चाहता है। वह स्वयम् ही अपने ऊपर दया कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। अपना हाथ और अपनी बुद्धि ही अपने हैं।"

विकास— "चोटी पर पहुँच कर भी आज मुझे असन्तोष है प्रेरणा ! मैं शान्ति के लिये छटपटा उठा हूँ। मुझे जीवन में दुःख सता रहा है, मैं सुख चाहता हूँ, सन्तोष चाहता हूँ।"

प्रेरणा— "सुख और सन्तोष ! कितना सत्य है इन शब्दों में, किन्तु असत्य की गहराई में ही इनका महत्त्व है। असन्तोष और दुःख के बिना प्रगति के पैर रुक जाते हैं। सुख और सन्तोष वही है जो ढूँढने वाले को पड़ा पा जाये। तुम सुख की खोज में बढ़ोगे पर पता नहीं क्या मिले, लेकिन अब तक तो कोई मनुष्य इतिहास में ऐसा है नहीं जो सुख की चाह में दुःख न भोगता रहा हो। इसलिये छोड़ो सब दुर्बल विचार। दुःख और सुख का संगम यह संसार ही सत्य है। यह धरती ही वह दुलहन है जो न कभी मरती है और न कभी विधवा होती है, जिसके शृंगार के लिये प्रतिदिन नये फूल खिलते हैं। मनुष्य इस दुलहन के चरणों में उत्सर्ग होने आता है। न जाने कितने उत्सर्ग हो गये इस रंगीली दुलहन पर !"

विकास— "किन्तु पता नहीं यह सुहागिन किस पर न्यौछावर होती है।"

प्रेरणा— "उस पर जो इस पर न्यौछावर हो जाये, जो दूर से इसकी पूजा करता रहे। यह रीझती है, किन्तु उस पर जो इसे सेवा से रिझाता है। यह जिस पर रीझती है वह कभी नहीं मरता। यह सत्युग में 'हरिश्चन्द्र' पर रीझी थी, त्रेता में 'राम' पर रीझी, द्वापर में 'कृष्ण' पर रीझी, और कलियुग में 'गाँधी' पर मुग्ध हुई। इसे मुग्ध करना चाहते हो तो ऐसे ही कोई महापुरुष बनो। वह देखो आमना आ रही है, ऐसे जैसे रश्मि प्रकाश की पगडण्डी बन कर आती है।"

इतने में आमना पास आगई, और आते ही बोली— "पता नहीं कैलाश बाबू को क्या हो गया। उनकी आँखें भयंकर दिखाई देती हैं। वे कभी बैठते और कभी घूमने लगते हैं। कोई उनसे बोलता रहो किन्तु वे कुछ उत्तर ही नहीं देते।"

सुनते ही प्रेरणा और विकास आमना के साथ चल पड़े। तुरन्त ही तीनों वहाँ आगये जहाँ कैलाश अविराम गति से घूम रहे थे। विकास ने देखा कि कैलाश का चेहरा एकदम विचित्र है।

कैलाश के कन्धे पर हाथ रखते हुए विकास ने कहा— "क्या बात है कैलाश बाबू!"

कैलाश ने चिढ़कर विकास का हाथ कन्धे से हटा दिया, और बिना कुछ उत्तर दिये फिर उसी तरफ घूमने लगे।

"यह क्या हो गया कैलाश बाबू को?" विकास ने प्रेरणा की ओर देखते हुए कहा।

"जान पड़ता है शोक ने इन्हें पागल कर दिया।" प्रेरणा ने स्तम्भित दशा में देखते हुए कहा।

"कैलाश बाबू ! देखते नहीं, हम सब तुम्हारे पास कौन खड़े हैं ?" विकास ने ज़रा ज़ोर से कहा।

सुन कर कैलाश लाल लाल आँखों से घूरने लगे, और फिर खिलखिला कर बड़बड़ा उठे— "कौन हो तुम ? कोई नहीं ! कहाँ हो तुम ? कहीं नहीं ! वह मधुप है, तुम कामिनी हो। कहाँ है कामिनी ? कहीं भी नहीं ! नहीं वह तो है, मैंने उसे देखा है, अभी देखा। तुम भी देखो ! मैं अभी ब्रह्म लोक में गया था, वह वहाँ थी। वह मुझे जल में मिली, वायु में मिली, अग्नि में मिली, उसको मैंने महत्त्व में पाया, प्रकृति में देखा। वही तेज में है, गीत में है, वह मेरे साथ आई, वह चली गई, वह फिर आयेगी। मेरे पास सब कुछ है, कुछ भी नहीं। क्यों नहीं, इसलिये नहीं, उसलिये नहीं। उसने कहा, मैंने सुना, राख है, कुछ भी नहीं।"

कैलाश की भयानक दशा देख विकास घबरा उठे। "आमना ! डॉक्टर को बुलाओ !" विकास और प्रेरणा एक साथ बोले।

"डॉक्टर ! डॉक्टर क्या करेगा ! मैं पागल नहीं हूँ। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह मुझे दिखाई दे रहा है। मैं सातों लोकों में भ्रमण करता रहा। आनन्द है वहाँ ! वहाँ विरह नहीं है। तुम भी मेरे साथ चलो। वहाँ सुगन्ध गाती है। इच्छा नृत्य करती है। मुझे अब किसी की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयम् में प्रसन्न हूँ। मुक्त हूँ मैं ! मुक्त !! जीवन का सुख मेरे पास है। अच्छा, मैं जाता हूँ ! यह मैं चला !"

विकास— "कहाँ जाते हो ?"

कैलाश— "जहाँ मन कहता है।"

विकास— "मन के पीछे नहीं बुद्धि के कहने पर चलो।"

कैलाश— "जीवन के दो क्षण हृदय की तृप्ति के लिये हैं। हृदय की तृप्ति में बुद्धि बाधक है। पीड़ा की चोट सह कर जिसने आनन्द का त्याग कर दिया वह जीवन जीवन नहीं।"

विकास— "पीड़ा की चोट सह कर जो सँभलता नहीं वह अपनी हत्या का दोषी होता है। आत्मानन्द में भूलने से संसार का कल्याण नहीं होगा कैलाश बाबू!"

कैलाश— "संसार का कल्याण करते करते बूढ़े हो गये, अब तो अक्षय आनन्द का मधु पियेंगे। जानते हो यह अक्षय मधु कहाँ है? वहाँ है, यहाँ है, सब जगह है। तुम मुझे पागल समझते हो न? इस पागलपन में ही तो आनन्द है। मैं रोऊँगा नहीं, बिल्कुल नहीं रोऊँगा। मैं रोऊँगा तो तुम मुझे देखकर हँसोगे। तुम समझते हो मैं दुखी हूँ! मुझे कोई दुःख नहीं। मर जाओ मर गई तो, मैं क्या करूँ? मैं भी मरूँगा एक दिन, सभी मरेंगे, तुम भी मरोगे। मेरे बाबा मरे, बाबा के बाबा मरे, बाबा के बाबा के बाबा मरे। तुम भी मरोगे. तुम्हारे बाप भी मरे, बाप के बाप भी मरे, बाप के बाप के बाप भी मरे। इसी तरह न जाने कब से मरते चले आ रहे हैं, फिर कामिनी अगर मर गई तो मैं रोऊँ क्यों? दुनिया में सभी मरते हैं, मैं एक कामिनी के मरने पर ही क्यों रोऊँ, सभी के मरने पर क्यों नहीं रोता?"

विकास— "यह क्या पागलपन है कैलाश बाबू!"

इतने में आमना के साथ डॉक्टर आ गये। उन्हें देखते ही कैलाश बाबू बड़े ज़ोर से ठहाका लगाते हुए बोले— "डॉक्टर! मैं बिल्कुल ठीक हूँ, तुम व्यर्थ अपना समय नष्ट मत करो। मन और मस्तिष्क की दवा रोगी ही के पास होती है, वैद्य के नहीं। दुनिया में अपना इलाज मनुष्य आप ही कर सकता है।"

डॉक्टर रोगी की परीक्षा किये बिना ही यह कहते हुए चले गये—"कौन कहता है ये पागल हैं!"

"क्यों विकास! सुन लिया। कहते थे मैं पागल हूँ। दुनिया में कोई पागल नहीं होता, दुनिया पागल बना देती है।" कैलाश ने आकाश से ज़मीन की ओर आते हुए कहा।

विकास कुछ सोच में पड़ गये। सोचते सोचते ही वे बोले— "सचमुच तुम पागल नहीं हो, पर पागल बनना चाहते हो। तुम्हारी मौन पीड़ा तुम्हें बावला बनाना चाहती है। बोलो कैलाश! क्या बावले बन कर भटकने से भूल पर भूल नहीं होगी? मनुष्य का सत्य पीड़ा में पहचाना जाता है। चलो कैलाश बाबू! धरती को अभी तुम्हें बहुत कुछ देना है।"

कैलाश— "किन्तु कमर झुक चुकी है, हृदय हार कर निराशा को सत्य कहने लगा है।"

विकास— "जब तक जीवन है आशा का आँचल नहीं छूटता। आशा ऐसी दुलहन है जो कभी आकर्षणहीन नहीं होती। आशा का आकर्षण ही तो मनुष्य को मरने नहीं देता।"

कैलाश— "लेकिन मेरी आशा तो मर चुकी।"

विकास— "संसार में किसी की आशा तब तक नहीं मरती जब तक वह जीवित है।"

कैलाश— "संसार में कितने ही ऐसे ज़िन्दा हैं जो मृतक होते हैं पर जीने का बहाना करते हैं। मनुष्य जीवन भर सुख की खोज में छटपटाता है, किन्तु क्या सुख हाथ आता भी है?"

विकास— "सुख इस संसार से परे कहीं नहीं है कैलाश बाबू! मृत्यु की क्रीड़ा पर खेलती हुई जीव की ज़िन्दगी संतोष के लिये है।

जीवन का एक भी क्षण पश्चाताप की आग में जलाना नहीं चाहिये। मिटने वाली लहर पर जीवन का क्षण श्रम के लिये है। कर्म के बिना तुष्टि की कल्पना व्यर्थ है।"

कैलाश— "करने के लिये अब शेष ही क्या है! करते करते युग बूढ़ा हो गया और उसे सब कुछ मिल गया। आज मनुष्य आकाश में उड़ सकता है। समुद्र की छाती पर तैर सकता है। किन्तु करोड़ों कोस की दूरी मुट्ठी में बन्दी बनाने वाला यह युग अब भी दुखी है। प्रकृति मुस्कराती है, किन्तु मनुष्य नहीं मुस्कराता। मनुष्य की मुस्कान न जाने कहाँ चली गई!"

विकास— "क्या कोई ऐसा इतिहास है जिसमें धरती पर मुस्कराते हुए मनुष्य की कहानी अमर हो! मनुष्य सदैव अतीत को सुन्दर देखता है क्योंकि वह सामने नहीं होता। अतीत को रोने से भविष्य सुनहरी नहीं होगा। निराशा की दासता से मनुष्य अकर्मण्य हो जाता है। अकर्मण्यता छोड़ो! यह सारी सृष्टि यदि महानाश के विलोड़न में नष्ट हो तो भी मैं अकेला नूतन निर्माण के लिये श्रम करता रहूँगा। तुम यदि पीड़ा के पुजारी बन कर कर्म से ऊब गये हो तो जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ!"

कैलाश— "तुम कहाँ जाओगे?"

विकास— "धरती पर पेड़ लगाने।"

कैलाश— "जाओ लगाओ धरती पर पेड़, मैं तो धरती से ऊब कर हृदय में फूल खिलाने जा रहा हूँ। अब मेरी मंज़िल वह बन है जहाँ क्रूर हाथ खिले हुए फूल को मसलते नहीं।"

विकास— "लेकिन हवा से वहाँ भी फूल टूट कर गिर पड़ेंगे।"

कैलाश— "किन्तु वहाँ फूल टूटने की चिन्ता तो नहीं होगी।"

विकास— "तो तुमने जीवन संग्राम से हार मान ली !"

कहते हुए विकास प्रेरणा के साथ उद्योगशाला की ओर चल पड़े। किन्तु कैलाश के हृदय में फिर नयी उथल पुथल मच गई— "जीवन संग्राम से हार मान ली ! जीवन! जीवन !! पता नहीं जीवन क्या है ! यह क्रूर बड़े बड़े अवतारों को रुला देता है। जीवन वह स्वादिष्ट ज़हर है जिसको पीता पीता मनुष्य ऊबता नहीं। जन्मजात प्रवृत्तियों से बँधा हुआ प्राणी प्राणों की पीड़ा में बँधा पड़ा रहता है। मैं चेतन हूँ। नश्वरता की ज़ंजीरों में बँधना चेतन का जड़त्व है। मैं जड़ की ज़ंजीरों में नहीं बँधूँगा। अब मैं मुक्त हूँ, मुक्ति मार्ग ही मेरी मंज़िल है।"

सोचते सोचते कैलाश अपरिचित पथ की तरफ बढ़ चले। वे आज इस तरह चल रहे हैं जैसे उनके हृदय में कोई चाह है ही नहीं। जिस समय मनुष्य को भारी निराशा हो जाती है तो वह भावावेश में सारी चाहों की चिता जला देता है। कैलाश भी आज चाहों की चिता जला कर चले जा रहे थे कि सुमति ने पीछे से आवाज़ दी— 'स्वामी !'

कैलाश ठिठक कर खड़े हो गये। सुमति को सामने देख उन्होंने शांत भाव से कहा— "देवि ! मेरे पीछे क्यों आ रही हो ?"

सुमति— "पति को छोड़ कर पत्नी और किसके पीछे चले ?"

कैलाश— "कौन किसका पति, कौन किसकी पत्नी ! सब राख के नाते होते हैं यहाँ।"

सुमति— "ये राख के नाते यदि दुनिया में न हों तो फिर यहाँ कौन कैसे जिये ? संसार में अगर एक दूसरे का सम्बन्ध मिट जाये तो कोई ज़िन्दा रहने की आशा ही न करे।"

कैलाश— "आशा ! कितना प्रेम है मनुष्य को इससे, पर किसकी आशा पूरी होती है ! देवि ! मेरी आशा मर चुकी, अब मुझे कोई आशा

नहीं। न मेरा किसी से सम्बन्ध है, न मुझे किसी की चाह, यह सारी सृष्टि मेरी पत्नी है, इस सारी सृष्टि का मैं पति हूँ।"

सुमति— "तुम मुझे छोड़ कर यदि जाओगे तो तुम्हें कभी शान्ति नहीं मिलेगी।"

कैलाश— "मैं शान्ति की आकांक्षा भी छोड़ चुका हूँ देवि!"

सुमति— "तुम सब कुछ छोड़ सकते हो, पर मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते। भूल गये वह दिन जब बड़े चाव से मुझे दुलहन बनाकर लाये थे। वह रात कितनी मधुर थी! उस रात तुम कहते थे न, 'सुमति! हमारा तुम्हारा साथ कभी न छूटे। लोग व्यर्थ ही स्वर्ग की चाह करते हैं, सच्चा स्वर्ग तो स्त्री पुरुष का प्रेमपूर्ण संगम ही है'।"

कैलाश— "मैंने न जाने क्या क्या कहा और क्या क्या किया, यह कौन जानता है! मनुष्य कहता बहुत है पर कर बहुत कम पाता है। अपने किये पर मैं न जाने कितनी बार प्रसन्न हुआ और कितनी बार पछताया। अब इस दुनिया में अमृत और विष की घूँट पीता पीता मैं थक गया हूँ देवि! तुम मेरी थीं, पर अब मैं किसी को अपना नहीं मानता। मैं ममता की मधुरता से ऊब गया हूँ। तुम जाओ!"

सुमति— "कहाँ जाऊँ? आपके अतिरिक्त कौन है मेरा? मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी। स्त्री के लिये पति ही एकमात्र सम्बल है।"

कैलाश— "संसार में कोई किसी का सम्बल नहीं होता। संसार में अपने अतिरिक्त किसी को सम्बल समझना भूल है।"

सुमति— "स्वामी! संसार में स्त्री पुरुष के बिना नहीं चल सकती। स्त्री और पुरुष का साथ प्रकृति का नियम है। आपके पास न रहने पर दुनिया मुझे नोच नोच कर खा जायेगी। अकेली स्त्री के लिये समाज का

विष पीना मृत्यु को जीतना है। मैं आपको अकेला नहीं जाने दूँगी। जहाँ आप जायेंगे आपके साथ ही रहूँगी।"

कैलाश— "और अगर मैं मर गया तो?"

सुमति— "ऐसा न कहिये नाथ! पत्नी को पति से पहले ही मर जाना चाहिये। विधवा की ज़िन्दगी समाज से सहन नहीं होती। रो रो कर ज़िन्दगी काटना भी कोई ज़िन्दगी है?"

कैलाश— "मेरे पैरों में बेड़ियाँ न बनो सुमति! मुझे निर्द्वन्द विचरने दो। तुम चली जाओ, नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।"

सुमति— "मैं चली जाती हूँ स्वामी! आपके पैरों की बेड़ियाँ आज टूट जायेंगी।"

इतना कहकर सुमति वापिस लौट गई। कैलाश एक झटके के साथ आगे बढ़े। आवेश में वे चार कोस निकल गये। पर न जाने अब उन्हें क्या हो गया। वे पैर आगे बढ़ाते और मन पीछे लौटता— "तूने यह क्या किया? सुमति तेरे बिना कैसे रहेगी? कौन है उसका? वह मर जायेगी, आत्महत्या कर लेगी, अवश्य आत्महत्या कर लेगी! बहुत बुरा होगा। सचमुच मैं घोर पाप कर बैठा। न जाने मुझ पर अभी क्या क्या और बीतेगी! कहीं वह मर न जाये! मारा तो तूने ही उसे! मैं तो स्वयम् मरा पड़ा हूँ। मैं किसी से क्या कहता हूँ! अरे चल, अब तो चल जल्दी! यह पाप, वह पुण्य है! वह, यह, नहीं, नहीं! मैं क्या करूँ!"

मन के तूफ़ान में चक्कर काटते हुए कैलाश के पैर लौट पड़े। वह तूफ़ान सा पीछे दौड़ा— "सुमति! सुमति! मैं आ रहा हूँ।"

किन्तु कैलाश जब वहाँ पहुँचे तो विद्यालय के चौक में अर्थी बँध रही थी। आँखों में आँसू और हाथ में कफ़न लिये विकास कह रहा

था— "बहुत अच्छी थी बिचारी! लेकिन मौत तो किसी को नहीं छोड़ती। बेटी आमना! क्या कैलाश बाबू ने इस पर अन्याय नहीं किया?"

आमना— "कैलाश बाबू की तड़प मैंने अपनी आँखों से देखी है। इसलिये हृदय नहीं कहता कि उन्होंने अत्याचार किया है। एक दिन वे अकेले में चुपचाप रो रहे थे। अकेले में तो आदमी तभी रोता है जब उसे कोई सच्चा दुःख होता है।"

विकास— "लेकिन आमना! दुःख में मनुष्य को कर्त्तव्य नहीं भूलना चाहिये।"

"मैं कर्त्तव्य पूरा करने आ गया हूँ विकास! सचमुच मैं पापी हूँ। सुमति को छोड़कर गया था, सुमति मुझे छोड़ गई।" अपराधी की तरह आते हुए कैलाश ने कहा।

"ज़हर पीने के बाद तुम आ गये कैलाश! बहुत अच्छा हुआ! सुमति ने केवल एक यही इच्छा प्रकट की थी कि मेरी अर्थी मेरे स्वामी के कन्धों पर जाती तो अच्छा होता।"

सजा कर दुलहन को कन्धे पर उठा श्मशान की ओर ले चले। उस दिन बिचारी डोली में आई थी, आज अर्थी पर जा रही है। सचमुच चिता की शैया पर सुहाग की दुलहन सोती है।

श्मशान से लौटते ही विकास ने कैलाश से कहा— "मैं ज़मीन से मोती निकालने जा रहा हूँ, चलते हो मेरे साथ?"

कैलाश— "मेरी आँखों में बहुत मोती हैं, मुझे और मोती नहीं चाहियें।"

विकास— "तुम्हारी आँखों के मोतियों से धरती को कोई फायदा नहीं। पीड़ा हृदय की निधि है, दुनिया को दिखाने की वस्तु नहीं।"

कैलाश— "तो मैंने कब अपनी आँखों के आँसू दिखाने का प्रयत्न किया है!"

विकास— "तुम दिखाओ तो भी कोई देखने वाला नहीं है। इस लिये जब तक जीवन है तब तक कर्म में ही शान्ति है। जीवन का उद्देश्य कर्म है। मनुष्य का जन्म धरती से विवाह है। उसे यदि इस दुलहन में रस चाहिये तो वह इसका श्रृंगार करता रहे। इसका श्रृंगार आँखों के मोतियों से नहीं, श्रम के मोतियों से होता है। मनुष्य के श्रम से जब यह प्रसन्न होती है तो इसके सौन्दर्य से अमृत बरसने लगता है। खिले हुए फूलों से सौरभमयी दुलहन देखकर मनुष्य यहीं पर स्वर्ग पा लेता है। इस मिट्टी की दुलहन में वे सब रत्न हैं जिनके लिये देवताओं को श्रम करना पड़ा था।

"अच्छा अब मैं चला, बातों में समय खोने से दुलहन दूसरे के पास चली जायेगी। वसुन्धरा को वही वीर भोग सकता है जिसके पास श्रम की शक्ति है।"

कहते हुए विकास चल दिये और कैलाश चिन्तित से सोचते रह गये। सोचते २ कैलाश चल पड़े और कुछ दूर निकल गये।

जैसे जैसे कैलाश आगे बढ़ने लगे वैसे ही वैसे उनके कानों में शोर बढ़ने लगा— "मैं दुखी हूँ। मेरा एक ही बेटा था, वह मर गया। मेरा पति न मरता तो तुम मुझे चूँट चूँट कर न खातीं। अरे मैं लुट गया, मैंने पैसा पैसा जोड़ा था, डाकू सब लूट कर ले गये। मैं चार दिन का भूखा हूँ। मेरी माँ मर गई, मेरा भाई मर गया, मेरा बच्चा मर रहा है, मुझे दो आने दवा को दे दो। वह बड़ी कुल्टा निकली। तुम मुझसे प्यार करते थे, अब उससे क्यों करने लगे? तुम तो बहुत खुश मालूम होते हो? अरे मुझ से दुखी तो कोई भी नहीं दुनिया में। अजी उसे क्या दुःख है, उसे तो मज़ा आ रहा है। आँखों वालो! आँखें बड़ी नियामत होती

हैं। मेरा यही अपराध है कि मैंने तुम पर विश्वास किया। मेरे ही लिये उसने जान दे दी। मौत भी न जाने मुझ से क्यों रूठ गई। हाय ! ओह ! क्या पूछते हो ?"

हर ओर से पीड़ा की पुकार सुन कर कैलाश स्वयम् से कह उठे— "तुम ही दुखी नहीं हो, दुनिया में सभी दुखी हैं। अभी मनुष्य को मनुष्य के लिये बहुत कुछ करना है। मैं मनुष्य हूँ, मुझे कर्म करना चाहिये। जीवन का अर्थ घोर दुःख में भी स्वयम् को सँभालना है।"

कैलाश को हर जगह दुनिया दिखाई देने लगी। दुनिया देखते देखते मनुष्य थक जाता है पर ऊबता नहीं। ऊब भी जाता है तो खाली पड़ा पड़ा परेशान हो जाता है। परेशान होकर कैलाश फिर चल पड़े।

वे चलते रहे, किन्तु कहीं कामना की पूर्ति न मिली। हार कर वे एक साधू की शरण में पहुँचे और बोले— "महात्मा ! मुझे साधू बना लो, मैं संसार से ऊब कर तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं नहीं समझता कि मेरा लक्ष्य क्या है ? मुझे शान्ति दो !"

साधू— "तुझे अशान्ति क्यों हुई मनुष्य !"

कैलाश— "क्योंकि मृत्यु ने साथियों को छीन लिया।"

साधू— "तो मृत्यु को जीतना चाहते हो ?"

कैलाश— "मैं क्या चाहता हूँ, क्या भूला हूँ, क्या करूँ, कुछ नहीं जानता। मुझे साधू बना लो !"

साधू— "तू दुनिया में आया है पगले ! साधू बन कर क्या लेगा ! चार दिन की ज़िन्दगी है, आनन्द भोग !"

कैलाश— "आनन्द तो भाग्य से मिट चुका बाबा !"

साधू— "दुनिया में सब कुछ है बेटा !"

कैलाश— "किन्तु मेरे लिये तो कुछ भी नहीं।"

साधू— "तेरे लिये भी सब कुछ है, किन्तु एक तरह से।"

कैलाश— "वह क्या बाबा !"

साधू— "यही कि तू देवता बनने की इच्छा छोड़ दे। यह दुनिया देवता की नहीं होती।"

कैलाश— "आप साधू होकर यह कैसी बात कह रहे हैं ?"

साधू— "मनुष्य का कल्याण इसी में है कि दुनिया उसे साधू समझे और वह धूर्तों का गुरु हो। जो दूसरों को ठग नहीं सकता, भला करने वाले के पेट में छुरा नहीं भोंक सकता, उसे दुनिया में ज़िन्दा रहने का हक़ नहीं। मैं भी एक दिन देवता था, बहुत परोपकार किये, किन्तु परिणाम यह निकला कि अपना अपकार करता रहा। मैंने विश्वास करके जिसे अपना मित्र समझा उसी ने विश्वासघाती बन कर मुझ पर दाँत चलाये। जब मेरी आँखें खुलीं तो बहुत क्रोध आया, पर असमय में क्रोध को पीना ही अच्छा समझा। समय पा कर मैंने स्वयम् को सँभाला, मैं देवता से दुनिया का मनुष्य बना। जानते हो दुनिया का मनुष्य कैसा होता है ? मेरे जैसा, गेरुए वस्त्र किन्तु हृदय में छल कपट ! तुझे भला देख कर मेरी पहली भलमनसाहत जाग उठी, नहीं पहिले तुझ पर हाथ साफ करता और बाद में पूछता कि तू कौन है।"

कैलाश— "क्यों बाबा ! किसी के सताने से धर्म छोड़ बैठे ?"

साधू— "धर्म वही है जिससे अपना भला हो, चाहे दूसरे की हत्या ही करनी पड़े।"

कैलाश— "क्या दूसरे की हत्या करके भी मनुष्य का भला हो सकता है ?"

साधू— "दूसरे का भला अपना बुरा, और दूसरे का बुरा अपना भला है। मैं भलाई बुराई को खूब परख चुका हूँ। दुनिया उसकी है जो बगुला भगत हो।

कैलाश— "मैं अब तक पागल नहीं था, लेकिन तुम अब सचमुच मुझे पागल कर दोगे। जो कुछ जीवन में सबसे पहले किया था वह पाप था, जो कुछ करके आ रहा हूँ वह पुण्य समझता था, लेकिन तुम कहते हो हत्या धर्म है।"

साधू— "मैं जो कहता हूँ ठीक कहता हूँ। जब तक मैं भला बनकर पिसता रहा, तब तक सबने मुझे ठुकराया, और अब मैं सबकी आँखों में साधू हूँ, इसलिये कि भलाई करनी छोड़ दी। कितनी भलाई की मैंने उस के साथ, वह नीच, महानीच! तभी तो मुझे भलाई से घृणा हो गई।"

कैलाश— "कौन नीच? कौन महानीच महात्मा!"

साधू— "क्या करोगे सुनकर? तुम्हें मनुष्य से घृणा हो जायेगी।"

कैलाश का कौतूहल बढ़ने लगा। उसने उत्सुकता से फिर पूछा— "सुना दीजिये महात्मा!"

साधू— "तो सुनो! वह मनुष्य था, दो हाथ, दो पैर और नाक, कान, आँख, मुँह वाला; तथा वह पशु था, बेज़बान, सींगों वाला मनुष्य उसे बैल कहता था। दोनों ही मेरे पड़ौसी थे। मनुष्य टूटे से मकान में रहता था और बैल गर्दन झुकाये, खूँटे से बँधा मैदान में खड़ा रहता था। धूप में, जाड़े में, मेंह में, वह रस्से से बँधा ही रहता था। दोनों पड़ौसियों के साथ मैंने मित्रता जोड़ ली। पशु के साथ मेरी इतनी ही दोस्ती थी कि झूटे कूटे टुकड़े छिलके आदि जो जो बचते थे वे उसके आगे डाल आता था। या कभी कभी मुझे आते जाते देख वह मुँह

This book must be placed in a Soviet Temple instead of a college library

उठाकर आशा और श्रद्धा से मेरी ओर देख लेता था। और वह मनुष्य! वह तो मेरी आँखों में भगवान् था। यद्यपि पशु मुझे उसके साथ जाते देख मुँह फेर लेता था लेकिन मैं पशु की भाषा उस समय बिल्कुल न समझ पाया, और मनुष्य पर विश्वास करता रहा।

"किन्तु वह मनुष्य, जो ग़रीब था, जिसकी आँखों से आँसू बहते थे, जो बेरोज़गार था, मेरे हृदय का विश्वास बना रहा। उस समय तक मेरी धारणा थी कि मनुष्य कोई बुरा नहीं होता। यद्यपि बहुत बार उस बेज़बान पशु ने कहा कि यह आस्तीन का साँप है, लेकिन एक बार भी मैं सचेत न हुआ।

"मैं उस मनुष्य को रोज़ दूध पिलाता, स्वयम् नंगा रहता और उसे वस्त्र देता, स्वयम् भूखा रहता और उसे रोटी देता। पर सुनोगे उस मनुष्य ने मेरे साथ क्या किया?"

कैलाश— "क्या किया महात्मा?"

साधू— "मैंने एक घर बनाया, इसलिये कि उसमें मनुष्यता रहेगी, सच्चाई रहेगी और शान्ति रहेगी।"

कैलाश— "फिर?"

साधू— "उस घर के बनाने में मेरा तन लगा, मन लगा और धन लगा।"

कैलाश— "तन मन धन लगाकर आपका घर तो बन गया?"

साधू— "घर बन गया और बहुत सुन्दर बना, मैंने उस मनुष्य को टूटे फूटे घर से उसी घर में बुला लिया। अपने घर की ताली उसे दे दी, नये घर में आकर वह गरीब से अमीर बन गया। किन्तु ओह! कितना काला था उसका हृदय! जो भी घर में आता वह उसी से मेरी निन्दा करता। यहाँ तक उसने विष बोया कि जो मुझे भला समझते थे सब बुरा

समझने लगे। इतनी ईर्ष्या हुई उसे मुझसे कि वह मेरा ही सबसे बड़ा शत्रु बन बैठा। और मैं यह सब देखकर भी इस यत्न में रहा कि इसका हृदय बदल जाये, लोग यह न समझें कि कल तक ये मित्र थे और आज शत्रु। मेरे मन में यह भावना बनी रही कि बुरा करने वाले के साथ भी बुराई नहीं करनी चाहिये। किन्तु इसका परिणाम क्या निकला!"

कैलाश— "क्या निकला महात्मा!"

साधू— "उसने मेरे घर में डाका डालकर अपना नया मकान बना लिया। यही नहीं, एक दिन उसने मेरे घर में आग लगा दी। मेरे बाल बच्चे उसमें जलकर मर गये और मैं भिखारी हो गया।

"जब मैं सब कुछ स्वाह करके जाने लगा तो वह मनुष्य मुझे देखकर हँसा और वह पशु तड़प उठा। उसके मुँह से झाग आने लगे। उसने अपना सर दीवार से दे दे कर मारा, अपने गले में पड़ी रस्सी तोड़ने के लिये वह छटपटाने लगा। मैंने पशु के पास जाकर पीठ पर हाथ रक्खा, वह पैरों में गिर पड़ा। उस समय उसकी आँखों की भाषा पढ़ने लायक थी। इतनी सरल थी वह भाषा कि बेपढ़ा भी पढ़ सकता था। उन आँखों में लिखा था— मुझसे सेवा लो, मुझे खोलकर अपने साथ ले चलो, मैं तुम्हें अपने ऊपर किये हुए उपकारों का बदला दूँगा, तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति अपने पसीने से पा दूँगा। मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया, तुम न समझे। हताश अब भी न होओ! मैं अभी ज़िन्दा हूँ, तुम्हें ज़मीन से मोती निकाल दूँगा।"

कैलाश— "तो तुम उस बैल को साथ क्यों न ले आये?"

साधू— "इसलिये कि वह पराया था। मेरे पास तो चने खाने तक को पैसा नहीं था, फिर बैल की कीमत कहाँ से भुगता सकता था। अब सोचता हूँ किसी को ठगूँ, लूटूँ, और वह पशु अपना साथी बना लूँ।"

कैलाश— "किसी को ठगने लूटने की ज़रूरत नहीं। चलो मेरे साथ, रुपए मैं दूँगा, वह बैल खरीद कर ले आयें।"

साधू— "तो क्या मैं भूल रहा था कि दुनिया में भले हैं ही नहीं! आप मनुष्य हैं या पशु?"

कैलाश— "यह तो समय पर तुम्हारा हृदय निर्णय करेगा। सहसा तो दो हाथ दो पैरों वाले सभी मनुष्य दिखाई देते हैं। चलो, मनुष्य की दुनिया तो देख चुके, अब पशु की दुनिया भी देखें। वह बैल खरीद लायें।"

साधू कैलाश के कहने के अनुसार चल पड़े। चार घण्टे बराबर चलने के बाद दोनों दोघट गाँव में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक तरफ बड़ा घर ऐसे खड़ा था जैसे आग से जले बन में कोई छाल नुचा सफेद पेड़ खड़ा हो। और दूसरी ओर सूखा सफेद बैल भूखा खड़ा था।

साधू को देखते ही बैल ने गर्दन हिलाई, मानो अपने अन्नदाता का उसने स्वागत किया। साधू और कैलाश ने भी प्यार से उस पर हाथ फेरा और फिर यह कहते हुए दोनों बैल के मालिक के पास चले— "अब तुम हमारे साथ चलना मोनी! तुम उस दिन कहते थे न कि मुझे अपने साथ ले चलो, हम तुम्हें लेने आ गये मोनी!"

मोनी बैल के कन्धे उछलने लगे। वह अपने कन्धों के बल से मोती निकालेगा। साधू को दुनिया की दौलत देगा, सिर्फ झूठे कूटे टुकड़े जो उसने साधू के चबाये हैं, वह उन्हें हलाल करेगा।

साधू और कैलाश बैल के मालिक के पास पहुँचे। नमस्ते के बाद दो चार मिनिट तो इधर उधर की बातें चलती रहीं। बातें तो और भी चलती रहतीं, मगर कैलाश ने अपने मतलब की बात छेड़ दी। वे कुछ झिझकते से बोले— "हम आपका मोनी बैल ख़रीदना चाहते हैं।"

मालिक— "मोनी बैल को लेकर अब आप क्या करेंगे, वह तो सूख कर काँटा हो गया है। पता नहीं कैसी बीमारी हुई है, कुछ चीज़ मुँह से छूता ही नहीं। बहुत सी दवायें भी खिलाईं पर कोई लगती ही नहीं। एकदम न जाने क्या हो गया इसे। इस बैल की बदौलत मेरे घर में किसी बात की कमी न रहती थी। क्या पूछते हो इस बैल के बल की बात! एक बार मुक़दमे का काम था, दोघट से मेरठ बात ही बात में पहुँचा दिया। ताँगा पीछे पहुँचा और यह पहिले पहुँच गया। ऐसा बढ़िया बैल ढूँढे से नहीं मिलता, पर पता नहीं अब इसे किसकी नज़र लग गई। लेकिन ऐसी दशा में भी मैं इसे बेचना ऐसे समझूँगा जैसे बेटे को बेच दिया।"

साधू— "जैसे भी हो सके, यह बैल आप हमको दे दीजिये, हम इसे ठीक कर लेंगे।"

मालिक— "तो आप ठीक कर दीजिये, मैं आप की कृपा मानूँगा। और जो आप चाहेंगे नज़र कर दूँगा।"

कैलाश— "हम तो आप से बैल लेने आये हैं, आप इसे हमें दे दीजिये और जो चाहें वह हम से ले लीजिये।"

मालिक— "बैल तो मैं नहीं बेचूँगा। बड़ा भाग्यवान बैल है।"

कैलाश— "बेचिये नहीं, दान कर दीजिये!"

मालिक— "यदि आपसे कहा जाये कि आप अपने बेटे को दान कर दीजिये तो क्या आप करने को तैयार होंगे?"

कैलाश— "हाँ, यदि उससे किसी के प्राणों की रक्षा हो सकती है तो अवश्य कर दूँगा। आपसे मोनी हम इसलिये माँगते हैं कि संसार इससे दीपक देखेगा, सत्य इससे प्रकट होगा।"

मालिक— "ये आप कैसी बातें कर रहे हैं! क्या पशु भी मनुष्य को दीपक दिखा सकता है? क्या पशु से भी सत्य प्रकट हो सकता है?"

कैलाश— "क्या पशु के पास हृदय नहीं होता, बुद्धि नहीं होती! शायद वह सब कुछ समझता है, पर अहंकारी मनुष्य से कहता कुछ नहीं। वह गूंगा नहीं, शायद साधक है, मौन रह कर मनुष्य की पहिचान कर रहा है। देखना चाहते हो पशु की पहिचान तो चलो मेरे साथ, किन्तु इस शर्त पर कि मौनी सृष्टि के लिये दान देना होगा।"

मालिक— "जीत होने पर वृषभ और मैं दोनों ही आपके होंगे। बैल मेरा है, मैं उसे बहुत पहिचानता हूँ, यही नहीं वह मुझे बेटे की तरह प्यारा है, पर मैं यह नहीं मान सकता कि पशु मनुष्य से ऊँचा उठ गया है।"

कैलाश और साधू ने एक ही साथ कहा— "आप चलिये तो हमारे साथ, आप अपनी आँखों से देख लेंगे, और तब शायद यह वृषभ हमारा और आपका गुरु ही होगा।"

कैलाश और साधू के साथ मालिक उठकर खड़े हो गये। "चलिये साहब!" कहते हुए वे चले। आगे आगे साधू और बराबर बराबर पैर बढ़ा कैलाश और मालिक पलक मारते ही बैल के पास आ पहुँचे।

तीनों को देखते ही मौनी प्रसन्नता से उठ खड़ा हुआ। महान श्रद्धा और प्रेम से देखता हुआ वह तीनों के पैरों की ओर सर झुका कर खड़ा हो गया। उस समय भूखा और बूढ़ा बैल इतना विनम्र खड़ा था, जैसे वह इन तीनों के वियोग में ही अब तक भूखा और बूढ़ा था। इस समय कोई उसे देखे तो नहीं कह सकता कि यह वही भूखा बैल है जो कई दिन से रोगी है। इस समय वह इतना आनन्दमय दीखता था मानो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के सामने खड़ा है।

बैल को खोल कर साधू ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा, और रस्सा हाथ में पकड़ "आइये! कहता हुआ चल पड़ा।

आगे आगे साधू और पीछे पीछे बैल चल पड़ा। यह वही साधू है जो कुछ दिन पहिले इस मौहल्ले का एक भला निवासी था। पर आज उसे कोई मौहल्ले वाला नहीं पहिचानता। क्यों? क्योंकि अब वह बदल गया है। अब वह मालदार नहीं, गरीब है। अब वह मनुष्य नहीं, साधू वेश में देवता है। अब उसके सर पर रेशमी बाल नहीं, घोटमघोट है। लेकिन कोई चाहे न पहिचाने, पर मोनी ने तो अपने पुराने दोस्त को पहिचान ही लिया।

मालिक, मोनी, और कैलाश को साथ ले साधु अपने उस मकान पर आया जहाँ वह अभी कुछ दिन पूर्व शान से रहता था। लेकिन जब साधू घर में प्रवेश करने लगा तो मोनी आगे अड़ कर खड़ा हो गया। साधू ने मोनी की कमर पर हाथ फेरते हुए कहा— "देखो मालिक! देखो कैलाश! मोनी मना कर रहा है कि इस मकान में न जाओ, इस घर में मनुष्य नहीं ठग रहते हैं। मालिक! देखते हो इस पशु की पहिचान! यह कह रहा है, अब उससे मित्रता मत करो जिसकी मित्रता का दुष्परिणाम भोग चुके हो। मित्र के चोले में शत्रु बड़ा खतरनाक होता है मालिक!"

मालिक— "आपकी पहेली कुछ समझ में नहीं आ रही साधू!"

साधू— "अभी समझ में आ जायेगी मालिक। यह पशु है न?"

मालिक— "हाँ।"

साधू— "मैं यहाँ से हटा जाता हूँ, और फिर आप इस घर के सेठ से थाली में बढ़िया से बढ़िया भोजन लगवा कर इसके सामने लाना।"

मालिक— "फिर?"

साधू— "पहेली समझ में आ जायेगी।"

इतना कह कर साधू एक तरफ ओट में खड़ा हो गया, और मालिक ने घर के सेठ को आवाज़ दी। मालिक की आवाज़ पहिचानने से सेठ दर्वाज़े पर आये। अपने दर्वाज़े पर आज अपने पड़ौसी मालिक प्रतापनारायण को देख सहसा सेठ पहिले तो आश्चर्य में डूब गया। क्योंकि आज पहली बार मालिक उनके दर्वाज़े पर आये थे। लेकिन फिर तुरन्त ही सँभल कर बोले— "कहिये प्रतापनारायण जी! कैसे पधारे?"

मालिक— "कुछ नहीं सेठ जी! भीख माँगने आया हूँ, एक थाली भोजन चाहिये!"

सेठ— "भोजन तो इस समय तैयार नहीं है मालिक!"

मालिक— "तैयार करा दीजिये सेठ जी! एक साधू के लिये चाहिये। वह साधू मेरे घर का खाना नहीं खायेंगे, क्योंकि मैं जाति का अछूत हूँ न।"

सेठ ने एक बार मन में फिर सोचा कि बला टाल दूँ, लेकिन फिर उन्हें तुरन्त ही ध्यान आ गया कि मैं इस बार प्रान्तीय लोक सभा की सदस्यता के लिये खड़ा हो रहा हूँ, प्रतापनारायण के घर की बीस राय हैं, इसलिये भोजन की थाली भेंट करनी ही चाहिये।

"अच्छा प्रतापनारायण! बैठक में बैठो, मैं अभी भोजन तैयार कराता हूँ, लेकिन आपको भी यहीं भोजन करके जाना होगा। आप तो कभी आते जाते ही नहीं। पड़ौसी हो भाई! कभी कभी तो इधर भी दयादृष्टि कर दिया करो! इस बार चुनाव में खड़ा हो रहा हूँ, आपकी कृपा रहनी चाहिये!" सेठ ने बड़ी आवभगत करते हुए कहा।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं सेठ जी!" मालिक ने मन ही मन में मुस्कराते हुए कहा।

थोड़ी देर में थाली में भोजन सजकर आ गया और साधू भी ओट में से निकल कर बैठक में आ पधारे। साधु को सामने देखते ही सेठ आँखें सिकोड़ते हुए से बोले— "शायद मैंने आपको कहीं देखा है ?"

साधू— "बहुत अच्छी तरह देखा होगा, माँगते खाते फिरते हैं, कभी माँगने चले आये होंगे।"

सेठ— "तो भोजन पाइये!"

साधू— "आपके भोजन में मुझे विष मिला लगता है, इसलिये मैं नहीं खाऊँगा।"

"झूठ है, बदमाशी है। तुम साधू नहीं, असाधू जान पड़ते हो। इस अमृत से भोजन में विष बताते हो। जान पड़ता है तुम पागल हो गये हो।" सेठ ने बिगड़ते हुए कहा।

साधू— "पैसा पाकर हर आदमी पागल हो जाता है सेठ जी! नाराज़ क्यों होते हो, अगर इस भोजन में ज़हर नहीं है तो बाहर खड़े पशु को खिलाइये। देखिये क्या परिणाम निकलता है।"

सेठ ने गुस्से से थाली उठाई और बैल के सामने पहुँचा। क्रोध ही में उसने थाली पशु के सामने रख दी, लेकिन थाली और सेठ को देखते ही पशु मुँह फेर कर खड़ा हो गया।

सेठ भयभीत हो उठा, उसे स्वयम् पर अविश्वास होने लगा। "कहीं वास्तव में इसमें ज़हर तो नहीं है, साधू! आप बहुत पहुँचे हुए जान पड़ते हैं, सचमुच भोजन में ज़हर होगा, लेकिन मैंने ज़हर नहीं मिलाया।"

साधू— "ज़हर तुमने ही मिलाया है, तुम्हारे हाथ में विष लगा हुआ है। जानते हो मुझे, मैं कौन हूँ ? मैं साधू नहीं हूँ।"

सेठ— "समझ गया, आप पुलिस हैं।"

यह सुनकर साधू को हँसी आ गई। लेकिन तुरन्त ही गम्भीर होकर उसने कहा— "मैं पुलिस नहीं हूँ, तेरा वही मित्र हूँ, जिसे तूने बर्बाद कर दिया, जिसकी सम्पत्ति का तू मालिक बना बैठा है। तेरे हाथों में विष है, विष! जिस विष से मित्रता की हत्या की है। तेरी दोस्ती से एक पशु की दोस्ती अच्छी है। देख तुझसे पशु भी घृणा करते हैं, तेरे हाथ से इस पशु ने व्यंजन नहीं खाये, और देख मुझ भिखारी के हाथ से यह सूखे टिक्कड़ भी चबा लेगा।"

कहते हुए साधू ने अपनी झोली में से कई दिन के सूखे टिक्कड़ निकाले, और प्रेम से मोनी के मुँह की ओर बढ़ाये। मोनी ने लपक कर टुकड़े मुँह में थाम लिये, एवं प्रेम से चबाने लगा।

मालिक, सेठ, और कैलाश आश्चर्य से देखते रह गये। सेठ साधू के सामने लज्जा से ज़मीन में गड़ा जा रहा था। उसे लज्जित देख साधू ने प्रेम से कहा— "जो बीत चुकी उसे भूल जाओ सखे! मैं तुम्हारा मित्र था न, इसलिये तुम्हारी आँखें खोलने आया था।"

सेठ— "आँखें खुल गईं साधू! अब मुझे अवसर दीजिये कि आपके अपार प्रेम से अपने पाप धोलूँ, शेष जीवन साधू सेवा में बिता सकूँ।"

साधू— "साधू की सेवा से कुछ नहीं मिलेगा मित्र! साधू अब पशुओं की बस्ती में बस गये। तुम पशु सेवा करो, तुम्हें धर्म लाभ होगा और मुझे शान्ति मिलेगी, इसलिये कि मेरा मित्र मनुष्य धर्म का निर्वाह कर रहा है।"

सेठ देखता रहा और साधू चल दिया। मोनी, कैलाश और मालिक भी चल पड़े। राह में कैलाश ने कहा— "क्यो साधू! तुम्हें इस प्रतिशोध से सन्तोष तो है न!"

साधू— "शायद इस से बड़ा सन्तोष और इससे बड़ा प्रतिशोध होता ही नहीं।"

कैलाश— "मालिक! अब तो मोनी हमारा है न?"

मालिक— "मोनी भी तुम्हारा और मैं भी तुम्हारा।"

कैलाश— "जाने हम कहाँ जायें मालिक! तुम जहाँ से आये हो वहीं जाओ, हमारे साथ क्यों दुःख उठाने चलते हो। आप अपने घर जाइये।"

मालिक— "मेरा घर तो वहीं है जहाँ मोनी है, मैं मोनी को छोड़कर कहाँ जाऊँ? जहाँ मोनी है वहीं मालिक है।"

मालिक न माने और उधर हो चलते रहे जिधर मोनी के साथ साधू और कैलाश चले जा रहे थे। अब तक साधू आगे था, अब मोनी आगे हो गया।

रास्ते के तृण चरता मोनी चला जा रहा था और चला जा रहा था कैलाश दिल में दर्द लिये। चलता चलता कैलाश मोनी से बोला— "मोनी! मैं बहुत दुखी हूँ, ज़मीन पर मेरे लिये शान्ति न रही। क्या कहीं मेरी कामिनी मिल सकती है? क्या कहीं सुमति है?"

मोनी मूक रहा, और उसी तरह चलता रहा जिस तरह चल रहा था। निरन्तर चलने के बाद मोनी एक अत्यन्त रमणीक स्थान पर पहुँचा, जहाँ चारों ओर अभिन्न भिन्नता दीख रही थी। ये पर्वत और पर्वतों पर मँडराते हुए मेघ, यह पृथ्वी और पृथ्वी पर असंख्य रूप, इधर सौन्दर्य और सौन्दर्य में बसी हुई सुरभि, क्रन्दन, कोलाहल, वह सब यहाँ से कोसों दूर छोड़ आये।

यहाँ बैठकर मोनी सुस्ताने लगा। मोनी विश्राम के लिये पल भर बैठा होगा कि अलक्ष्य से आवाज़ आई— "ज़िन्दगी थककर बैठने के

लिये नहीं। संसार के सत्य ! तुम शिव से दूर भाग रहे हो। उठो और अपनी मंज़िल बदलो, कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

तीनों यात्रियों ने भी अलक्ष्य आवाज़ सुनी और आश्चर्य में आगये। कैलाश ने बड़ी ज़ोर से बोलते हुए कहा— "मैं भी किसी प्रतीक्षा में हूँ, पर पता नहीं क्या और कहाँ है वह।"

अलक्ष्य आवाज़— "प्रतीक्षा जब पूरी हो जाती है तो अलग कुछ रहता ही नहीं।"

कैलाश— "दुनिया बनकर बिगड़ जाती है और मनुष्य रोता रहता है, आखिर यह कैसी लीला है!"

अलक्ष्य आवाज़— "नाश और निर्माण, निर्माण और नाश, यही सृष्टि है।"

कैलाश— "लेकिन इस नाश और निर्माण में निवृत्ति क्यों नहीं!"

अलक्ष्य आवाज़— "प्रवृत्ति यदि न हो तो दुनिया न रहे।"

कैलाश— "तो शादी प्रवृत्ति से करनी चाहिये या निवृत्ति से!"

अलक्ष्य आवाज़ कुछ देर के लिये मौन हो गई और फिर गूँजी— "प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही मनुष्य की दुलहन हैं।"

कैलाश— "विचित्र बात है, जो मिलता है वही छोड़कर चल देता है। दुनिया छोड़कर चली जाती है और मैं रोता रहता हूँ।"

अलक्ष्य आवाज़— "सब छोड़कर चले जाते हैं और तू रोता रहता है, रोने वाले को दुनिया और छोड़ती है, इसलिये हँस और हँसाता रह!"

कैलाश बहुत ज़ोर से हँस पड़ा, ऐसे जैसे किसी की बेवक़ूफ़ी पर हँस रहा हो। और फिर हँसता हुआ ही बोला— "बड़ा बेवक़ूफ़ है मनुष्य!"

अलक्ष्य आवाज़— "तो तू बेवकूफ क्यों बनता है ?"

कैलाश— "इसलिये कि कौन और कहाँ है वह मनुष्य जहाँ अभाव नहीं ?"

अलक्ष्य आवाज़— "जहाँ ज्ञान है।"

कैलाश— "तो इस का अर्थ यह है कि मैं अज्ञान हूँ ?"

अलक्ष्य आवाज़— "ज्ञान तो तू पीछे छोड़ आया।"

कैलाश— "मैं नहीं छोड़ आया, मुझ से छीन लिया गया, काल ने छीना है, काल ने !"

अलक्ष्य आवाज़— "काल ने नहीं, तेरी दुर्बलता ने। तू कमज़ोर था, इसलिये ज्ञान से भटक गया।"

कैलाश— "मुझे दुर्बल कह कर मेरी ज़िन्दगी का उपहास उड़ा रहे हो ! मनुष्य की लाचारी पर हँसने वाले ! तुम भी रुलाने ही आये थे, लेकिन मैं अब नहीं रोऊँगा, नहीं रोऊँगा। मोनी ! चलो यहाँ से भी ! वहाँ चलो जहाँ जीवन उपहास न बनता हो।"

बूढ़ा मोनी उठा और फिर चल पड़ा। लेकिन इस बार उसकी दिशा दूसरी थी। वह जिधर चल रहा था उधर से आँधेरी घिरी आ रही थी। थोड़ी ही देर में आँधेरी ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। प्रकृति के भयंकर क्रोध ने जंगल हिला डाला। आँधी, पानी, हवा, यह क्या हो रहा है। जान पड़ता है आँसू का दुर्दान्त क्रोध उफनता आ रहा है। मानो आज धरा फट जायेगी। मानो आज पीड़ा के बन्धन खुल गये हैं। इस विभीषिका में पेड़ पत्तों की तरह उड़ना चाहते हैं। बड़े बड़े भूधर धूल बन कर धुएँ से बन जाते हैं। पशु पक्षी तिनकों की तरह उड़ रहे हैं। यह भूचाल है या भूतनाथ का नृत्य !

किन्तु इस तूफान में भी मोनी पैर जमाये चल रहा है, और चल रहे हैं उसके साथ कैलाश, साधू और मालिक।

तूफान को चीरता हुआ मोनी यात्रियों को वहाँ ले आया जहाँ एक गाँव खँडहर बना पड़ा था, और सहस्रों नौजवान खँडहरों में दबी ज़िन्दा और मुर्दा लाशें निकाल रहे थे।

"अरे! सेवा गाँव की यह आज क्या दशा है?" कैलाश ने मोनी, साधू और मालिक की ओर देखते हुए कहा।

साधू— "संसार में वह क्या है जिसकी मृत्यु नहीं होती। यह भी एक मृत्यु है, कल यह गाँव फिर ज़िन्दा हो जायेगा। देखते नहीं इस गाँव को जीवन देने वाले सहस्रों भगवान् श्रम कर रहे हैं।"

मालिक मौन न रह सके। उन्होंने चारों तरफ देखते हुए कहा— "न जाने कितनी बार गाँव बसता है और कितनी बार उजड़ता है। सत्युग उजड़ा, द्वापर उजड़ा, त्रेता उजड़ा और उजड़ता ही जा रहा है।"

लेकिन मोनी मौन ही रहा। वह सब की सुनता हुआ आगे बढ़ता गया। चलता चलता वह वहाँ जाकर रुका, जहाँ हरिजन विद्यालय के सैंकड़ों विद्यार्थियों के साथ आमना और प्रसाद भूकम्प से गिरे गाँव को सँवार रहे थे।

टोकरी में खँडहर की मिट्टी उठाती हुई आमना से कैलाश ने पूछा— "प्रेरणा और विकास कहाँ हैं आमना!"

आमना— "खँडहरों में ही या तो कहीं दबे पड़े होंगे, या कहीं दबे हुओं को निकाल रहे होंगे। बात फिर करना कैलाश बाबू! पहले नाश को निर्माण में बदल दो!"

सुनते ही साधू, मालिक और कैलाश भी खँडहर चिनने लगे। वैसे तो सभी इस समय पसीना बहा रहे थे, लेकिन मोनी का श्रम आज सब

से अधिक था। अपने कन्धों पर तेज़ी से मलबा ढोता हुआ वह मौन भाषा में कह रहा था, 'घबराओ मत, अब गाँव हरा किया।'

खँडहरों में खोया हुआ अतीत प्रत्यक्ष करने के लिये आज प्रत्येक की भुजाओं में बल है। साधू आज मज़दूर बना हुआ है, मालिक आज मज़दूर है, हरिजन विद्यालय के विद्यार्थियों की ज़िन्दगी आज भविष्य की ज़िन्दगी ढूँढ रही है।

खोदते, खोजते और बनाते हुए कैलाश जब गिरे हुए एक मकान की टूटी फूटी दीवार साफ़ कर रहे थे तो नींव के पास उन्हें कुछ चाँदी सोने के पुराने बर्तन दिखाई दिये। आश्चर्य से कैलाश ने और खोदा तो नींव के नीचे एक मीनार दिखाई देने लगी, जो शायद किसी बड़े महल की हो सकती है।

कैलाश के मुँह से निकला— "यह क्या महल के ऊपर झोंपड़ी!" और फिर ज़ोर से चिल्लाया— "सब इधर आओ! देखो यह महल के ऊपर झोंपड़ी!"

कैलाश की आवाज़ के साथ बहुत से दौड़ कर वहाँ आगये। मीनार देख कर आश्चर्य करते हुए सब ने उस स्थान को और खोदना शुरू किया। वे खोदते गये और महल प्रकट होता गया।

लेकिन महल ही प्रकट नहीं हुआ, उसमें कितनी ही हड्डियाँ भी प्रकट हुईं। साबुत मनुष्य की ऐसी हड्डियाँ जो वैसे तो ऐसे बिछी हुईं थीं जैसे किसी ने बड़ी सावधानी से खाल और मांस अलग करके ज्यों की त्यों सुरक्षित रख छोड़ी हैं, लेकिन छूते ही वे राख की तरह चुटकी में चिपक जाती थीं।

ठीक इसी अवसर पर आमना और प्रसाद के कन्धों पर हाथ धरे प्रेरणा और विकास भी वहाँ आगये। उन्हें देखते ही कैलाश ने कहा— "तुम

अब तक कहाँ थे विकास ! देखो यह दुनिया कैसी विचित्र है, यहाँ निर्माण पर नाश और नाश पर निर्माण होता रहता है।"

विकास— "मैं अब तक वहाँ था कैलाश ! जहाँ मनुष्य को रहना चाहिये। मृत्यु की कराली न जाने कितनी बार निर्माण डस चुकी है, और न जाने कितनी बार मनुष्य ने मृत्यु के पेट से अपनी निर्मिति निकाली है ! नाश देख कर भयभीत न होओ, आश्चर्य न करो ! तुम मनुष्य हो जिससे नाश हार मानता है।"

विकास अभी आगे और भी कुछ कहते, किन्तु गड़गड़ाहट करती हुई एक विशाल मूर्ति ने सहसा प्रकट होकर क्रोध से कहा— "घमण्डी मनुष्य ! अब भी तेरा घमण्ड चूर नहीं हुआ ! अब भी तू मृत्यु का उपहास कर रहा है ! देखता नहीं, तेरे बाल सफेद होगये। तेरा निर्माण तुझ पर अट्टहास कर रहा है। पीड़ा तुझे पीना चाहती है। पर तू अब भी घमण्ड नहीं छोड़ता !"

"मृत्यु उपहास नहीं तो क्या है ? मौत आज तक सब का उपहास करती रही है, लेकिन अब मृत्यु को अपना उपहास देखना होगा। तू ढहाती जा, और मनुष्य निर्माण करता रहेगा। तू हार जायेगी, मगर मनुष्य न हारेगा।" विकास ने विश्वास से कहा।

यह सुन वह विकराला काली से लाल लाल हो गई। उसने अपनी दोनों भुजायें इस तरह फैलाईं जैसे उनमें सारी सृष्टि समेट मसल डालेगी। किन्तु असंख्य हाथों ने उसके हाथ पकड़ कर मरोड़ दिये।

विकराला काँप उठी। जब उसने देखा कि पार नहीं बसा रही है तो वह छिपकर भागी। वह भाग कर सीधी अग्नि के पास पहुँची। घबराते और हाँपते हुए ही उसने कहा— "मेरी सहायता करो बहिन ! मनुष्य अब मुझ से नहीं डरता। मर्त्यलोक में मैं जिसे खाना चाहती हूँ वह मुझे

खाने को तैयार है। तुम चलो और भून भून कर मुझे देती रहो, मैं खाती रहूँगी।"

अग्नि— "किसे भूनूँ बहिन! किसे खाती रहोगी? उसे कौन भून सकता है जो स्वयम् आग बना बैठा है? उसे कौन खा सकता है जो अहिंसा के आसन पर विराजमान है! अब वहाँ मेरी नहीं चल सकती। वहाँ सेवा की मूर्ति प्रेरणा है, धर्म का रूप मोनी है, सत्य का रूप साधू है, कर्म का रूप विकास है, और मनुष्य का रूप कैलाश है। मालिक परीक्षा लेकर उनके साथ रहता है, फिर भला मुझ में जलाने की शक्ति कहाँ से आ सकती है?"

विकराला— "तो फिर मैं क्या करूँ बहिन! मैं तो भूखी मर जाऊँगी। जल्दी मेरी रक्षा करो! वह देखो मनुष्य मुझे खाने आ रहा है। वह देखो उसने वह सब फिर से बना लिया जो मैं नष्ट कर आई थी। वह इतनी जल्दी बना लेता है कि मैं इतनी जल्दी नष्ट नहीं कर सकती। कोई उपाय बताओ बहिन! नहीं तो मनुष्य देवताओं पर विजयी हो जायेगा।"

अग्नि— "मनुष्य की विजय देख कर तुम्हें ईर्ष्या क्यों होती है बहिन! बढ़ने दो मनुष्य को जितना बढ़ सके। तुम ने मनुष्य की अकर्मण्यता के कारण दुर्भिक्ष का रूप धारण कर बहुत बार भक्षण किया है। अब कर्म से जागे हुए मनुष्य को धरा पर देवलोक बनाने भी दो!"

विकराला— "यह तुम्हें क्या हो गया अग्नि! उल्टी बातें क्यों करती हो? उपाय सोचो, नहीं तो भगवान का नियम नष्ट हो जायेगा।"

अग्नि— "मैं तो असमर्थ हूँ, ज्ञान के पास जाओ, शायद उनके कोष में कोई उपाय हो।"

विकराला पलक मारते ही पर्वत पर वहाँ पहुँची जहाँ ज्ञान विराजमान थे। विकराला की गीली आँखें और काँपते हुए ओठ देख ज्ञान ही ने कहा— "क्या बात है मृत्यु !"

विकराला— "रक्षा करो गुरुदेव ! मनुष्य मृत्यु का उपहास उड़ा रहा है।"

ज्ञान— "मृत्यु का उपहास और मनुष्य !"

विकराला— "हाँ महाराज ! क्योंकि उसके ज्ञानचक्षु खुले हुए हैं। हमारी रक्षा का केवल एक ही उपाय है, और वह यह कि उसका ज्ञान नष्ट कर दिया जाये।"

ज्ञान— "क्यों मृत्यु ! देवताओं से मनुष्य की गरिमा क्यों सहन नहीं होती ? फिर भला मनुष्य देवता कैसे बन सकता है ? किन्तु कौन है वह मनुष्य जिससे मृत्यु भी घबरा उठी ? चलो हम भी तो देखें।"

कहते हुए ज्ञान उठे और पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़ गये। मृत्यु की तरफ निहारते हुए उन्होंने कहा— "क्यों मृत्यु ! किधर है वह मनुष्य !"

विकराला— "नीचे की ओर देखिये महाराज !"

ज्ञान ने नीचे देखा और प्रसन्नता से कह उठे— "विकास ! मेरा शिष्य ! तुम धन्य हो ! मृत्यु ! देखो, यह मनुष्य है और यह है मर्त्यलोक। मैं इस असमंजस में पड़ गया हूँ कि स्वर्ग किसे कहूँ, किसे देवलोक कहूँ ? आज स्वर्ग और देवलोक फीके से लगते हैं। देवताओ ! आओ और देखो मर्त्यलोक का सौन्दर्य, सुन्दरता जहाँ सुन्दरता को सुन्दर कर रही है, जहाँ धर्म का प्रतीक पशु जीवन का सत्य है। कहाँ है द्वेष ? कहाँ है कलह ? कहाँ है अधर्म ?

कहाँ है क्रोध? कहाँ है लोभ? और कहाँ है मोह? अशिक्षा का अन्धकार आज कहीं भी तो नहीं रहा। शिक्षा के सुनहरी प्रभात से धरती जगमगा रही है। कलाओं की क्रीड़ा से पृथ्वी पर परमानन्द है। मृत्यु! तुम ने कवि को खाया, किन्तु उसके काव्य को न खा सकीं। वह आज भी अन्धकार को उजाला दे रहा है। तुमने कामिनी को खाया, लेकिन उसकी झनकार न मिटा सकीं। विश्वविद्यालय की ओर देखो, कितनी छन्दमयी स्वरलहरियाँ मुखरित हैं। तुम निर्माण पर नाश बनकर नाचीं, किन्तु मनुष्य ने तुम्हें परास्त कर दिया। मनुष्य के विवेक ने तुम पर विजय पाली। मृत्यु! तुम्हारे सारे शस्त्र आज बेकार हैं। दुर्भिक्ष, रोग, चिन्ता आज कहाँ हैं? इसलिये अच्छा यही है कि तुम अब मनुष्य भक्षण छोड़ दो।"

विकराला— "महाराज! यह आपको भी क्या हो गया? मैं आपसे मनुष्य का विवेक नष्ट कराने आई थी, पर जान पड़ता है आप स्वयम् भूले जा रहे हैं।"

ज्ञान— "मैं भूल नहीं रहा हूँ मृत्यु! भूल सुधार रहा हूँ। सृष्टि को विवेकशून्य करना क्या धर्म है?"

विकराला— "आप धर्म के ठेकेदार बने रहें। लेकिन यह ध्यान रहे कि हम सब मनुष्य के बन्दी होने ही वाले हैं।"

ज्ञान के दर्वाज़े से भी विकराला मृत्यु निराश लौटी। वह शून्य में घूमती हुई सोचने लगी कि अब क्या करूँ। सोचते सोचते उसे फिर क्रोध आया। वह दाँत पीसती हुई आप ही आप कहने लगी— "उस दिन तुझ पर दया करके मैंने भूल की विकास! यदि बचपन में ही उस दिन मैं तुझे खा लेती तो आज अपनी हार का दिन न देखना पड़ता। पर मैं हारूँगी नहीं, तेरी कमर तोड़कर ही रहूँगी। ठहर जा! ठहर जा!! मैं तेरी शक्ति डसने आ रही हूँ।"

कहती हुई विकराला फिर धरातल पर आ पहुँची। वह विश्वविद्यालय के मन्दिर में घूमने लगी। कभी वह चर्खे की तान के पास खड़ी हो स्वयम् को भूल जाती, तो कभी चेतना आते ही फिर लक्ष्य की ओर बढ़ती, किन्तु जीवन की कोई नई झनकार फिर उसके पैर जकड़ लेती।

बार बार अटकती और बार बार बढ़ती हुई विकराला वहाँ आ पहुँची जहाँ कैलाश कमरे में खड़े पुस्तकें उलट पुलट रहे थे। विकराला छिप कर कमरे में छा गई। वह छाया की तरह कैलाश के आस पास घूमती हुई सारी सृष्टि में चक्कर काटने लगी। वह छलावा सी अभी यहाँ तो अभी वहाँ इसलिये फिरकनी बनी हुई थी कि कहाँ मनुष्य को डंक मारूँ।

वह चाहती थी कि मनुष्य छटपटा उठे और छोड़ बैठे अपना कर्म। उसने कैलाश के हृदय पर एक धक्का मारा। कैलाश पुस्तक छोड़ कामिनी के चित्र के पास आ खड़े हुए। उनका दिल भर आया। उन्होंने एक लम्बी श्वास ली और कहने लगे— "कामिनी! केवल चित्र रह गया तुम्हारा। वह स्वर, वह सौन्दर्य आज स्वप्न की याद बन कर रह गया है।" वे और आगे बढ़े। सुमति की तस्वीर सामने आई। कैलाश वहाँ भी दो पल को रुके, और यह कहते हुए फिर पुस्तकों के पास आ खड़े हुए कि "वाह रे राख की तस्वीर बनाने वाले!"

वे फिर पुस्तकें उलटने पुलटने लगे। पुस्तकें उठाते और धरते हुए वे आप ही आप कहने लगे— "किताब रह जाती है और दुनिया बदल जाती है। मूर्ति मिट जाती है, मगर इतिहास बना रहता है। और फिर कवि क्या कभी मरता है! प्रभात की लिखी हुई पुस्तक आज भी है, पर प्रभात को मौत जाने कहाँ ले गई। मौत! तू कठोर होती है, ऐसा सुन्दर मनुष्य भी क्या नष्ट करना चाहिये था! पर मैं भूलता हूँ, उसे

मिटाने की शक्ति ईश्वर ने तुझे नहीं दी। तूने उसके शरीर को खा लिया, लेकिन उसके अमृत ने उसे अमृत बना दिया है। अपने साकार शब्दों में वह गूँज रहा है। तू अगर सामने होती तो उसके शब्दों की गूँज सुन शायद अपनी व्यर्थ निर्ममता छोड़ देती। वह अपने शब्दों में स्वयम् अमर है और दूसरों को जीवन देता है। उसी ने तो मुझ मुर्दे को भी जीवन दिया। ओ बहरी! तेरे कानों तक क्यों ये शाश्वत शब्द नहीं पहुँचते? प्यार पर अत्याचार करने वाली कठोर! तू फिर भी सहृदया क्यों नहीं होती?"

कहते कहते कैलाश गम्भीर होकर पुस्तक इधर उधर से पढ़ने लगे। वे यद्यपि अकेले पढ़ रहे थे पर इस तरह जैसे सारे संसार को सुना रहे हैं— "प्रकाश अपनी बुद्धि का काम आता है, और प्यार अपने हृदय का। मृत्यु की नौका पर बैठ कर तैरो। जीने के लिये सुख मत ढूँढो, नहीं तो दुःख उठाओगे। भलाई करो और भूल जाओ। किसी से लेने के लिये हाथ बढ़ाओगे तो हाथ मलने पड़ेंगे। शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का बुरा काम भी भला बन जाता है। इसलिये शक्ति इकट्ठी करते रहो। भूल भी मनुष्य से होती है, पर भूल पर भावुकता से रोकर और भूल न करना, नहीं तो दुनिया को उपहास का अवसर मिलेगा। किसी से आशा का दूसरा नाम पश्चाताप है। अपने देह को अपना दीपक समझो!"

पढ़ते पढ़ते कैलाश को नींद आ गई। नींद में वे स्वप्न देखने लगे। स्वप्न में कामिनी उनके पास आकर बैठी और गाने लगी। कामिनी गा रही थी और कैलाश झूम रहे थे, कि काली विकराला उनके बीच में आकर खड़ी हो गई। किन्तु कैलाश डरे नहीं, वे अट्टहास करने लगे। निर्भीक हँसी के आवेग में उन्होंने कहा— "तू मेरा सुन्दर स्वप्न फिर तोड़ना चाहती है?"

स्वप्न टूट गया, कैलाश की आँखें खुल गईं। आँखें खुलते ही वह रो पड़ा, वह खूब रोया। उसके रोने में न जाने कितना दर्द था।

कैलाश कभी फूट फूट कर नहीं रोता था, लेकिन इस समय उसका रोना न जाने क्यों नहीं रुक रहा।

कैलाश को बिलखता देख मृत्यु अट्टहास करने लगी। "यह कौन है जो रुदन का उपहास कर रहा है! न जाने अकेले में भी कौन मेरी हँसी उड़ा रही है। कोई दिखाई नहीं देता। समझा, मृत्यु मेरा मज़ाक उड़ा रही है। नहीं, नहीं! मैं भूलता हूँ, मृत्यु मेरा उपहास नहीं कर रही। मैं स्वयम् अपना उपहास कर रहा हूँ। भावुकता भयंकर होती है और विवेक सहारा। सब जानते हुए भी न जाने क्यों पागल बनता हूँ।"

भावुकता और बुद्धि को सोचते सोचते सवेरा हो गया। उलझन में उलझे हुए कैलाश उठे और खिड़की से बाहर की ओर झाँकने लगे। बाहर उन्होंने मोनी को मस्ती में जाते देखा। उसके कण्ठ में बँधी घण्टी की ध्वनि में ऐसा राग था जैसे आरती के समय घण्टी बज रही हो।

कैलाश ने उद्वेग से कहा— "मोनी!" आवाज़ पहिचानी सी जान मोनी रुक गया। कैलाश कमरे से बाहर निकले और मोनी के पास खड़े हो गये। उन्हें खड़े हुए कुछ ही देर हुई होगी कि साधू वहाँ आये। पहिले कैलाश की ओर और फिर मोनी की ओर देखते हुए उन्होंने कहा— "देर क्यों कर दी मोनी! यहाँ रुके क्यों खड़े हो? समय खोने से मालिक नाराज़ होंगे। खेत पर देर में पहुँचे तो ज़िन्दगी बोझ हो जायेगी।"

कैलाश— "मोनी को मैंने रोक लिया था साधू! वह अपने आप नहीं रुका, मुझ पर तरस खा कर रुका है। मुझे जीवन अखर रहा था, मन बहलाने के लिये मोनी को ठहरा लिया।"

साधू— "मोनी को न रोको कैलाश! धर्म के बिना धरती अन्न नहीं उगलेगी। अगर मोनी मालिक के भण्डार में एक दाना भी कम ले गया तो मालिक मनुष्य की रक्षा न कर सकेगा।"

कैलाश— "उस दिन मैं तुम्हें समझा रहा था, आज तुम मुझे समझा रहे हो।"

साधू— "इसलिये कि उस दिन मैं धर्म से अलग था और आज धर्म मेरे साथ है।"

सत्य के साथ धर्म शिव की ओर चल दिया। कैलाश फिर एकाकी खड़े हुए सोचने लगे— "सब व्यर्थ है, स्वप्न की चिन्ता चिता बन जाती है।" कहते कहते कैलाश ने स्वयम् को एक झटका दिया। झटके के साथ उन्हें चेतना आई और उन्होंने देखा कि विकास उनकी ओर आ रहे हैं। बुढ़ापा एक दिन सब को घेरता है। विकास भी अब बुढ़ापे की ओर पदार्पण कर रहे थे। किन्तु उनका पैर इस तरह नहीं उठ रहा था जिस तरह डगमगाता हुआ पैर बुढ़ापे की तरफ बढ़ता है। उनके पैरों में ज़िन्दगी थी, आँखों में आशा और मुस्कान थी।

बुद्धि में विश्वास और हृदय में मनुष्यता का मान लिये हुए विकास ने कैलाश के पास आकर कहा— "क्यों कैलाश! क्या अभी भी भटक ही रहे हो? क्या अभी तक तुम्हें पथ दिखाई नहीं दिया?"

कैलाश— "पथ दिखाई तो देता है, किन्तु तनिक पलक झपते ही वह फिर खो जाता है। मैं हिम्मत करके पैर उठाता हूँ, पर फिर कोई ऐसा धक्का लगता है कि आँखें बन्द हो जाती हैं। मैं समझता हूँ कि मुझे तुम्हारे आदर्शों में शान्ति नहीं मिल सकती विकास!"

विकास— "तो फिर कहाँ शान्ति मिलेगी?"

कैलाश— "शराब के प्यालों में, काम की मधुर रागनी में। जिस समय कोई रूप की निर्झरणी कोयल कण्ठ से नृत्य की झनकारों में मुझे

मदिरा पिलायेगी उस समय मैं पीड़ा को भूल जाऊँगा। स्मृति विस्मृति में बदल जायेगी।"

विकास— "कैलाश! क्या फिर अवनति को आमन्त्रण दे रहे हो? क्या इतनी ही स्थिर थी कामिनी तुम्हारे हृदय में? क्या तुम्हारी इच्छायें फिर काम, शराब और इन्द्रिय-भोगों के लिये मचल रही हैं? क्या तुम इस बने बनाये स्वर्ग को फिर से निमन्त्रण देना चाहते हो?"

कैलाश— "तुम बना बना कर प्रसन्न होते रहो, किन्तु मेरे हृदय में जो ज्वाला मृत्यु ने धधका दी है वह भूल की तरह बुझाये नहीं बुझती। तुम्हारे स्वर्ग में मेरे लिये स्थान नहीं, मेरी शान्ति उसी में है जिसे दुनिया पाप कह कर पुकारती है। पाप और पुण्य की पहेली भी कैसी विचित्र है विकास! कभी मुझे पुण्य पाप लगता है और कभी पाप पुण्य।"

विकास— "क्या तुम्हारी दृष्टि में पाप और पुण्य का रहस्य अब भी नहीं खुला? क्या तुम अब भी उसी उलझन में उलझे हुये हो? ज़िन्दगी की पगडण्डी पर चलो कैलाश! छोड़ दो अकर्मण्यता की यह अश्लीलता। तुम ज़िन्दगी के जितने श्वास उलझन में खोते हो वे सब व्यर्थ हैं। कर्म की रेखा पहिचानो कवियों की भाषा भूल जाओ!"

कैलाश— "शायद प्रकृति में वह कुछ है ही नहीं जो कवि से भिन्न है। जिसे संसार भाषा में कवि कहता है वह शब्दों में दिखाई देता है, किन्तु शेष सब अदृष्ट कवि होते हैं। एक दिन मैंने तुम्हारे उपदेश से अपनी दुनिया बदल दी थी, लेकिन आज मुझ से मेरी दुनिया नहीं बदली जाती। तपस्वियों की बनस्थली में मैं घूम आया। धर्म, कर्म और सत्य के संसर्ग में मैं रह लिया, लेकिन चिता अभी तक नहीं बुझी। पिला दो मुझे वे प्याले जिनमें बेहोश हो जाऊँ, भूल जाऊँ अपने दिल के दर्द को।"

विकास— "दर्द मिटाना चाहते हो तो घाव भरने के लिये घाव पर घाव मत करो। तुम्हारे दर्द की दवा मेरी बुद्धि में है, निकाल लो उसे। मुझे देखो, मैं इतना दृढ़ हूँ कि मुझ पर कोई घाव होता ही नहीं।"

विकास के यह कहते ही एक विचित्र अट्टहास सुनाई दिया, किन्तु हँसने वाला कोई दिखाई न दिया। "शायद भ्रम होगा" कहते हुए विकास ने कैलाश के कन्धे पर हाथ रक्खा और कहा— "भूल भुलैया! यही तो समझते हो तुम दुनिया को, किन्तु मैं नहीं समझता। मैं संसार को सत्य समझता हूँ, मुझे स्वयम् पर विश्वास है। मैंने कितने ही नर्क स्वर्ग में बदले हैं। देखोगे स्वर्ग?"

कैलाश— "स्वर्ग तो शायद देवलोक में कहीं होते हैं, या केवल कल्पना की दुनिया में। सुना है जो भले काम करते हैं वे स्वर्ग में रहते हैं, किन्तु किसी को स्वर्ग में देखा नहीं। स्वर्ग यदि कहीं होता तो कामिनी वहाँ अवश्य होती।"

विकास— "स्वर्ग है और कामिनी भी उसमें है, किन्तु तुम रो रो कर वे आँखें खो चुके जिनसे स्वर्ग देखा जाता है। स्वर्ग तक चलने के लिये हाथों का श्रम, पैरों की शक्ति, बुद्धि का प्रकाश और हृदय की अनुकम्पा चाहिये। ये सब लेकर मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें स्वर्ग के दर्शन कराऊँगा।"

कैलाश— "ये सब कामिनी के मरते ही मर गये, सुमति के साथ ही स्वाह हो गये। तुम मुझे स्वर्ग दिखाओ, किन्तु अपने हाथ, अपने पैर और अपनी आँखों के आधार पर।"

विकास— "यही तो तुम्हारी भूल है कैलाश! तुम दूसरे की आँखों को अपनी आँखें बना कर कैसे देखोगे?"

कैलाश— "आँखों वाला अगर अन्धे का हाथ पकड़ ले तो रास्ता दिखाई देने लगता है भैया! पकड़ लो मेरा हाथ और करा दो स्वर्ग की सैर।"

विकास— "तुम अन्धे तो नहीं कैलाश! रास्ता भूले हुए एक पथिक हो। रास्ता मैं बताता हूँ। उस पर चलो, स्वर्ग तुम्हारे सामने आ जायेगा।"

कैलाश— "तो फिर बताओ मैं किधर को चलूँ?"

विकास— "जिधर को प्रतिभा कहे।"

कैलाश— "फिर वही पहेली बुझाने लगे। सीधे सीधे आगे चलो, और मैं तुम्हारे पीछे चलता हूँ।"

"स्वर्ग! कितनी शान्ति है इस कल्पना में! किन्तु जीवन की चाह कहती है कितना सुख है इस संसार में, और नियति तथा भावना कहती है सुख दुःख की चक्की में जीवन चल रहा है। फिर भी नश्वरता की गली में वासना हुंकारती ही रहती है। मनुष्य दुनिया में स्वर्ग देखना चाहता है और दुनिया से परे भी।"

इस उधेड़बुन में पैर रखता हुआ कैलाश विकास के साथ स्वर्ग देखने चल पड़ा। चलते चलते विकास ने कहा— "स्वर्ग में क्या होता है कैलाश!"

कैलाश— "सुना है स्वर्ग में दुःख नहीं होता, सुख ही सुख होता है। वहाँ कोई ऐसी झनकार होती है जिसमें क्रन्दन की ध्वनि लीन हो जाती है। वहाँ वे अप्सरायें होती हैं जो कभी नहीं मरतीं।"

विकास— "तो अमरावती की देवांगनायें जहाँ हों वहीं तो स्वर्ग है न?"

कैलाश— "सुनते तो ऐसा ही हैं, पर अनुभव प्रत्यक्ष होने पर ही होगा।"

"प्रत्यक्ष भी हो जायेगा कैलाश! चलते रहो।" विकास ने यह कहा ही था कि विद्यालय का संगीतालय सामने आ गया। अपने देवताओं को सामने देख विद्यालय की छात्रा रजनी दौड़ी हुई आई और बोली— "आप संगीतोत्सव में चलिये, आमना बहिन जी ने आप को बुलाया है, माता प्रेरणा भी वहीं हैं। आज हमारे यहाँ संगीत के साथ अभिनय भी है।"

"चलो रजनी! हम स्वयम् भी उधर आ रहे थे।" कहते हुए विकास कैलाश को साथ ले संगीतोत्सव में जा पधारे।

संगीतोत्सव में सब से आगे प्रेरणा के बराबर में विकास के साथ कैलाश इस तरह बैठ गये जिस तरह बालक चाँद पकड़ने की बाट में हाथ बढ़ाये बैठा देखता रहता है।

यवनिका उठने से पहिले आमना ने मंच पर आगे आकर कहा— "बहिनो और भाइयो! आज हम अपने ही विद्यालय की छात्रा ज्योत्स्ना रचित 'जीवन-दर्शन' नाटक का अभिनय कर रहे हैं, जिसका उद्घाटन माता प्रेरणा करेंगी। इस नाटक में बहुत से चरित्र भाव-नृत्य पर दिखाने का यत्न किया है। आशा है, आपको पसंद आयेंगे। अब मैं श्रद्धेया माता जी से प्रार्थना करती हूँ कि वे नाटक का उद्घाटन कर सदैव की तरह आज भी हमें कृतार्थ करें।"

प्रेरणा उठीं और मंच पर आईं। मंच पर आते ही उन्होंने हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाया, मानो श्रद्धा झुकी खड़ी है। श्रद्धा के उत्तर में करतल ध्वनि गूँजी, और माता प्रेरणा ने कहना शुरू किया—

"प्यारी बेटियो, आदरणीय भाइयो, बहिनो और बुज़ुर्गो! आपके विद्यालय के विद्यार्थी आज आपके सामने अभिनय करते आ रहे हैं।

अभिनय एक ऐसी कला है जिससे जीवन, इतिहास और चित्तवृत्तियाँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं। वे पात्र जो आज हमारी आँखों के सामने नहीं हैं, हम देख सकते हैं। वे चित्र जो अतीत में मरे पड़े हैं, ज़िन्दा दिखाई देने लगते हैं। वह जीवन जो समय की रेखा के नीचे दबा पड़ा है, अभिनय से सामने आ जाता है।

"यह संसार एक रङ्गमंच है और प्राणी इस पर अभिनय करते हैं। कोई इस पर दुखी का अभिनय करता है, कोई सुखी का। कोई यहाँ राजा का अभिनय करता है और कोई रङ्क का। कोई मूर्ख का अभिनय करता है और कोई बुद्धिमान का। कोई पापी का अभिनय करता है तो कोई धर्मात्मा का। कोई इस मंच पर रोता हुआ आता है तो कोई गाता हुआ। कोई पागल आता है तो कोई पागल को देखकर पागल बनने वाला।

"इस प्रकार इस संसार-मंच पर प्रत्येक पात्र अभिनय करता है। जीवन के हर स्पन्दन का दूसरा नाम अभिनय है। अभिनय जीवन का साकार संगीत है, जिसमें इस लोक-सिन्धु से मथ कर निकाला हुआ अमृत-रस होता है।

"अनुकरण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह अनुकरण ही नाटक का बीज होता है। शिशु के विकास का आधार अनुकरण ही व्यक्ति को विशेष बनाता है। बालक अपने पिता की सभ्यता का अनुकरण कर सभ्य बनता है, अपने इतिहास का अनुकरण कर प्राचीन इतिहास का पात्र बन जाता है, धर्म का अनुकरण कर धर्म कहलाता है, कर्म का अनुकरण कर कर्म रूप में दिखाई देता है। राम का अनुकरण कर राम, कृष्ण का अनुकरण कर कृष्ण, और बापू का अनुकरण कर बापू बनता है।

"अतः अनुकरण मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है। इस मूलभूत प्रवृत्ति से ही नाटक का जन्म हुआ। नाटक जीवन का एक बहुत बड़ा अवलम्ब

है। नाटक में इतिहास और जीवन की प्रत्येक दिशा दिखाई जा सकती है। साहित्य में नाटक का दृष्टिकोण उपादेय है। नाटक का महत्त्व जीवन का महत्त्व है।

"मनुष्य की चेतना में नाटक जितना सहयोग देता है उतना कोई दूसरा मनोरंजन नहीं। नाटक दृश्य काव्य है, जिसे देखने से आनन्द मिलता है, शिक्षा मिलती है और जीवन मिलता है। राष्ट्रीय जागृति की सब से बड़ी चेतना इस अभिव्यंजना में है।

"किन्तु अभिनय केवल मनोरंजन के लिये ही न हो, उसमें प्राचीन इतिहास पर नयी ज्योति जगमगानी चाहिये। उसके पात्रों में जीवन की अभिव्यक्ति आवश्यक है। अभिनय तभी अभिनय है जब वह अभिनय के साथ साथ शिवम् भी हो।

"मुझे आशा है कि जो अभिनय आपके विद्यार्थी करने जा रहे हैं उससे आपका मनोरंजन तो होगा ही, साथ ही शिक्षा भी मिलेगी। मुझे विश्वास है कि यह सभ्य समुदाय 'जीवन दर्शन' अभिनय से सच्चा जीवन ग्रहण करेगा। इन शुभ कामनाओं के साथ मैं आज के नाटक की यवनिका उठाती हूँ।"

प्रेरणा बैठ गई और यवनिका उठने लगी। पर्दा उठते उठते ही मंच पर सात रूप दिखाई देने लगे। सबसे आगे एक नर्तकी थी, जिसके सौन्दर्य और सज्जा का चित्रण अद्भुत था। वह अँगड़ाई भरी विचित्र अदा से नृत्य मुद्रा में खड़ी थी। यवनिका उठने के साथ ही साथ उसका पैर भी उठने लगा। जब पर्दा पूरा उठ गया तो वह नर्तकी पूर्ण प्रकृति की मुद्रा में दिखाई देने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे प्रकृति के रूप उसके परिधान और आभूषण हैं, अथवा प्रकृति-मंच पर माया नाचना चाहती है।

वाद्य बजने लगे, गीत छिड़ा और नर्तकी नाचने लगी। नर्तकी के नृत्य में भावों की अभिव्यक्ति थी और गीत में भावों की व्याख्या। गीत सुन तथा नृत्य देख दर्शकों को यह समझने में देर न लगी कि नर्तकी संसार का परिचय दे रही है। यही नहीं, नर्तकी जो कुछ हाव भाव से बता रही है वही मंच का आकार भी है। पखवाइयों में अभिव्यक्त पर्वतों की श्रेणियाँ और ऊपर आकाश को प्रकट करने वाला नीला पर्दा, जिसे देख जान पड़ता था कि शून्य ने नीलाम्बर पहिन लिये हैं। उसमें कभी सूरज दमक कर दिन दिखा देता था और कभी चाँद चमक कर रात। सामने लगा हुआ हरियाली का पर्दा, जिसके पगों को सरितायें प्रक्षालित कर रही थीं। एवं सब सरितायें वेग से बहकर सिन्धु में कूदती जा रही थीं, जहाँ सरिता और सिन्धु का एक रूप था। पास ही एक पर्दे पर पृथ्वी बनी हुई थी, जिस पर तरह तरह की आकृतियाँ दिखाई देती थीं। कुछ मनुष्य, कुछ पशु, कुछ पक्षी।

यही नहीं एक ओर डरावने दृश्य थे और एक ओर लुभावने। एक ओर फूल थे और एक ओर काँटे। एक ओर हँसी थी और एक ओर रुदन।

नाचते नाचते नर्तकी का हाथ बढ़ा और उसने फूल उठा लिया। उसने नृत्य मुद्रा के हाथ से फूल नासिका की ओर घुमाया और फिर अपने मुस्कराते हुए अधरों की ओर ले आई। अधरों पर फूल लाते ही उसने उसे चूम लिया। किन्तु काँटा उसके मृदुल ओठों में चुभ गया। नर्तकी चीख पड़ी किन्तु फूल हँसता रहा। नर्तकी लज्जित हो गई। झुकी हुई आँखों से उसने फूल को इंगित करके प्रकट किया कि फूल काँटों में भी हँसता है।

इस तरह नर्तकी तरह तरह के भाव प्रकट करने लगी। कभी वह हँसी और कभी रोई। कभी वह शिशु बनी और कभी जवान। कभी वह

जवानी में पीती हुई दिखाई दी तो कभी बुढ़ापे में कमर झुकी मुद्रा में। कभी वह कवियों की कल्पना में निर्मित सुन्दरी के रूप में झलकी तो कभी श्मशान की ज्वाला सी जगमगा उठी। कभी वह दीपशिखा सी जलती हुई दिखाई दी तो कभी बुझने पर उड़ती हुई धूम्र रेखा सी।

इस प्रकार तरह तरह के भाव-प्रदर्शन करती हुई नर्तकी नेपथ्य में लीन हो गई। नृत्य के बाद विश्वकर्मा उठे और कहने लगे— "क्यों मनुष्य! माया का नृत्य पसन्द आया?"

मनुष्य— "पसन्द तो आया पर तृप्ति नहीं हुई, प्यास अभी शेष है।"

विश्वकर्मा— "क्यों संसार! तुम मनुष्य को तृप्ति दे सकते हो?"

संसार— "यत्न करूँगा।"

विश्वकर्मा— "तुम्हें स्वयम् पर सन्देह है। क्यों कर्म! तुम क्या कहते हो?"

कर्म— "जो पिता आज्ञा दें।"

विश्वकर्मा— "आज्ञा से नहीं, इच्छा से कहो।"

कर्म— "इच्छा से कहलाना चाहते हो तो सुनो! तृप्ति दे सकूँगा किन्तु पाप और पुण्य से परे।"

विश्वकर्मा— "तुम स्वतन्त्र हो, जैसे चाहो मनुष्य को तृप्ति दो।"

"देखता हूँ कैसे तृप्ति देता है तू मनुष्य को। सुन्दरी! इधर आओ, और मदिरा के प्याले भी भर भर कर लाओ!" नाश ने हुंकारते हुए कहा।

सुन्दरी झूमती हुई आई और मनुष्य के ओठों की ओर प्याला बढ़ा दिया। पीते ही मनुष्य को नशा हो गया। वह डगमगाता हुआ

बोला— "सुन्दरी ! और पिलाओ ! और दो !! तुम मेरे पास बैठो, तुम्हारी आँखों की शराब बड़ी मज़ेदार है। तुम मेरे पास बैठी रहो, मुझे पिलाती रहो प्रिये ! तुम्हारे गुलाबी फूलों में अमृत है। तुम्हारी अँगड़ाइयों में ज़िन्दगी है। तुम्हारे घुँघराले बालों में मेरा दिल उलझा हुआ है।"

सुन्दरी ने अपनी आँखों से मनुष्य का हृदय खींच लिया। कर्म ने मनुष्य का हाथ पकड़ते हुए कहा— "मूर्ख न बन मनुष्य ! कर्म की पगडण्डी तेरी दुलहन है।"

मनुष्य— "कर्म की पगडण्डी मेरी दुलहन नहीं, मेरी दुलहन यह सुन्दरी है। मैं यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा। मेरी तृप्ति तो यहीं है। सुन्दरी ! लाओ, पिलाओ, गाओ !"

कर्म असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा कैसे मनुष्य को समझाऊँ। सोचते सोचते कर्म ने कहा— "सुन्दरी ! और पिलाओ मनुष्य को, और बरसाओ रूप की मदिरा ! इतनी पिलाओ कि अतृप्ति असीमित हो जाये।"

मनुष्य नशे में बेतोल पीता रहा। पीते पीते ओठ थक गये पर प्यास न बुझी। "मनुष्य ! पी !" "ला पिला !" पर ओठ शिथिल थे। उनमें अब पीने की शक्ति न थी, किन्तु आकांक्षा अभी और माँगती थी।

"क्यों मनुष्य ! पियो न !" "कैसे पीऊँ ?" "जैसे पीते रहे हो।" "ओठ जो नहीं चलते। सुन्दरी ! तुमने पिला पिला कर अतृप्त तो कर दिया, अब शक्ति भी तो दो न।"

मनुष्य अतृप्त था और सुन्दरी भी अतृप्त थी। 'मैं क्या उत्तर दूँ' इस सोच में सुन्दरी की आँखें झुकी हुई थीं। आखिर कर्म ही ने कहा— "निराश न होओ सुन्दरी ! जिसमें मनुष्य को मारने की शक्ति है वह

उसे जिला भी सकती है। तुम एक हाथ मनुष्य के कण्ठ में डालो और पग कर्म की पगडण्डी पर बढ़ाओ। मरा हुआ मनुष्य जी उठेगा।"

सुन्दरी ने सहारा देकर मनुष्य को उठाया, और कहा— "कर्म की पगडण्डी किधर है?"

कर्म— "यह सारी भूमि कर्मक्षेत्र है। कर्म के जीवन से यह धरा मुस्कराती है। कर्म के हाथों से सिंची हुई धरती पर जो फूल खिलते हैं उनमें अमर सुरभि होती है। मनुष्य जब अकर्मण्य हो जाता है तभी नाश नृत्य करता है।"

सुन्दरी— "तो चलो मनुष्य! मैं तुम्हें कर्मक्षेत्र में ले चलती हूँ।"

कहती हुई सुन्दरी मनुष्य को साथ लेकर चली गई। और साथ ही नेपथ्य में इधर उधर चले गये अन्य सब पात्र भी।

दूसरा पर्दा उठा और मंच पर कितनी ही अप्सरायें नाचती हुई दिखाई देने लगीं। उस नाच में ऐसा अद्भुत आकर्षण था कि देवता बड़ी तन्मयता से उसमें झूम रहे थे। सुन्दरी मनुष्य का हाथ पकड़े वहाँ को निकली। मनुष्य के पैर ठिठक गये। वह बोला— "सुन्दरी! मैं आगे नहीं जाऊँगा। मुझे इसी स्वर्ग में रहने दो!"

सुन्दरी— "यह स्वर्ग नहीं है मनुष्य! जीवन की जेल है। इस पिंजरे में न फँस, आगे चल! इस नाच पर भूलने वाले देवताओं को क्षण भर का स्वर्ग देखने दे!"

मनुष्य— "ज़िन्दगी के क्षण का भी तो कोई भरोसा नहीं सुन्दरी! इसलिये क्षण को स्थायी स्वर्ग की खोज में खोने से क्या लाभ! जीवन के क्षण को भोगने दो स्वर्ग!"

सुन्दरी— "यह स्वर्ग नहीं, नाटक है। अन्तिम पर्दा पड़ते ही यहाँ कुछ भी न रहेगा। इस संसार मंच पर राख को सत्य न समझो। बढ़ो

यहाँ से, आगे चलो कर्मक्षेत्र में। यह देवताओं की बस्ती है, मनुष्य की बस्ती नहीं।"

मनुष्य का हाथ खींचती हुई सुन्दरी आगे की तरफ बढ़ी और देवताओं ने झूमना शुरू किया। झूमते झूमते देवता बेहोश हो गये, तथा अप्सरायें नशे में नंगी नाचने लगीं। नाचते नाचते उन के अंगों से बिजलियाँ टूटीं और मंच पर आग धधक उठी।

"आग ! आग !! बुझाओ, बुझाओ ! दौड़ो ! दौड़ो !!"

नाटक देखते देखते कैलाश घबरा कर खड़े हो गये, और मंच की ओर दौड़ने को पैर उठाया। पर विकास ने कैलाश का हाथ पकड़ कर बैठाते हुए कहा— "कहाँ जा रहे हो कैलाश ! यह असलियत नहीं, अभिनय है, कल्पना है। स्वप्न को सत्य समझ कर क्यों दौड़ रहे हो ?"

कैलाश— "यह नाटक है ! तो बन्द कर दो यह नाटक। वह नाटक किस काम का जिस में स्वर्ग जलता दिखाई दे।"

विकास— "स्वर्ग कोई दूसरा तो नहीं जला रहा, स्वर्ग की अप्सराओं के तन से आग निकल रही है और स्वर्ग जल रहा है।"

देखते ही देखते मंच जल कर राख हो गया और नाटक अधूरा रह गया। निर्देशक ने राख के ढेर पर खड़े हो कर कहा— "भाइयो ! अभिनय अधूरा रह गया, किन्तु यह अधूरा अभिनय जीवन दर्शन है। हम बनाते हैं और हम ही बिगाड़ते हैं। राख पर नृत्य और नृत्य पर राख— यही जीवन का नृत्य है। हम इस राख के ढेर पर कल फिर एक रंगमंच बनायेंगे। इसलिये शेष नाटक कल देखना।"

"कल क्या होगा यह किसे पता है ? कल की आशा में कौन घुटता रहे ?" कहते हुए कैलाश कुर्सी से उठे और विकास के साथ कोलाहल से बाहर निकल आये।

"क्यों कैलाश! क्या देखा?" बाहर आकर विकास ने पूछा।

कैलाश— "कुछ नहीं देखा। जो कुछ देखा वह सब उसी सत्य की तरह स्वप्न है जो आँखों का नीर बन कर बहता रहता है।"

विकास— "तो फिर स्वप्न पर रोना क्या मनुष्यता है?"

कैलाश— "मनुष्य को दुःख न हो यह क्या सम्भव है?"

विकास— "तुम्हें क्या हो गया कैलाश! मुझे तो देखो, मैं क्या मनुष्य नहीं हूँ? पर निराशा की ज़िन्दगी से नाश को निमन्त्रण देना मैंने नहीं सीखा।"

कैलाश— "ज़िन्दगी अभी शेष है विकास! शायद किसी दिन तुम्हें अपने ये शब्द वापिस लेने पड़ें!"

विकास— "अच्छा है वह दिन शीघ्र आ जाये, जिससे तुम्हारी शंका समाधान होने में अधिक समय न लगने पाये।"

कैलाश— "धर्म, सत्य, कर्म, और इच्छा। संसार में इनका द्वन्द छिड़ा हुआ है। धर्म, सत्य और कर्म मिट जाता है किन्तु इच्छा आज तक मरती नहीं देखी!"

शास्त्रार्थ में सहसा प्रेरणा ने प्रवेश करते हुए कहा— "चलो न नाथ! आज रामपुर चलना है न? माँ से मिले वर्षों बीत गये।"

विकास— "चलना तो था, किन्तु न जा सकेंगे। गुलाब भाई की तबियत बहुत खराब है। किन्तु वह फिर भी खेत पर जाना नहीं छोड़ता। अभी थोड़ी देर पहिले नाटक के बीच में तपोधन आया था। मैं पहिले गुलाब के पास जा रहा हूँ।"

"तो मैं भी चलती हूँ आपके साथ" कहती हुई प्रेरणा इस आशा से खड़ी हो गई कि पतिदेव हाँ कह दें।

"अच्छा चलो !" विकास ने कहा, और प्रेरणा के साथ चलने को तैयार हो गये। चलते समय वह कैलाश से बोले— "हृदय को समझाओ, समझदार होकर पागल न बनो !"

विकास और प्रेरणा को साथ साथ जाते देख कैलाश की आँखें फिर भर आईं। उसने मन ही मन में कहा— "कामिनी ! तुम मुझे बिलखने के लिये छोड़कर कहाँ चली गईं ?" और फिर लम्बी श्वास ले वहीं शिला पर बैठ गये, तथा देखते रहे जाते हुए प्रेरणा और विकास को।

जाती हुई प्रेरणा ने विकास से कहा— "गुलाब भी बड़ा बहादुर आदमी है। कभी उसकी आँख में आँसू नहीं आता। कभी किसी भी दुःख में 'हाय ! हाय !' नहीं करता।"

विकास— "ज़िन्दगी तो इसी का नाम है।"

प्रेरणा— "ज़िन्दगी में बड़े बड़े तूफान आते हैं स्वामी !"

विकास— "तूफान ही का नाम तो ज़िन्दगी है देवि !"

प्रेरणा— "जब मैं मर जाऊँगी तो आप ज़िन्दगी कैसे काटेंगे नाथ !"

विकास— "ऐसे ही जैसे अब काट रहा हूँ।"

प्रेरणा— "क्या ! क्या आप दूसरा विवाह कर लेंगे ?"

विकास— "नहीं, इसी तरह हँसता हुआ जैसे तुम्हारे साथ हँसता हुआ कर्म से नहीं हटता। हृदय को पत्थर कर लूँगा और किसी के आगे नहीं रोऊँगा। किन्तु आज तुम ये कैसी बातें कर रही हो प्रेरणा ! अभी तो तुम्हें मेरे साथ वर्षों रह कर काम करना है।"

प्रेरणा— "वैसे ही न जाने क्या सोचने लगी। कामिनी, प्रभात, ज्योति और शकुन की मृत्यु की याद आते ही तनिक दुर्बल विचारों ने घेर लिया था।"

विकास— "छोड़ो ये दुर्बल विचार। जैसी बीतती है सब बीत जाती है।"

बातें करते हुए दोनों वहाँ आ पहुँचे जहाँ खेत पर हाँपता हुआ गुलाब खेती को देख कर खुश हो रहा था। विकास और प्रेरणा ने पास पहुँच गुलाब के माथे का पसीना अपने पल्ले से पूछा। पसीना पूछ बड़े स्नेह से गुलाब का सर अपने हृदय पर रख विकास ने कहा— भैया! तुम्हें बहुत तेज़ बुखार है। तुम्हें खेत पर नहीं आना चाहिए था।"

गुलाब यद्यपि बहुत पक्के जी का था, उसकी आँखों से यूँ ही आँसू कभी नहीं निकलते थे, किन्तु आज विकास को अपने पास देख उसका हृदय उमड़ आया। उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। आँसू पूछते हुए उसने कहा—"माँ मर गई, बापू को मरे वर्षों बीत चुके, उसके बाद घर की सारी ज़िम्मेवारी मुझ पर है बाबू जी! आप जानते हैं भूचाल में सब कुछ नष्ट हो चुका है, अब तो केवल अपने हाथों का ही सहारा है। बाबू जी! जीने की इच्छा नहीं है, पर बच्चों के लिये जीना ही पड़ता है।"

विकास— "जी छोटा क्यों करते हो भैया! मैं तुम्हारा भाई तो अभी ज़िन्दा हूँ। मृत्यु मुझे नहीं मार सकती गुलाब। बापू की याद, प्रभात की याद, ज्योति की याद, कामिनी की याद मुझे भी तड़पा डालती है, पर मैं पत्थर बन चुका हूँ।"

गुलाब— "आँसुओं से आग तो नहीं बुझती भैया! पर आँसू बहाने से भी ज़िन्दगी भार हो जाती है। इसलिये खेत पर लगा ही रहता हूँ। हरी खेती देख ली तो खुश हो लिया, उजड़ी खेती देख ली तो मुँह पीला पड़ जाता है। यही मेरा सुख और दुःख शेष रह गया है अब तो।"

विकास— "लाओ यह दराँती मुझे दो, खेत पर काम मैं करूँगा। तुम घर जाओ और आराम करो। बुखार की इस तेज़ी में श्रम तुम से शर्मा रहा है।"

गुलाब— "श्रम ही तो मनुष्य की शोभा है बाबू जी! किसान का घर तो खेत ही होता है।"

विकास— "भावुकता छोड़ो गुलाब! और घर जाओ। प्रेरणा! तुम गुलाब को घर पहुँचा कर विद्यालय में खबर भेज दो कि विकास का घर अब खेत ही है। आमना बेटी मेरी रोटी खेत पर ही दे जाया करे।"

गुलाब मना करता रहा पर प्रेरणा ज़बरदस्ती उसे घर लिवा चलीं। घर पहुँचते पहुँचते गुलाब पसीने में नहा गये, और पसीना पूछते पूछते गीला हो गया प्रेरणा का आँचल। घर आकर प्रेरणा गुलाब के लिये दूध गर्म करने लगी और तपोधन विद्यालय में सन्देश देने चला गया।

प्रेरणा कई दिन तक गुलाब की सेवा करती रही, पर समय जब आ जाता है तो चाहे कितनी भी सेवा कर लो परिणाम कुछ नहीं निकलता। गुलाब तो अच्छे नहीं हुए, उल्टा प्रेरणा को क्षय रोग लग गया।

पर क्षय रोग में भी प्रेरणा ने खाट नहीं पकड़ी। वह रोग को हृदय में दबा खेत पर पति के पास पहुँची। खेत पर वह उसी तरह काम करने लगी जिस तरह एक हट्टा कट्टा किसान श्रम करता है।

* * *

शाम हुई, रजनी आई; रजनी गई, सबेरा आया। इस तरह रात दिन की दुनिया में जीवन चलता ही रहता है। एक दिन गोधूलि वेला में विकास के खेत से दूर किन्तु हृदय के निकट हरिजन विद्यालय में छटपटाते हुए कैलाश ने देखा कि आमना कपड़े में कुछ बाँधे जल्दी जल्दी जा रही है। कैलाश ने देखते ही पुकारा "आमना!"

आमना ने पीछे फिर कर देखा। कैलाश बाबू को देखते ही वह 'बाबू जी!' कहती हुई वापिस आई और बोली— "आप कहाँ चले गये थे बाबू जी! आपके बिना बहुत से काम रुके पड़े हैं। कर्म न करने से बोझ बढ़ता जाता है।"

कैलाश— "कहीं नहीं आमना! मन लगाने गया था, पर कहीं नहीं लगा। विकास कहाँ हैं?"

आमना— "वे और माता प्रेरणा खेत पर हैं। अब वे वहीं कुटिया में रहने लगे हैं और वहीं से दुनिया भर के काम करते हैं। सारा दिन श्रम करते रहते हैं। किसान कर्म से तो उन्हें ऐसा मोह हो गया है कि छूटता ही नहीं। कहते हैं जीवन का सब से बड़ा कर्म यही है। मैं उनके लिये रोटी ले जा रही हूँ। रोटी वे अब खेत पर ही खाते हैं और मेरे हाथ की रोटी उन्हें बहुत अच्छी लगती है। कहते हैं अब तो हम ज़िन्दगी भर तेरे ही हाथ की रोटी खायेंगे। तू रोज़ खेत पर रोटी लाया कर और देखा कर, रोटी कितने श्रम से मिलती है, क्योंकि तुझे भविष्य की श्री बनना है न।"

कैलाश— "मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ, शायद वहाँ ज़िन्दगी की गुत्थी सुलझ जाये।"

आमना— "वहाँ तुम्हें प्रकृति प्रेरणा देगी और पुरुष सन्देश। अवश्य चलो और देखो कि धरती का शृङ्गार किस तरह होता है।"

आमना के साथ कैलाश चल पड़े। विद्यालय को देखते हुए वे विद्यालय से बाहर निकले। क्षितिज के नीचे लहलहाती हरी सुन्दरी की ओर उनके पग बढ़ चले। जब वे खेत के निकट पहुँचे तो हरे मन्दिर में खड़े साक्षात् भगवान् के दर्शन कर धरा को धन्य मानने लगे। जल्दी जल्दी विकास के पास पहुँचने पर उन्होंने देखा कि पसीने में लथपथ मनुष्य अन्न बटोरने में लगा हुआ है। हरे हरे खेत में गम्भीरता छाई हुई है, जिसके चारों ओर धूम्र रेखा सी सर्पाकार एक लहर धुँधली होती जा रही है।

गेहूँ काटते हुए विकास के हाथ की दराँती पकड़ आमना ने आदर से कहा—"बाबू जी! रोटी खा लीजिये, दराँती मुझे दो, गेहूँ मैं काटती हूँ।"

"झोंपड़ी में धरदे बेटी ! काम करके अभी खाऊँगा। पानी के डर से नाज जल्दी से जल्दी काटना है, कहीं खड़ी खेती नष्ट न हो जाये, नहीं तो भुखमरी सब को मार डालेगी।" अपना काम उसी तरह करते हुए विकास ने कहा।

आमना— "बहिन जी कहाँ हैं बाबू जी !"

विकास— "बीस पच्चीस क़दम पर इसी खेत में पड़ी सो रही हैं। पर अब वह जागेंगी नहीं।"

"बाबू जी ! विकास भैया !! यह आप क्या कह रहे हैं !" एक ही साथ कहते हुए आमना और कैलाश उन हरे हरे पौधों के पास पहुँचे जहाँ प्रेरणा शान्ति से सो रही थी और उसके बच्चे हरे हरे पौधे उससे चिपट रहे थे।

आमना चीत्कार कर 'माँ !' कहती हुई चिरनिद्रा में सोई प्रेरणा से चिपट चिपट कर रोने लगी। कैलाश ने चीख कर पुकारा— "विकास ! यहाँ आओ ! वहाँ क्या कर रहे हो ?"

विकास ने उसी तरह काम करते हुए कहा— "अपनी दुलहन का शृङ्गार कर रहा हूँ।"

कैलाश— "यह तुम्हारी दुलहन मरी पड़ी है।"

विकास— "और वह साँप भी काटते ही मर गया जिसने एक ही डंक से दुलहन को डस लिया। वह भी वहीं डौल के बराबर में पड़ा है।"

थोड़ी देर बाद खेत ही में दुलहन की चिता जलती दिखाई देने लगी। हरे बन के उस पवित्र प्राङ्गण में चिता जल रही थी और विकास किसान-कर्म कर रहा था।

थक कर किसान ने मुँह ऊपर उठाया। उसने एक बार चिता को देखा। पसीने के साथ साथ उसकी आँखों का आँसू भी खेत में गिर पड़ा। बराबर के पौधे से उसने एक फूल तोड़ा और दुलहन पर चढ़ा दिया।

———